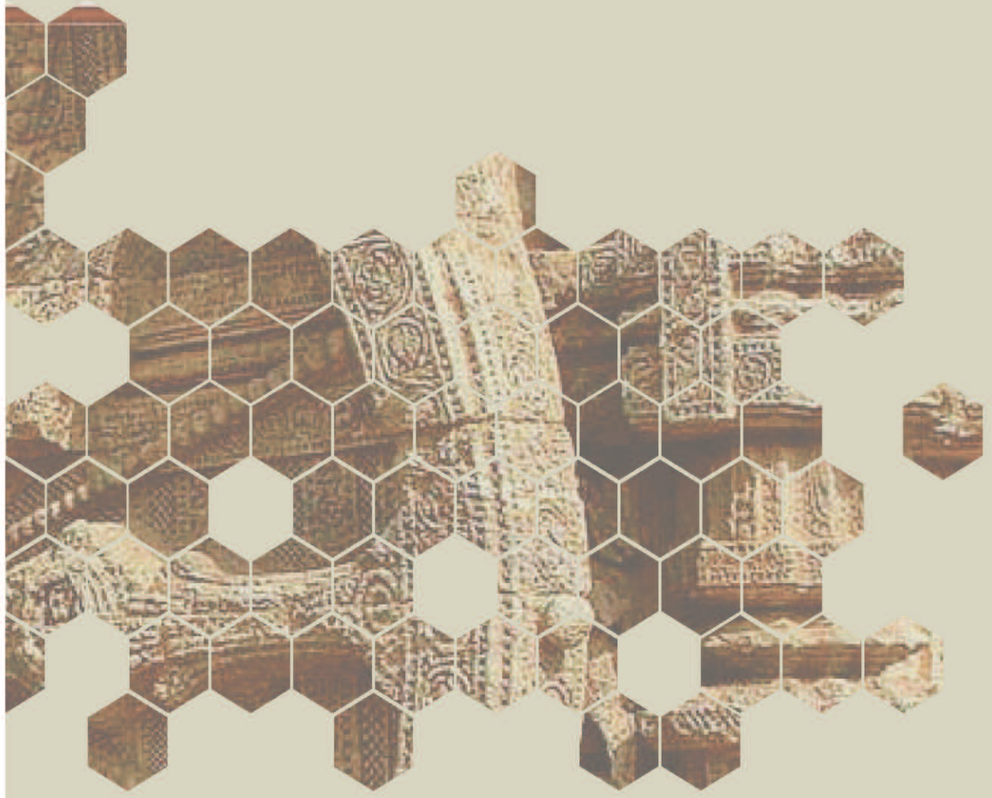

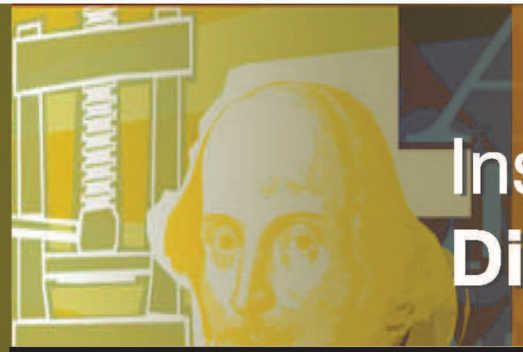

Institute of **Open** and
Distance Education

Faculty of Arts

हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास–काव्यांग विवेचन

4BA3

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास–काव्यांग विवेचन

Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

4BA3

हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास–काव्यांग विवेचन

4BA3

हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास–काव्यांग विवेचन

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr Kajal Moitra, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr Mahesh Shukla, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr Reena Tiwari, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr Ram Ratan sahu, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr Anju Tiwari, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Sandhya Jaiswal , Dr. C. V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

---

Course Editor:

Dr Ramsiya Charmkar, Assistant Professor Department of Political Science Humanities and liberal arts, Rabindranath Tagore University, Bhopal, M.P.

Unit Written By:

---

1. Dr. Radha Sharma

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Dr. Pooja Yadav

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

3. Pragya Sharma

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

इकाई इकाई का नाम पृष्ट संख्या

अनुक्रमणिका

ब्लॉक -I

इकाई -1 हिन्दी का उद्भव और विकास 1

इकाई -2 हिन्दी भाषा में प्रचलित शब्द 9

इकाई -3 हिन्दी साहित्य का इतिहास 20

इकाई - 4 हिन्दी गद्य का उद्भव और विकास 31

इकाई – 5 हिन्दी साहित्य में रस और छन्द 42

ब्लॉक -II

इकाई – 6 हिन्दी की मूल आकार भाषाएं 51

इकाई – 7 हिन्दी भाषा पर विदेशी प्रभाव 66

इकाई – 8 आदिकाल की पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियां 80

इकाई – 9 द्विवेदी युग से आधुनिक युग का आरंभ 94

इकाई – 10 हिन्दी में रस और छन्द का महत्व 104

ब्लॉक -III

इकाई – 11 राजभाषा 120

इकाई – 12 पं. कामता प्रसाद गुरू एवं किशोरीदास वाजपेयी 138

इकाई – 13 नाथ साहित्य एवं वीरगाथात्मक 144

इकाई – 14 छायावाद 164

ब्लॉक -IV

इकाई – 15 रस, छन्द और अलंकार 175

इकाई – 16 भारतीय संविधान में हिन्दी 199

इकाई – 17 पं. कामता प्रसाद गुरू एवं किशोरीदास वाजपेयी 216

इकाई – 18 हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग और सन्त-काव्य एव सूफी काव्य 227

ब्लॉक - I

इकाई-1

हिन्दी का उद्‌भव और विकास

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्‌देश्य

1.3 हिन्दी का उद्‌भव

1.4 हिन्दी का विकास

1.5 सारांश

1.6 मुख्य शब्द

1.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1.8 अभ्यास प्रश्न

1.9 संदर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

हिन्दी भारत की सबसे प्रमुख और व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा है। यह देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और भारत की राजभाषाओं में से एक है। हिन्दी का इतिहास हजारों वर्षों पुराना है, जिसका आधार भारतीय आर्यभाषा परिवार में है।

हिन्दी का उद्‌भव संस्कृत से हुआ, और यह प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं के माध्यम से विकसित हुई। हिन्दी न केवल एक भाषा है, बल्कि यह भारत की सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान का प्रतीक भी है। हिन्दी का विकास साहित्य, संवाद और शिक्षा के माध्यम से हुआ और आज यह वैश्विक स्तर पर भी मान्यता प्राप्त कर चुकी है।

हिन्दी का प्रभाव जनजीवन, साहित्य, कला, और आधुनिक मीडिया में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह भाषा अपने सरल व्याकरण और शब्दावली के कारण आसानी से समझी और अपनाई जा सकती है।

इस परिचय में हम हिन्दी के ऐतिहासिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक पक्षों को समझने का प्रयास करेंगे, जिससे हिन्दी की प्रासंगिकता और महत्व को अधिक स्पष्ट रूप से जाना जा सके।

1.2 उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य छात्रों को हिन्दी भाषा के उद्भव और उसके विकास की प्रक्रिया को समझाना है।

- हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक विकासक्रम का छात्रों को अध्ययन करना ।
- छात्रों को हिन्दी के प्राचीन रूप से लेकर आधुनिक स्वरूप तक की यात्रा को समझाना।
- हिन्दी के उद्भव में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं की भूमिका को छात्रों को समझाना ।
- छात्रों को हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों और उनके योगदानों को बताना ।
- छात्रों को हिन्दी भाषा के सांस्कृतिक और सामाजिक महत्व को पहचान कराना ।
- इस पाठ के अध्ययन से छात्र हिन्दी भाषा के विकास को व्यापक दृष्टिकोण से समझ सकेंगे और इसके ऐतिहासिक महत्व का आकलन कर सकेंगे।

1.3 हिन्दी का उद्भव

हिंदी का उद्भव भारतीय उपमहाद्वीप में प्राचीन काल से हुआ है, और यह एक दीर्घकालिक और जटिल प्रक्रिया है। इसका मूल संस्कृत भाषा में है, जो भारतीय संस्कृति और साहित्य का आधार रही है। हिंदी के उद्भव का प्रमुख आधार संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के परिवर्तनों पर निर्भर रहा है।

संस्कृत का प्रभाव: हिंदी की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है। संस्कृत भारतीय उपमहाद्वीप की प्राचीन भाषा है, जो वेदों, उपनिषदों और महाकाव्यों की भाषा रही है। प्राचीन संस्कृत का प्रयोग शास्त्रों और धार्मिक ग्रंथों में किया गया। समय के साथ, संस्कृत में धीरे-धीरे बदलाव आना शुरू हुआ और यह अधिक सरल और बोलचाल की भाषा में परिवर्तित होने लगी। इससे प्राकृत भाषाओं का जन्म हुआ, जिनका प्रयोग आम लोग करने लगे।

प्राकृत और अपभ्रंश का योगदान: संस्कृत के बाद, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का प्रयोग हुआ। प्राकृत वे भाषाएँ थीं जो संस्कृत से सरल और जनता की समझ में आने वाली थीं। इन भाषाओं का प्रयोग आम जनता द्वारा किया जाता था। जब प्राकृत भाषाओं में और अधिक सरलता आई, तो इसे अपभ्रंश कहा गया। अपभ्रंश भाषा में संस्कृत और प्राकृत का मिश्रण था, और यह भारतीय उपमहाद्वीप में बहुत प्रचलित हुई। मध्यकाल में इस अपभ्रंश का रूप हिंदी के आद्य रूप में परिवर्तित हुआ।

मध्यकालीन हिंदी: मध्यकाल में भारतीय उपमहाद्वीप में मुस्लिम शासकों का प्रभाव बढ़ा। इस दौरान फारसी और अरबी भाषाओं का प्रभाव हिंदी पर पड़ा। फारसी का प्रयोग शासकीय और साहित्यिक भाषा के रूप में हुआ, और इसके कारण हिंदी में फारसी शब्दों का समावेश हुआ। हिंदी और उर्दू के बीच का भेद भी इस काल में उत्पन्न हुआ, क्योंकि उर्दू एक प्रकार की हिंदी थी, जिसमें फारसी, अरबी और तुर्की शब्दों का समावेश हुआ था। इस समय हिंदी में काव्य, गीत, और कविताओं के रूप में महत्वपूर्ण साहित्य का निर्माण हुआ, जैसे सूरदास और मीरा बाई की रचनाएँ।

ब्रिटिश काल में हिंदी का विकास: ब्रिटिश काल में हिंदी को औपचारिक पहचान मिलनी शुरू हुई। इस समय हिंदी का उपयोग एक साहित्यिक भाषा के रूप में बढ़ा, खासकर देवनागरी लिपि में। भारतीय साहित्यकारों ने हिंदी में साहित्यिक रचनाएँ कीं और इसे एक भाषा के रूप में मान्यता दी। इस समय हिंदी को क्षेत्रीय भाषा के रूप में सशक्त किया गया और इसका प्रचार-प्रसार हुआ।

स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी का राष्ट्रीय रूप: हिंदी को राष्ट्रीय स्तर पर एकजुट करने का कार्य स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हुआ। महात्मा गांधी और अन्य स्वतंत्रता सेनानियों ने हिंदी को भारतीय जनता के बीच संवाद का माध्यम बनाने के लिए बढ़ावा दिया। हिंदी को देश की राष्ट्रीयता और एकता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया। 1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद, हिंदी को भारत की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता मिली।

इस प्रकार, हिंदी का उद्भव संस्कृत से शुरू होकर प्राकृत, अपभ्रंश और फारसी-उर्दू के प्रभाव से होते हुए एक सशक्त भाषा के रूप में विकसित हुआ। आज हिंदी न केवल भारत की प्रमुख भाषा है, बल्कि यह दुनिया भर में एक महत्वपूर्ण भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है।

1.4 हिन्दी का विकास

हिंदी का विकास एक लंबी और जटिल प्रक्रिया है, जो विभिन्न ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तनों के दौरान हुआ। हिंदी ने प्राचीन संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और फारसी जैसी भाषाओं से तत्वों को ग्रहण किया और एक सशक्त भाषा के रूप में विकसित हुई। इस विकास के विभिन्न चरणों को समझने के लिए हमें भाषा के इतिहास के विभिन्न पहलुओं पर विचार करना होगा।

1. प्राचीन और मध्यकालीन हिंदी:-

हिंदी के विकास की शुरुआत संस्कृत और प्राकृत भाषाओं से हुई थी, जिनमें धीरे-धीरे बदलाव आया और अपभ्रंश का रूप लिया। संस्कृत से प्राकृत भाषाओं की ओर संक्रमण हुआ, जिनमें प्रमुख रूप से पाली और मागधी शामिल थीं। इन भाषाओं में आम लोगों द्वारा बोली जाने वाली सरलता थी, और यही वजह थी कि ये भाषा रूप जनमानस में फैल गए। मध्यकाल में प्राकृत के अपभ्रंश रूपों का और अधिक विकास हुआ, और ये अपभ्रंश रूप भारतीय उपमहाद्वीप में हिंदी की नींव बने।

2. फारसी और उर्दू का प्रभाव :-

मध्यकालीन भारत में मुस्लिम शासकों का आगमन हुआ, जिससे हिंदी में फारसी और अरबी भाषाओं का प्रभाव बढ़ा। फारसी का प्रयोग न केवल दरबारों में, बल्कि साहित्यिक रचनाओं में भी हुआ। हिंदी साहित्य के महान कवियों ने जैसे सूरदास, तुलसीदास, और मीरा बाई ने अपनी रचनाओं में संस्कृत, प्राकृत, और फारसी के मिश्रण का उपयोग किया। इस समय उर्दू भाषा का भी जन्म हुआ, जो हिंदी और फारसी का मिलाजुला रूप थी। उर्दू ने हिंदी को एक नया साहित्यिक आयाम प्रदान किया और इसके शब्दकोश में फारसी, अरबी और तुर्की शब्दों का समावेश हुआ।

3. ब्रिटिश काल में हिंदी का औपचारिक विकास :-

ब्रिटिश शासन के दौरान, हिंदी का विकास एक महत्वपूर्ण मोड़ पर आया। अंग्रेजों ने हिंदी को एक महत्वपूर्ण भाषा के रूप में स्वीकार किया, और इसे साहित्यिक भाषा के रूप में बढ़ावा दिया। 19वीं सदी के अंत में हिंदी साहित्यकारों ने हिंदी को एक समृद्ध और सशक्त भाषा के रूप में स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया। हिन्दी गद्य साहित्य का विकास हुआ, और विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों ने इस भाषा को मजबूत किया। देवनागरी लिपि को मान्यता मिलने के बाद, हिंदी ने एक सुसंगत और स्थिर रूप लिया।

4. स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी का योगदान :-

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान, हिंदी ने राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ावा दिया और भारतीय जनता के बीच एकता और समानता का प्रतीक बन गई। महात्मा गांधी ने हिंदी को स्वतंत्रता संग्राम का माध्यम बनाया और इसे आम आदमी की भाषा के

रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने हिंदी में समाचार पत्रों का प्रकाशन किया और हिंदी को जन जागरूकता के लिए इस्तेमाल किया। इस समय हिंदी को एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में पहचान मिली और यह भारतीय समाज में एकता का प्रतीक बन गई।

5. स्वतंत्रता के बाद हिंदी का विकास :-

1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद, हिंदी को संविधान में आधिकारिक भाषा का दर्जा मिला। इसके बाद हिंदी का विकास और भी तेज़ हुआ, खासकर जब इसे शिक्षा, विज्ञान, और तकनीकी क्षेत्रों में एक माध्यम के रूप में अपनाया गया। 20वीं सदी के मध्य में, हिंदी को देश की सबसे प्रमुख भाषा के रूप में देखा गया। हिंदी साहित्य में न केवल गद्य और काव्य रचनाएँ हुईं, बल्कि नाटक, निबंध, और उपन्यास जैसी शैलियाँ भी विकसित हुईं।

6. वर्तमान में हिंदी का विकास :-

आज के समय में हिंदी का विकास डिजिटल और वैश्वीकरण के प्रभाव से हो रहा है। इंटरनेट, सोशल मीडिया और अन्य डिजिटल प्लेटफॉर्म पर हिंदी का उपयोग तेजी से बढ़ा है। इसके अलावा, बॉलीवुड, हिंदी साहित्य और शैक्षिक संस्थानों में हिंदी का प्रभाव मजबूत हो रहा है। हिंदी अब केवल भारत में ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया में व्यापक रूप से बोली जाती है और यह भारतीय संस्कृति और पहचान का अहम हिस्सा बन गई है।

इस प्रकार, हिंदी का विकास कई ऐतिहासिक और सांस्कृतिक प्रभावों के तहत हुआ। यह भाषा न केवल साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से समृद्ध हुई, बल्कि यह समाज और राजनीति में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आज हिंदी एक सशक्त और विश्वभर में प्रसार वाली भाषा बन चुकी है।

1. भाषा विज्ञान की एक शाखा .....है।

2. अवधि का विकास ..... हुआ।

1.5 सारांश

हिन्दी का इतिहास समृद्ध और विविध है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत से हुई और समय के साथ इसमें प्राकृत और उर्दू जैसी भाषाओं का प्रभाव पड़ा। हिन्दी ने अपनी

पहचान मध्यकाल और आधुनिक काल में स्थापित की, और आज यह भारत की प्रमुख भाषा बन चुकी है। इसका साहित्य, संस्कृति और समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

1.6 मुख्य शब्द

- **संस्कृत:-**

  एक प्राचीन भारतीय भाषा, जो हिन्दी के उद्भव में मुख्य रूप से योगदानकर्ता थी।

- **प्राकृत** :-

  संस्कृत की उपभाषाएँ, जिनसे हिन्दी का प्रारंभ हुआ।

- **अपभ्रंश** :-

  प्राकृत का और अधिक रूपांतरित रूप।

- **उर्दू**:-

  एक भाषा जो हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों के संगम से विकसित हुई, और हिन्दी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

1. भाषा विज्ञान की एक शाखा **व्याकरण** है।
2. अवधि का विकास **समय के साथ विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप** हुआ।

1.8 संदर्भ ग्रंथ

- शर्मा, आर. (2018). *हिंदी भाषा का इतिहास*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान।
- त्रिपाठी, जी. (2020). *भारतीय भाषाओं का विकास*. वाराणसी: हिंदी ग्रंथालय।
- गुप्ता, ए. (2021). *हिंदी साहित्य और समाज*. जयपुर: साहित्य सागर।
- चौधरी, डी. (2019). *हिंदी भाषा: संरचना और विकास*. नई दिल्ली: विश्वविद्यालय प्रकाशन।
- मिश्रा, पी. (2023). *हिंदी और भारतीय संस्कृति*. भोपाल: राष्ट्रीय पुस्तकालय।

1.9 अभ्यास प्रश्न

1. हिन्दी के विकास के विभिन्न चरणों का वर्णन करें।
2. संस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रंश का हिन्दी के उद्भव में क्या योगदान रहा?
3. हिन्दी में उर्दू का क्या प्रभाव पड़ा?
4. हिन्दी की मानकीकरण प्रक्रिया को समझाएं।

इकाई- 2

हिन्दी भाषा में प्रचलित शब्द

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 हिन्दी भाषा में प्रचलित शब्दों के प्रकार

2.4 हिन्दी भाषा में प्रचलित मुहावरे और लोकोक्तियाँ

2.5 सारांश

2.6 मुख्य शब्द

2.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

2.8 संदर्भ ग्रन्थ

2.9 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

हिन्दी भाषा भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। यह न केवल एक संवाद का माध्यम है, बल्कि भारतीय संस्कृति और परंपराओं की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन भी है। हिन्दी के शब्द-सामर्थ्य और भाव-संप्रेषण की क्षमता इसे अन्य भाषाओं से विशिष्ट बनाती है।

हिन्दी भाषा का शब्दकोश अत्यंत विस्तृत है, जिसमें विभिन्न प्रकार के शब्द, मुहावरे, लोकोक्तियाँ और नवगठित शब्द शामिल हैं। ये शब्द समाज और संस्कृति की विविधता को दर्शाते हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक, हिन्दी भाषा में शब्दों का स्वरूप और उपयोग बदलता रहा है, जो इसे समय के साथ समृद्ध और अद्यतन बनाए रखता है।

इस प्रस्तावना में, हम हिन्दी भाषा के प्रचलित शब्दों और उनकी उपयोगिता को समझने की दिशा में कदम बढ़ाएंगे। यह अध्याय हमें भाषा की व्यापकता और इसके विभिन्न तत्वों के साथ-साथ व्यावहारिक जीवन में उनकी प्रासंगिकता से परिचित कराएगा।

2.2 उद्देश्य

इस खंड का मुख्य उद्देश्य छात्रों को हिन्दी भाषा के प्रचलित शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों को गहराई से समझाना और उनके महत्व को उजागर बताना है। इसके माध्यम से छात्र :-

- **हिन्दी भाषा के शब्दों के प्रकार** को पहचानने और उनके अर्थ को समझने में सक्षम होंगे।
- भाषा में **मुहावरों और लोकोक्तियों की उपयोगिता** और उनके भावात्मक पक्ष को समझ पाएंगे।
- हिन्दी भाषा में **शब्दों की विविधता और उनकी उत्पत्ति** के स्रोतों (तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज) का ज्ञान अर्जित करेंगे।
- भाषा के व्यावहारिक और साहित्यिक उपयोग में **प्रचलित शब्दों और अभिव्यक्तियों** के महत्व को समझेंगे।
- **स्वप्रगति परीक्षण** और अभ्यास प्रश्नों के माध्यम से अपने ज्ञान का मूल्यांकन कर पाएंगे।
- इस अध्ययन का उद्देश्य छात्रों को हिन्दी भाषा की गहराई को समझाना और इसे अधिक प्रभावशाली और प्रासंगिक रूप में अपनाने के लिए छात्रों को प्रेरित करना है।

2.3 हिन्दी भाषा में प्रचलित शब्दों के प्रकार

हिन्दी भाषा में शब्दों का बहुत विस्तृत और विविध संग्रह है। इन शब्दों की उत्पत्ति विभिन्न स्रोतों से हुई है, और इनका प्रयोग समाज के विभिन्न पहलुओं को दर्शाने

के लिए किया जाता है। हिन्दी में प्रचलित शब्दों के प्रकार मुख्य रूप से तीन श्रेणियों में विभाजित किए जा सकते हैं: **स्वदेशी शब्द**, **परदेशी शब्द**, और **संकर शब्द**। इसके अलावा, इन शब्दों का भिन्न-भिन्न उपयोग जैसे मुहावरे, लोकोक्तियाँ, और समास शब्दों के रूप में भी देखा जा सकता है। आइए इन शब्दों के प्रकार पर विस्तार से चर्चा करें:

1. **स्वदेशी शब्द :-**

स्वदेशी शब्द वे शब्द होते हैं जो हिन्दी की मूल संरचना और भारतीय भाषाओं से उत्पन्न होते हैं। ये शब्द प्राचीन काल से हिन्दी में प्रयुक्त होते आ रहे हैं, और इनकी उत्पत्ति मुख्य रूप से संस्कृत भाषा से हुई है। स्वदेशी शब्दों का प्रयोग हिन्दी में सबसे अधिक होता है और ये भाषा की नींव माने जाते हैं। इन शब्दों में भारतीय संस्कृति, परंपराएँ और समाज की मानसिकता छिपी होती है।

उदाहरण:-

- **घर**
- **भाई**
- **पानी**
- **सत्य**
- **ज्ञान**
- **धर्म**
- **आध्यात्मिक**

इन शब्दों में संस्कृत के प्रभाव को देखा जा सकता है, और ये शब्द हिन्दी के प्राचीन साहित्य से लेकर आधुनिक युग तक इस्तेमाल होते आए हैं।

2. परदेशी शब्द :-

परदेशी शब्द वे शब्द होते हैं जो अन्य भाषाओं से हिन्दी में आए हैं। हिन्दी ने अपने विकास के दौरान कई भाषाओं से शब्दों को अपनाया है, और ये शब्द मुख्य

रूप से फारसी, अरबी, अंग्रेजी, पुर्तगाली और अन्य विदेशी भाषाओं से आए हैं। विशेष रूप से, भारत में मुग़ल साम्राज्य के दौरान फारसी और अरबी के प्रभाव ने हिन्दी शब्दावली में कई परदेशी शब्दों का समावेश किया। आधुनिक समय में अंग्रेजी शब्दों का भी हिन्दी में समावेश हो चुका है।

उदाहरण:

- **किताब** (Book) - अरबी
- **अदालत** (Court) - फारसी
- **नमाज** (Prayer) - अरबी
- **स्कूल** (School) - अंग्रेजी
- **टीवी** (TV) - अंग्रेजी
- **बस** (Bus) - अंग्रेजी
- **सिस्टम** (System) - अंग्रेजी

ये शब्द हिन्दी में आमतौर पर इस्तेमाल होते हैं और उनके अर्थ भी मूल रूप से विदेशी भाषाओं से आए हैं। इन शब्दों ने हिन्दी की शब्दावली को समृद्ध किया है और भाषा को अधिक आधुनिक और वैश्विक रूप दिया है।

3. **संकर शब्द :-**

संकर शब्द वे शब्द होते हैं जो हिन्दी और किसी अन्य भाषा के शब्दों के मिश्रण से उत्पन्न होते हैं। ये शब्द दो या दो से अधिक भाषाओं के संयोजन से बने होते हैं, जिससे इनका अर्थ और ध्वनि दोनों में विविधता होती है। संकर शब्दों का उपयोग आमतौर पर विशेष संदर्भों में किया जाता है, जैसे आधुनिक प्रौद्योगिकी, शिक्षा, और व्यवसाय से जुड़े क्षेत्रों में।

उदाहरण:

- **कंप्यूटर** (Computer) - अंग्रेजी + हिन्दी
- **डॉक्टर** (Doctor) - अंग्रेजी + हिन्दी

- **टीवी** (TV) - अंग्रेजी + हिन्दी
- **स्कूल** (School) - अंग्रेजी + हिन्दी
- **होटल** (Hotel) - अंग्रेजी + हिन्दी
- **पैट्रोल** (Petrol) - अंग्रेजी + हिन्दी

ये शब्द हिन्दी में नई तकनीकी और वैश्विक विचारधाराओं को अपनाने के साथ उत्पन्न हुए हैं, और इनका उपयोग आजकल के दैनिक जीवन में अधिक पाया जाता है।

4. **अवधि शब्द :-**

अवधि शब्द वे शब्द होते हैं जो किसी विशेष समय या काल से संबंधित होते हैं और उनका प्रयोग केवल उसी समय या काल में होता है। इन शब्दों का उपयोग विशेष समय में किया जाता है, और ये उस समय के जीवन और घटनाओं के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं।

उदाहरण:

चमचम (आधुनिक समय में इस्तेमाल नहीं होता, केवल प्राचीन या पुरानी हिन्दी साहित्य में)

समय (वर्तमान के लिए सामान्य शब्द, लेकिन एक विशेष अवधिक संदर्भ में)

2.4 हिन्दी भाषा में प्रचलित मुहावरे और लोकोक्तियाँ

हिन्दी भाषा में मुहावरे और लोकोक्तियाँ बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये शब्दों के विशिष्ट संयोजन होते हैं, जो किसी विशेष अर्थ, भाव, या विचार को व्यक्त करते हैं। इनका प्रयोग भाषा को रंगीन और प्रभावशाली बनाता है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ केवल शब्दों के शाब्दिक अर्थ से परे होते हैं; इनके पीछे गहरी सांस्कृतिक और सामाजिक परंपराएँ छिपी होती हैं। आइए हिन्दी में प्रचलित मुहावरे और लोकोक्तियाँ पर विस्तार से चर्चा करें।

1. **मुहावरे :-**

मुहावरे वे शब्द या वाक्यांश होते हैं जिनका शाब्दिक अर्थ अलग होता है, लेकिन उनका कुल मिलाकर जो अर्थ निकलता है, वह किसी विशेष संदर्भ या अभिव्यक्ति का होता है। ये शब्द आमतौर पर परंपरा, समाज और संस्कृति पर आधारित होते हैं।

उदाहरण:

आंखों का तारा - प्रिय व्यक्ति, बहुत प्रिय या महत्व देने वाला।
उदाहरण: वह मेरे परिवार का आंखों का तारा है।

नाककटना - अपमानित होना या शर्मिंदा होना।
उदाहरण: उनकी गलतियों ने उसकी नाक कटवा दी।

हाथों का खेल - सरल कार्य या खेलना, विशेष रूप से किसी को धोखा देना।
उदाहरण: यह तो महज़ हाथों का खेल है, तुम इसे संभाल सकते हो।

बिना सिर-पैर की बात करना - बिना सोचे-समझे बातें करना।
उदाहरण: वह हमेशा बिना सिर-पैर की बातें करता रहता है।

आगे की सोच रखना - भविष्य के लिए योजना बनाना या किसी कार्य को लंबी अवधि के दृष्टिकोण से करना।
उदाहरण: हमें आगे की सोच रखनी चाहिए और आने वाले समय के लिए तैयार रहना चाहिए।

उलटी गिनती गिनना - किसी के अंत की शुरुआत होना।
उदाहरण: अब उनकी उलटी गिनती गिननी शुरू हो गई है।

दिल में खोट होना - किसी व्यक्ति का बुरा इरादा रखना।
उदाहरण: वह हमेशा दूसरों के खिलाफ साजिश करता है, उसके दिल में खोट है।

आत्ममुग्ध होना - खुद को अत्यधिक पसंद करना।
उदाहरण: वह इतना आत्ममुग्ध है कि दूसरों के बारे में सोचता ही नहीं।

2. **लोकोक्तियाँ :-**

लोकोक्तियाँ (proverbs) सामान्य जीवन के अनुभवों, नैतिक शिक्षा और समाजिक चेतना को व्यक्त करने वाली उक्ति होती हैं। ये किसी सत्य या अनुभव को संक्षेप में दर्शाती हैं और सामान्य जीवन में कार्य के लिए दिशा प्रदान करती हैं। लोकोक्तियाँ आमतौर पर व्यावहारिक ज्ञान, जीवन के नियम, और जीवन के तात्कालिक सत्य को व्यक्त करती हैं।

उदाहरण:

नहीं परहेज तो नहीं इलाज - यदि आप खुद से कोई सावधानी नहीं बरतते तो किसी भी बीमारी या समस्या का इलाज नहीं हो सकता।
उदाहरण: यदि तुम सही समय पर अपना आहार ठीक नहीं करते, तो नहीं परहेज तो नहीं इलाज है।

अधजल गगरी छलकत जाए - जो व्यक्ति कम समझदार या आधा जानकार होता है, वह अधिक बोलता है।
उदाहरण: उसे देखो, अधजल गगरी छलकत जाए, बिना समझे सबकुछ बोल रहा है।

ऊंट के मुंह में जीरा - जब किसी बड़ी चीज के मुकाबले कोई छोटी चीज रखी जाती है।
उदाहरण: यह समस्या उस कंपनी के लिए ऊंट के मुंह में जीरा जैसा है।

नदी के पानी में हाथ डालना - कोई नया काम शुरू करना या चुनौती लेना।
उदाहरण: नए व्यापार में नदी के पानी में हाथ डालने जैसा है, डर नहीं होना चाहिए।

दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीता है - जो पहले किसी नुकसान का शिकार हो चुका हो, वह भविष्य में अधिक सतर्क रहता है।
उदाहरण: वह अब बहुत सतर्क है, क्योंकि दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीता है।

आप भले तो सब भले - जब किसी के साथ सब कुछ ठीक चलता है, तो सब अच्छा लगता है।
उदाहरण: उसकी जिन्दगी सही चल रही है, आप भले तो सब भले।

समय आने पर ही पत्ता चलता है - किसी भी स्थिति या व्यक्ति का असली चेहरा समय के साथ ही सामने आता है।
उदाहरण: तुम देखोगे, समय आने पर ही पत्ता चलता है कि कौन सही था।

बंदर क्या जाने, स्वाद क्या होता है - जो किसी चीज के बारे में जानता नहीं है, वह उस चीज के मूल्य को नहीं समझ सकता।
उदाहरण: वह फिल्म आलोचक नहीं है, इसलिए उसकी बातों का कोई महत्व नहीं। बंदर क्या जाने, स्वाद क्या होता है।

घर की मुर्गी दाल बराबर - अपने घर की चीज़ों को कम समझना और बाहर की चीज़ों को अधिक महत्व देना।
उदाहरण: उसकी तो यही स्थिति है, घर की मुर्गी दाल बराबर।

3. मुहावरे और लोकोक्तियों का महत्व:-

मुहावरे और लोकोक्तियाँ न केवल भाषा को प्रभावशाली बनाती हैं, बल्कि ये सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये किसी विशेष समाज, संस्कृति या परंपरा के बारे में बहुत कुछ बताते हैं। इनका प्रयोग व्यावहारिक ज्ञान और जीवन के गहरे सत्य को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ भाषा की छवियों और भावनाओं को उजागर करने में सहायक होती हैं, जो शाब्दिक शब्दों से कहीं अधिक अर्थपूर्ण होती हैं।

2.5 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्न

1. हिन्दी साहित्य का पहला इतिहास ..... भाषा में लिखा गया।

2. काल-विभाजन का सर्वप्रथम .....प्रयास किया था।

3. भक्तिकाल की समय अवधि.....है।

2.6 सारांश

इस अध्याय में हिन्दी भाषा के शब्दों की प्रचलित श्रेणियों पर चर्चा की गई है। हिन्दी में शब्दों का प्रकार, उनके विभिन्न रूप और मुहावरे-लोकोक्तियों के उपयोग से भाषा की विविधता और उसका सामाजिक संदर्भ स्पष्ट होता है। इन शब्दों के माध्यम से भाषा में गहरी छवियाँ और अर्थ उत्पन्न होते हैं, जो इसे और भी प्रभावी बनाते हैं।

2.7 मुख्य शब्द

- **तत्सम**:-

संस्कृत से लिए गए ऐसे शब्द, जो अपने मूल रूप में हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं।

उदाहरण:-

धर्म, मित्र, विद्या।

- **तद्भव**:-

संस्कृत से उत्पन्न लेकिन परिवर्तित रूप में हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले शब्द।

उदाहरण:-

गाँव (ग्राम), चावल (चूर्ण)।

- **मुहावरा**:-

ऐसे वाक्यांश जिनका अर्थ उनके शब्दिक अर्थ से भिन्न होता है।

उदाहरण: हाथ साफ करना (चोरी करना), नाक कटना (अपमानित होना)।

- **लोकोक्ति**:-

जनसामान्य के अनुभव या ज्ञान का सार व्यक्त करने वाले कथन।

उदाहरण: जैसा बीज बोओगे, वैसा फल पाओगे।

- **देशज**:-

भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं से उत्पन्न और हिन्दी में समाहित शब्द।

उदाहरण: झोला, ककड़ी।

2.8 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

1. हिन्दी साहित्य का पहला इतिहास **मराठी** भाषा में लिखा गया था। इसे 1877 में **"हिन्दी भाषेचा इतिहास"** के नाम से पंडित महादेव गोविंद रानाडे ने लिखा।
2. हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन का सर्वप्रथम प्रयास **ग्रेसियस ग्रियर्सन** ने किया था।
3. हिन्दी साहित्य में **भक्तिकाल** की समय अवधि सामान्यतः **14वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी** (1350 ई. से 1700 ई.) मानी जाती है।

2.8 संदर्भ ग्रंथ

- बाला, पी. (2022). *भारतीय अर्थव्यवस्था की पुनरुत्थान: राजनैतिक अर्थशास्त्र परिप्रेक्ष्य*. नई दिल्ली: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- बसु, क. (2018). *आस्थाओं का गणराज्य: विधि और अर्थशास्त्र के लिए एक नया दृष्टिकोण*. प्रिंसटन, एनजे: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- घोष, ए. (2021). *भारत की उभरती अर्थव्यवस्था: 21वीं सदी में प्रदर्शन और संभावनाएँ*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- पनगारिया, अ. (2020). *भारत अनलिमिटेड: खोई हुई महिमा को पुनः प्राप्त करना*. न्यूयॉर्क: हार्पर कॉलिन्स।
- नागराज, आर. (2019). *भारत में आर्थिक वृद्धि और विकास: नए दृष्टिकोण*. नई दिल्ली: रूटलेज।

2.9 अभ्यास प्रश्न

1. हिन्दी में प्रचलित स्वदेशी और परदेशी शब्दों के उदाहरण दीजिए।
2. मुहावरे और लोकोक्तियों के अंतर को समझाइए।
3. हिन्दी में प्रचलित संकर शब्दों के कुछ उदाहरण बताइए।
4. आप अपने दैनिक जीवन में किन मुहावरों का प्रयोग करते हैं? उदाहरण दीजिए।

इकाई - 3

हिन्दी साहित्य का इतिहास

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 हिन्दी साहित्य का काल विभाजन

3.4 सिद्ध साहित्य और उसकी विशेषताएं

3.5 सारांश

3.6 मुख्य शब्द

3.7 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

3.8 संदर्भ ग्रन्थ

3.9 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का इतिहास भारतीय समाज, संस्कृति और भाषा के विकास की कहानी है। यह केवल साहित्यिक कृतियों का संग्रह नहीं, बल्कि समय-समय पर समाज में होने वाले बदलावों का दस्तावेज़ भी है। साहित्य का हर काल समाज की राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करता है।

हिन्दी साहित्य का प्रारंभिक स्वरूप धार्मिक एवं आध्यात्मिक था, जो लोकजीवन के करीब था। बाद में यह वीर-रस, भक्ति, शृंगार और सामाजिक चेतना के माध्यम से विस्तारित हुआ। आधुनिक युग में साहित्य ने जनसामान्य की समस्याओं और जीवन संघर्षों को अभिव्यक्ति दी।

इस इतिहास के अध्ययन से न केवल हिन्दी भाषा के विकास का ज्ञान होता है, बल्कि यह भी समझ में आता है कि साहित्य ने समाज में परिवर्तन लाने में कैसे भूमिका निभाई। प्रत्येक काल की अपनी विशिष्टताएं और योगदान हैं, जो साहित्य को समृद्ध और बहुआयामी बनाते हैं।

3.2 उद्देश्य

हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करना केवल साहित्यिक कृतियों को समझना नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से छात्रों को समाज, संस्कृति, भाषा और विचारधाराओं के विकास को बताना भी है। इस अध्ययन के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. **साहित्यिक विकास की को समझाना** :
   छात्रों को विभिन्न कालों में हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों और कृतियों का अध्ययन करके उनके विकास को समझाना।
2. **सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव को बताना**:
   छात्रों को साहित्य और समाज के बीच संबंध की पहचान कराना और यह समझाना कि साहित्य ने समाज और संस्कृति पर क्या प्रभाव डाला।
3. **भाषा का अध्ययन** कराना:
   छात्रों को हिन्दी भाषा के विकास और उसमें आए परिवर्तनों को साहित्य के माध्यम से समझाना ।
4. **विचारधाराओं का विश्लेषण** कराना:
   छात्रों को प्रत्येक काल की विचारधाराओं और साहित्यिक रचनाओं में निहित मूल्यों और दृष्टिकोणों का अध्ययन कराना ।
5. **आध्यात्मिक और नैतिक मूल्य समझाना**:
   छात्रों को साहित्यिक कृतियों में निहित आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक संदेशों को पहचानना और उनका अनुशीलन करना बताना ।

6. **साहित्यिक धरोहर का संरक्षण समझाना**:
   छात्रों को हिन्दी साहित्य की विविधता, उसकी धरोहर और उसके महत्त्व को पहचानते हुए उसे संरक्षित और प्रोत्साहित करना बताना ।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य का अध्ययन भाषा, साहित्य और संस्कृति के विकास को एक समग्र दृष्टिकोण से छात्रों को समझने में सहायक है।

3.3 हिन्दी साहित्य का काल विभाजन

हिन्दी साहित्य का काल विभाजन व्यापक और विभिन्न आयामों में किया गया है। इसे सामान्यत: पाँच प्रमुख अवधियों में बाँटा जाता है: **प्राचीन काल**, **मध्यकाल**, **भक्ति काल**, **आधुनिक काल** और **समकालीन काल**। प्रत्येक काल का अपना विशिष्ट स्वरूप और विशेषताएँ हैं जो हिन्दी साहित्य को एक विशेष दिशा और पहचान प्रदान करती हैं। आइए, हिन्दी साहित्य के काल विभाजन को विस्तार से समझते हैं।

1. प्राचीन काल (700 - 1200 ई.) :-

प्राचीन काल का हिन्दी साहित्य संस्कृत साहित्य से प्रभावित था। यह समय भारतीय उपमहाद्वीप में संस्कृत की प्रमुखता का था, जब संस्कृत साहित्य ने व्यापक प्रभाव बनाया। हिन्दी के प्राचीन साहित्य में संस्कृत की छायाएँ थीं, और यह साहित्य मुख्य रूप से धार्मिक और संस्कृत काव्य से प्रभावित था।

प्राचीन काल के प्रमुख काव्य रचनाकारों में **भरत मुनि**, **कालिदास**, और **विशाखदत्त** के प्रभाव के कारण हिन्दी भाषा में काव्य रचनाओं की शुरूआत हुई। इस समय की कविताओं में संस्कृत के शास्त्रों, पुराणों और धार्मिक ग्रंथों से प्रेरणा ली गई थी। विशेष रूप से **रामायण** और **महाभारत** जैसे महाकाव्य के भारतीय संस्करणों में धार्मिक और सामाजिक आस्थाओं का चित्रण था।

2. मध्यकाल (1200 - 1500 ई.) :-

मध्यकाल में हिन्दी साहित्य में उल्लेखनीय परिवर्तन आए। यह वह काल था जब मुस्लिम आक्रमणकारियों का भारत में आगमन हुआ और इस दौरान हिन्दी साहित्य में मुस्लिम विचारधारा और संस्कृति का प्रभाव पड़ा। इस समय का साहित्य धार्मिक विविधता और सामाजिक समरसता को दर्शाता था। इसके साथ ही संस्कृत के बजाय हिन्दी भाषा का प्रचलन बढ़ा, और इसे साहित्य के माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया।

मध्यकाल के प्रमुख संत कवियों में **रहीम**, **कबीर**, **दादू**, और **सूरदास** जैसे संतों का योगदान था। इन कवियों ने हिन्दू और मुस्लिम धर्मों की समन्वयात्मक दृष्टि से साहित्य रचनाएँ कीं। कबीर की कविता में तात्त्विक और आध्यात्मिक विचारों की गहरी समझ और जन चेतना को उठाया गया। सूरदास ने श्री कृष्ण की भक्ति को अपनी कविताओं का प्रमुख विषय बनाया।

इस समय में मुख्यत: **भक्ति आंदोलन** का प्रभाव था, जो धार्मिक और जाति आधारित भेदभाव को चुनौती देता था। इस काल में **प्रभातिक काव्य**, **सूफी काव्य** और **भक्ति काव्य** जैसी प्रवृत्तियाँ लोकप्रिय हुईं।

3. भक्ति काल (1500 - 1700 ई.) :-

भक्ति काल हिन्दी साहित्य का एक महत्वपूर्ण और विशेष काल था। इस समय में धार्मिक आस्थाओं और ईश्वर के प्रति आस्था के रूप में कविता रचनाएँ की गईं। भक्ति काल में विशेष रूप से **रामभक्ति** और **कृष्णभक्ति** की रचनाएँ थीं। संतों के काव्य में सरल भाषा का प्रयोग किया गया, ताकि आम आदमी भी इनकी भक्ति को समझ सके।

इस काल के प्रमुख कवि थे **तुलसीदास**, जिनकी रचनाएँ **रामचरितमानस** ने हिन्दी साहित्य को एक नया मोड़ दिया। तुलसीदास की कविता में भक्ति, मर्यादा, और धार्मिक सिखावनियों का चित्रण था।

इसके अलावा **सूरदास** ने कृष्ण भक्ति के काव्य रचनाएँ कीं, जिनमें प्रेम और समर्पण की भावना प्रमुख थी। इस समय की कविताएँ साधारण जन जीवन की पद्धतियों और भक्ति के रास्ते को उजागर करती थीं।

4. आधुनिक काल (1700 - 1947 ई.) :-

आधुनिक काल का आरंभ भारतीय समाज और संस्कृति में उपनिवेशवाद के प्रभाव से हुआ। 18वीं शताब्दी के अंत और 19वीं शताब्दी की शुरुआत में हिन्दी साहित्य में पश्चिमी विचारधारा और आधुनिकता का प्रवेश हुआ। इस काल में अंग्रेजी शासन के दौरान भारतीय समाज में कई सामाजिक और राजनीतिक बदलाव आए। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीय जागरूकता ने साहित्यकारों को प्रभावित किया और उन्होंने हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीयता, समानता, और स्वतंत्रता के विचारों का समावेश किया।

इस काल में **प्रेमचंद** जैसे महान साहित्यकारों ने **कहानी**, **उपन्यास** और **निबंध** के माध्यम से समाज के विविध पहलुओं, जैसे **गरीबी**, **जातिवाद**, **शोषण**, और **सामाजिक सुधार** को चित्रित किया। प्रेमचंद की रचनाएँ भारतीय समाज के यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं।

इसके साथ ही **निराला**, **दिनकर**, **महादेवी वर्मा**, और **सुमित्रानंदन पंत** जैसे कवियों ने हिन्दी कविता को एक नया आयाम दिया। इस समय की कविता में आधुनिक विचारधाराओं का समावेश हुआ और कविता के विषय में भी विविधता आई।

5. समकालीन काल (1947 - वर्तमान):-

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी साहित्य ने एक नई दिशा ली। यह काल विशेष रूप से समाज में हुए बदलावों, नारी अधिकारों, राजनीतिक उथल-पुथल और आधुनिकता की ओर बढ़ते हुए साहित्य का समय है। हिन्दी साहित्य में **समाजवाद**, **विवेकवाद**, और **नारीवादी विचारधाराएँ** प्रमुख हुईं। समकालीन काल

में साहित्यकारों ने **समाजवाद**, **यथार्थवाद**, और **वास्तविकता** की ओर ध्यान केंद्रित किया।

समकालीन काल के प्रमुख साहित्यकारों में **भीष्म साहनी**, **राजेंद्र यादव**, **कृष्ण बलदेव वैद**, और **विष्णु प्रभाकर** शामिल हैं। हिन्दी साहित्य में इस समय के लेखक समाज की वास्तविकताओं को न केवल व्यक्त करते हैं, बल्कि उसे सुधारने की दिशा में भी कार्य करते हैं।

3.4 सिद्ध साहित्य और उसकी विशेषताएँ

सिद्ध साहित्य भारतीय साहित्य की एक प्रमुख धारा है, जो प्राचीन और मध्यकाल के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में उभरी। यह साहित्य मुख्य रूप से भारतीय तात्त्विक, धार्मिक और आध्यात्मिक विचारों से जुड़ा हुआ था और इसमें शैव, बौद्ध और जैन तत्वों का मिश्रण पाया जाता है। सिद्ध साहित्य का मूल उद्देश्य आत्मज्ञान, आत्मा का अनुभव, और जीवन के गहरे रहस्यों का उद्घाटन था। सिद्ध साहित्य के रचनाकारों ने साधना, भक्ति और तात्त्विक विचारों को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया और समाज के पारंपरिक धार्मिक ढाँचों से बाहर निकलकर अपने अनुभवों को व्यक्त किया।

सिद्ध साहित्य का परिप्रेक्ष्य :-

सिद्ध साहित्य का नामकरण 'सिद्ध' शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ है 'जो सिद्ध हो चुका हो' या 'जो पूर्ण हो चुका हो'। सिद्ध साहित्य में लेखक ने उस आध्यात्मिक स्थिति को व्यक्त किया है जिसे वे प्राप्त कर चुके थे, यानी साधना की एक ऐसी स्थिति जो आत्मज्ञान या परमात्मा से मिलन का संकेत करती है। सिद्ध साहित्य का उद्देश्य आत्मसाक्षात्कार और जीवन के वास्तविक उद्देश्य को समझना था।

यह साहित्य अधिकतर **साधकों, योगियों, और संतों द्वारा रचित** था, जो अपनी साधना और व्यक्तिगत अनुभवों को साहित्य के माध्यम से प्रकट करते थे। इस साहित्य का एक महत्वपूर्ण पहलू यह था कि इसमें तत्कालीन धार्मिक और

सामाजिक परंपराओं से भिन्न विचारों का प्रसार हुआ। सिद्ध साहित्य के कवियों ने पुराने धार्मिक ढाँचे को चुनौती दी और नए विचारों का प्रतिपादन किया, जो भारतीय दर्शन और तात्त्विक चिंतन से प्रेरित थे।

सिद्ध साहित्य की विशेषताएँ :-

सिद्ध साहित्य के कुछ प्रमुख गुण और विशेषताएँ हैं जो इसे अन्य साहित्यिक धाराओं से अलग बनाती हैं:

1. **आध्यात्मिक अनुभव का चित्रण :-**

सिद्ध साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण पहलू उसका **आध्यात्मिक अनुभव** है। इस साहित्य में साधकों द्वारा आत्मा की वास्तविकता और परमात्मा से मिलन की प्राप्ति को अनुभव किया गया है। यह साहित्य साधना के परिणामस्वरूप प्राप्त सिद्धि और ज्ञान का निरूपण करता है। साधक अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर जीवन के गहरे रहस्यों को उजागर करते हैं और उनकी रचनाओं में शारीरिक और मानसिक साधना के अनुभव को प्रस्तुत करते हैं।

2. **साधना और तात्त्विक तत्व :-**

सिद्ध साहित्य में तात्त्विक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसमें **शिव, विष्णु, देवी** जैसे देवताओं की पूजा की जाती थी, लेकिन केवल बाहरी पूजा के बजाय आंतरिक साधना, ध्यान और साध्य के माध्यम से आत्मा की उन्नति की बात की जाती थी। सिद्ध साहित्य के कवि अपने अनुभवों के आधार पर आत्मज्ञान के मार्ग का पालन करते थे, जिसमें योग, ध्यान, तंत्र-मंत्र और साधना के उपायों का उल्लेख किया गया है। इस साहित्य में धार्मिक आस्थाओं की सीमाओं को तोड़ा गया और व्यक्ति को भीतर से जागृत करने की बात की गई।

3. **संतुलित भक्ति और तात्त्विक दृष्टिकोण :-**

सिद्ध साहित्य में भक्ति और तात्त्विक चिंतन दोनों का संतुलित रूप से समावेश था। यह केवल धार्मिक आस्थाओं के प्रचार का साहित्य नहीं था, बल्कि यह आंतरिक जागरण और आत्मिक शांति की खोज का साहित्य था। सिद्ध कवियों ने

आध्यात्मिक भक्ति के साथ-साथ **सामाजिक और दार्शनिक विचार** भी प्रस्तुत किए। वे भगवान की भक्ति को केवल पूजा तक सीमित नहीं मानते थे, बल्कि इसे आत्मा के गहरे अनुभव और जीवन के वास्तविक उद्देश्य से जोड़ते थे।

4. **लोक भाषा और सरलता :-**

सिद्ध साहित्य की एक विशेषता यह थी कि यह आम जनता को ध्यान में रखते हुए रचित था। सिद्ध कवि संस्कृत या अन्य उच्चभाषाओं की बजाय अपनी रचनाओं के लिए लोकभाषा का प्रयोग करते थे। इसके परिणामस्वरूप सिद्ध साहित्य में एक सहज और सरल भाषा का प्रयोग हुआ, जो समाज के विभिन्न वर्गों तक पहुँचने में सक्षम थी। इस साहित्य में संप्रदायों और भाषाओं की कोई बाधा नहीं थी, और यह समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए सुलभ था।

5. **सामाजिक और धार्मिक पुनर्जागरण :-**

सिद्ध साहित्य ने समाज में व्याप्त कई धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया। सिद्ध कवियों ने कर्मकांड, पाखंड और आडंबरों का विरोध किया। उनकी रचनाओं में **धार्मिक परंपराओं** और **जातिवाद** के खिलाफ चेतना फैलाने का प्रयास किया गया। सिद्ध कवि समाज के भेदभाव और ऊँच-नीच की अवधारणाओं को नकारते हुए, आत्मा के स्तर पर सबको समान मानते थे।

6. **समानता और जागरूकता :-**

सिद्ध साहित्य में सभी व्यक्तियों के लिए **समानता** का संदेश था। इसमें जाति, धर्म, या लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया गया। सिद्ध कवियों ने अपनी रचनाओं में **मानवता**, **समानता** और **सामाजिक सुधार** की बात की। उन्होंने यह माना कि आत्मा का परमात्मा से मिलन जाति, धर्म, या अन्य बाहरी अंतर से ऊपर है। यह सिद्ध साहित्य का एक महत्वपूर्ण दार्शनिक पहलू था, जो तत्कालीन समाज की धारा से अलग था।

7. **मुक्त विचार और क्रांतिकारी दृष्टिकोण :-**

सिद्ध साहित्य में एक मुक्त विचारधारा थी, जो सामान्य धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं से अलग थी। सिद्ध कवियों ने पुरानी रूढ़िवादिता, अंधविश्वास और पाखंड को चुनौती दी और **नए विचारों का प्रसार** किया। उनकी रचनाओं में **साधना** और **आध्यात्मिक ज्ञान** को जीवन का सर्वोत्तम उद्देश्य माना गया था। इस साहित्य में आध्यात्मिक क्रांति की भावना स्पष्ट थी, जो समाज को आत्मज्ञान की ओर प्रेरित करती थी।

8. **प्राकृतिक तत्वों का महत्त्व :-**

सिद्ध साहित्य में **प्राकृतिक तत्वों** का भी विशिष्ट स्थान है। कवि प्रकृति, विशेषकर शहरी जीवन से बाहर के प्राकृतिक परिवेश, जैसे कि पहाड़, नदियाँ, और वन्य जीवन को अपने साहित्य में चित्रित करते थे। सिद्ध कवि मानते थे कि प्रकृति से जुड़ने से आत्मा की शुद्धता और जागृति संभव है।

1. हिन्दी साहित्य का पहला इतिहास ..... भाषा में लिखा गया ।

2. प्रश्न काल-विभाजन का सर्वप्रथम प्रयास..... ने किया ।

3.5 सारांश

हिन्दी साहित्य भारतीय सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन का अद्भुत दर्पण है। इसके माध्यम से न केवल भाषा और साहित्य की विकास यात्रा को समझा जा सकता है, बल्कि यह समाज की विभिन्न प्रवृत्तियों, धार्मिक आस्थाओं, परंपराओं, और सामाजिक सुधार आंदोलनों के प्रभाव को भी उजागर करता है। हिन्दी साहित्य में शास्त्र, संत साहित्य, आधुनिकता, और राष्ट्रीयता के तत्वों का सम्मिलन हुआ है, जो इसे एक व्यापक और विविधतापूर्ण धारा बनाता है।

3.6 मुख्य शब्द

- **साहित्य**:-

  किसी भी भाषा में लिखित काव्य, गद्य या अन्य रचनाएँ।

- **भक्ति**: -

  ईश्वर के प्रति आस्था और प्रेम।

- **सिद्ध साहित्य**: -

  एक विशेष साहित्यिक धारा जो प्राचीन भारतीय तात्विक विचारों और साधना पर आधारित है।

- **मध्यकाल**: -

  12वीं से 18वीं शताबदी तक का काल, जिसमें धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलनों का प्रभाव था।

- **आधुनिक काल**:-

  19वीं और 20वीं शताबदी का साहित्य, जिसमें उपनिवेशवाद और स्वतंत्रता संग्राम के विचारों का प्रभाव था।

3.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

- हिन्दी साहित्य का पहला इतिहास मराठी भाषा में लिखा गया था। इसे आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के अनुसार महादेव गोविंद रानाडे ने लिखा था।
- प्रश्न काल-विभाजन का सर्वप्रथम प्रयास रामचंद्र शुक्ल ने किया।

3.8 संदर्भ ग्रन्थ

- शुक्ल, रामचंद्र. (2018). हिन्दी साहित्य का इतिहास. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन।
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद. (2019). कवि और कविता. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

- शर्मा, विश्वनाथ त्रिपाठी. (2020). हिन्दी गद्य का इतिहास. वाराणसी: भारती भवन।
- सिंह, नामवर. (2021). कहानी नई कहानी. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
- दिव्य, वासुदेव शरण. (2023). आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास. लखनऊ: साहित्य प्रकाश।

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. हिन्दी साहित्य के काल विभाजन को संक्षेप में समझाइए।
2. सिद्ध साहित्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
3. हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल किस प्रकार से समाज और राजनीति से जुड़ा हुआ है?
4. हिन्दी साहित्य में भक्ति आंदोलन का योगदान क्या था?

इकाई – 4
हिन्दी गद्य का उद्भव और विकास

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 निर्माण-काल और द्वितीय युग का योगदान

4.4 हिन्दी साहित्य को भारतेन्दुजी की उपलब्धियाँ

4.5 सारांश

4.6 मुख्य शब्द

4.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

4.8 संदर्भ ग्रन्थ

4.9 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

हिन्दी गद्य साहित्य का विकास एक लंबी और विविध प्रक्रिया रही है, जिसमें समय-समय पर सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़ा। गद्य साहित्य वह रूप है, जिसमें विचारों और भावनाओं को बिना किसी छंद या काव्यात्मक संरचना के शब्दों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। गद्य साहित्य ने साहित्यिक दुनिया में अपनी एक खास जगह बनाई, क्योंकि यह न केवल विचारों को सरल और स्पष्ट तरीके से प्रस्तुत करने का एक प्रभावी माध्यम बना, बल्कि समाज के विभिन्न पहलुओं, जैसे कि राजनीति, संस्कृति, और समाजिक सुधार, पर भी विचार प्रस्तुत करने का एक सशक्त साधन बना।

प्राचीन काल में संस्कृत गद्य के रूप में कई ग्रंथों का निर्माण हुआ, लेकिन हिन्दी गद्य का विकास विशेष रूप से मध्यकाल में हुआ, जब भक्तिकाव्य, धार्मिक साहित्य और ऐतिहासिक रचनाओं ने अपना आकार लिया। हिन्दी गद्य के प्रारंभिक रूपों में धार्मिक और नैतिक शिक्षाएं, कथाएँ और जीवन के विविध पहलुओं पर चर्चा की गई थी।

आधुनिक हिन्दी गद्य का विकास भारतेन्दु हरिश्चंद्र और उनके समकालीन साहित्यकारों के प्रयासों से हुआ। उन्होंने हिन्दी गद्य को एक नया आकार और दिशा दी। भारतेन्दु जी के योगदान ने हिन्दी गद्य साहित्य को न केवल एक नई ऊँचाई दी, बल्कि इसे साहित्यिक और सामाजिक सुधार के लिए एक प्रभावशाली माध्यम बना दिया।

आज हिन्दी गद्य साहित्य में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक, और आलोचना जैसे कई विविध रूप विद्यमान हैं, जो न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि समाज की सोच और दृष्टिकोण को भी प्रभावित करते हैं। हिन्दी गद्य का इतिहास और विकास इसे न केवल भारतीय साहित्य का अभिन्न अंग बनाता है, बल्कि यह भारतीय समाज की संस्कृति और सोच की गहरी परतों को भी उजागर करता है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. हिन्दी गद्य के उद्भव और विकास को समझ सकेंगे।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
3. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
4. आर्थिक स्थिरता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।
5. हिन्दी गद्य की विविध विधाओं और उनके स्वरूप का अध्ययन कर सकेंगे।

4.3 निर्माण-काल और द्वितीय युग का योगदान

हिन्दी गद्य के विकास में दो प्रमुख काल माने जाते हैं: **प्रारंभिक युग** और **द्वितीय युग**, जिसमें भारतेन्दु युग का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इन दोनों युगों में गद्य साहित्य के निर्माण और उसकी दिशा में विभिन्न परिवर्तनों ने उसे एक सशक्त और प्रभावी विधा में बदल दिया।

प्रारंभिक युग (संस्कृत गद्य का प्रभाव):-

हिन्दी गद्य का प्रारंभ संस्कृत गद्य साहित्य से हुआ था। संस्कृत साहित्य की गद्य विधाएँ, जैसे कि **पुराण**, **काव्यशास्त्र**, और **नैतिक शिक्षा** के ग्रंथ, हिन्दी साहित्य में अनूदित और उन्नत रूप में आयीं। इस समय का गद्य अधिकतर धार्मिक और दार्शनिक मुद्दों पर आधारित था।

प्रारंभिक गद्य साहित्य में किसी विशेष लेखक या रचनाकार का नाम नहीं लिया जा सकता, क्योंकि यह अधिकांशतः लोकभाषा और संस्कृत के प्रभाव में था। शुरुआती गद्य रचनाएँ मुख्य रूप से **उपदेशात्मक**, **धार्मिक**, और **काव्यात्मक** थीं, जो समाज को शिक्षा देने या धार्मिक सिद्धांतों को स्पष्ट करने के उद्देश्य से लिखी जाती थीं। इस समय के गद्य साहित्य में शास्त्रीय ज्ञान और धार्मिक विचारों का महत्वपूर्ण स्थान था।

इस युग में हिन्दी गद्य के प्रारंभिक उदाहरण **काव्य-गद्य** (जैसे कि **रामकाव्य**) और **धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद** थे। धार्मिक कवि और संत साहित्यकारों ने अपने गद्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति, धर्म, और दर्शन की जटिलताओं को सरल रूप में प्रस्तुत किया। इस समय के महत्वपूर्ण गद्य रचनाकारों में संत कवि **रामानंद** और **विवेकानंद** का योगदान था। इसके अलावा, **संस्कृत काव्यशास्त्र** जैसे ग्रंथों के आधार पर ही हिंदी गद्य ने अपने विस्तार की दिशा पकड़ी।

द्वितीय युग - भारतेन्दु युग (19वीं सदी):-

भारतेन्दु युग को हिन्दी साहित्य के **द्वितीय युग** के रूप में जाना जाता है। इस युग में हिन्दी गद्य के विकास में प्रमुख बदलाव आए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जिन्होंने

इस युग में गद्य साहित्य को नया दिशा दी, उन्हें हिन्दी गद्य के पितामह के रूप में माना जाता है। उनके योगदान से हिन्दी गद्य का स्वरूप पूरी तरह बदल गया, और यह न केवल एक साहित्यिक विधा बनी, बल्कि समाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में भी इसका महत्व बढ़ा।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के योगदान के प्रमुख पहलु निम्नलिखित हैं:-

साहित्यिक समृद्धि और विविधता: भारतेन्दु जी ने गद्य साहित्य में विविधता और समृद्धि का परिचय दिया। उन्होंने गद्य को न केवल साहित्यिक क्षेत्र तक सीमित रखा, बल्कि उसे समाज के विभिन्न पहलुओं से भी जोड़ा। भारतेन्दु जी के नाटकों, कहानियों, और निबंधों ने गद्य को एक नया रूप और दिशा दी।

समाज सुधार और जागरूकता: भारतेन्दु जी के समय में भारत में राजनीतिक और सामाजिक जागरूकता का नया दौर था। उन्होंने अपने गद्य लेखन के माध्यम से सामाजिक सुधारों, जैसे कि **ब्राह्मणवाद**, **स्त्री शिक्षा**, **सती प्रथा** और **जातिवाद** के खिलाफ आवाज उठाई। उनके गद्य में समाज सुधार की आवश्यकता का गहरी समझ और उसे जागरूक करने का प्रयास था।

राजनीतिक जागरूकता: भारतेन्दु जी के गद्य लेखन ने भारतीय जनता को अपनी राजनीतिक स्थिति के प्रति जागरूक किया। उनके निबंधों, लेखों और नाटकों में भारतीय समाज के समक्ष आने वाले संकटों और संघर्षों को स्पष्ट रूप से उजागर किया गया। उनके गद्य साहित्य ने ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ एक सशक्त विरोध की भावना को बढ़ावा दिया।

भाषा की सुलभता और सरलता: भारतेन्दु जी ने हिन्दी गद्य को जनसमूह तक पहुँचाने के लिए भाषा की सरलता और सहजता पर जोर दिया। उनके गद्य साहित्य में कठिन संस्कृत शब्दों का प्रयोग कम था और उन्होंने साधारण बोल-चाल की भाषा का उपयोग किया, जिससे आम आदमी भी उनके विचारों से जुड़ सके। इससे हिन्दी गद्य जनसाधारण के लिए सुलभ हुआ।

नई शैली और विधाओं का प्रयोग: भारतेन्दु जी ने गद्य के विभिन्न रूपों को अपनाया, जैसे कि निबंध, कथा, नाटक, और आलोचना। इसके अलावा, उन्होंने नाटक को एक नई पहचान दी, जो कि न केवल मनोरंजन का स्रोत था, बल्कि एक सामाजिक और राजनीतिक मंच के रूप में काम करता था। भारतेन्दु के नाटक **"भारत दुर्दशा"**, **"अंधेर नगरी"** और **"सत्य हरिश्चन्द्र"** में गद्य की सामाजिक और राजनीतिक शक्ति का अद्वितीय प्रयोग किया गया।

साहित्यिक संगठन का निर्माण: भारतेन्दु जी ने साहित्यिक समुदाय को संगठित करने की दिशा में भी कार्य किया। उन्होंने **हिन्दी साहित्य सम्मेलन** की स्थापना की, जो हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार और उसकी स्थिति सुधारने में मददगार साबित हुआ।

द्वितीय युग का सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ :-

भारतेन्दु युग का समय भारतीय समाज में परिवर्तन का था। यह काल ब्रिटिश उपनिवेशवाद, सामाजिक असमानताओं, और भारतीय पुनर्जागरण का था। हिन्दी गद्य ने इस समय का सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य व्यक्त किया।

भारतेन्दु जी के गद्य साहित्य में भारतीय राष्ट्रीयता की भावना का प्रबल उभार देखा गया। उनकी रचनाएँ ब्रिटिश साम्राज्य और भारतीय समाज में व्याप्त अंधविश्वास, धर्मांधता, और सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ थीं। उनका गद्य समाज में जागरूकता फैलाने का कार्य करता था। उनके गद्य ने हिन्दी साहित्य को न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से समृद्ध किया, बल्कि समाज में एक गहरी चेतना भी उत्पन्न की।

4.4 हिन्दी साहित्य को भारतेन्दुजी की उपलब्धियाँ

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य के एक महान हस्ताक्षर हैं, जिन्हें न केवल हिन्दी गद्य के पितामह के रूप में जाना जाता है, बल्कि हिन्दी साहित्य में उनकी अप्रतिम भूमिका के कारण उन्हें हिन्दी साहित्य के रचनात्मक सुधारक के तौर पर भी मान्यता प्राप्त है। भारतेन्दु जी ने हिन्दी साहित्य को एक नया दिशा दी और

उसे आधुनिक रूप में ढाला। उनके योगदान से हिन्दी साहित्य में एक नई चेतना, सामाजिक जागरूकता और साहित्यिक समृद्धि का सूत्रपात हुआ।

1. **हिन्दी गद्य का नवजागरण:-**

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी गद्य को संस्कृत साहित्य के प्रभाव से बाहर निकाल कर उसे जनसामान्य के लिए सुलभ और प्रभावी बना दिया। उन्होंने गद्य को न केवल साहित्यिक विधा के रूप में प्रस्तुत किया, बल्कि उसे समाज की वास्तविकताओं, संघर्षों और परिवर्तनों से जोड़ा। उनका गद्य न केवल शास्त्र, धर्म और दर्शन तक सीमित था, बल्कि उसमें सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मुद्दों का भी समावेश था।

उनकी गद्य रचनाओं ने हिन्दी साहित्य को एक सशक्त और प्रभावी रूप में ढाला, जो समाज सुधार, राजनीतिक जागरूकता और भारतीय संस्कृति के संरक्षण की ओर प्रवृत्त हुआ।

2. **नाटक का विकास और हिन्दी नाटकों की शुरुआत:-**

भारतेन्दु जी का सबसे बड़ा योगदान हिन्दी नाटक के क्षेत्र में था। उन्होंने न केवल नाटक लिखे, बल्कि हिन्दी नाटक की नींव रखी। उनके नाटकों ने हिन्दी साहित्य में एक नए दौर की शुरुआत की।

"भारत दुर्दशा": यह नाटक भारतीय समाज की दुर्दशा और ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ भारतीयों के संघर्ष को चित्रित करता है। यह नाटक भारतीय राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता की भावना को प्रकट करने वाला एक महत्वपूर्ण कार्य था।

"सत्य हरिश्चन्द्र": यह नाटक भारतीय संस्कृति और नैतिकता के प्रति उनके आदर्शों को दर्शाता है। इसमें सत्य, धर्म और आस्था की महत्वपूर्ण भूमिका है।

भारतेन्दु जी ने नाटक के माध्यम से समाज सुधार और राजनीतिक जागरूकता फैलाने का कार्य किया। उनके नाटक न केवल मनोरंजन का स्रोत थे, बल्कि वे भारतीय समाज के लिए एक संदेश और प्रेरणा थे।

3. **समाज सुधार की दिशा में योगदानः-**

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के गद्य साहित्य का एक महत्वपूर्ण पहलू उनके समाज सुधार के विचार थे। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय समाज की पिछड़ी सोच और कुरीतियों पर प्रहार किया। वे समाज में व्याप्त **जातिवाद**, **सती प्रथा**, **महिलाओं की स्थिति**, और **अंधविश्वास** जैसी कुरीतियों के खिलाफ थे। उनके लेखन में समाज सुधार की भावना गहरी थी, और उन्होंने साहित्य का उपयोग जन जागरूकता के लिए किया।

उनकी रचनाओं में **"नहुष"**, **"विक्रम और बेताल"** जैसी कहानियाँ समाज के आदर्शों और आस्थाओं पर सवाल उठाती हैं। भारतेन्दु जी ने सामाजिक जागरूकता और सुधार को अपनी रचनाओं का मुख्य उद्देश्य बनाया।

4. **हिन्दी कविता में नयापनः-**

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी कविता को भी नया स्वरूप दिया। उनके समय में हिन्दी कविता का स्वरूप मुख्यतः ब्रज और अवधी के काव्य रूपों में था, लेकिन उन्होंने कविता में **हिन्दी बोध** और **व्यावहारिकता** को प्रमुखता दी। उन्होंने **"हिन्दी कविता"** को काव्यशास्त्र की बजाय जीवन और समाज के समकालीन मुद्दों से जोड़ा।

उनकी कविता में राष्ट्रीयता, भारतीय संस्कृति और समाज के प्रति जागरूकता की स्पष्टता देखी जाती है। उनका लेखन उस समय की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभावी चित्रण करता है।

5. **भाषा में सुधार और शुद्धताः-**

भारतेन्दु जी ने हिन्दी भाषा को शुद्ध करने और उसे साहित्यिक रूप में व्यवस्थित करने का कार्य किया। उन्होंने संस्कृत से प्रभावित कठिन शब्दों को सरल किया और हिन्दी में अभिव्यक्ति की शैली को जन-जन तक पहुँचाने के लिए उसे सहज और समझने योग्य बनाने का प्रयास किया। वे हिन्दी के शब्दकोश के निर्माण की

दिशा में भी सक्रिय थे, और उनकी कोशिश थी कि हिन्दी को एक सशक्त और उच्च मानक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया जाए।

भारतेन्दु जी ने साहित्यिक हिन्दी को बोलचाल की भाषा से जोड़ा, ताकि आम आदमी भी साहित्य से जुड़ सके और उसे समझ सके। उन्होंने **खड़ी बोली** के प्रयोग को बढ़ावा दिया और इसे हिन्दी साहित्य की मुख्य धारा में स्वीकार किया।

6. **हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना:-**

भारतेन्दु जी ने हिन्दी साहित्य के प्रचार और प्रसार के लिए **"हिन्दी साहित्य सम्मेलन"** की स्थापना की। यह सम्मेलन हिन्दी साहित्यकारों को एक मंच पर लाने का कार्य करता था और हिन्दी के साहित्यिक विकास की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देता था। इस सम्मेलन का उद्देश्य हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए जागरूकता फैलाना था। इसके माध्यम से उन्होंने हिन्दी के साहित्यकारों को एकजुट किया और हिन्दी साहित्य की आवश्यकता और महत्व को समाज के समक्ष रखा।

7. **आधुनिकता की ओर गद्य को मोड़ना:-**

भारतेन्दु जी का योगदान न केवल गद्य लेखन में था, बल्कि उन्होंने हिन्दी गद्य को एक नया दिशा दी और उसे **आधुनिकता** की ओर मोड़ा। उन्होंने गद्य को महज शास्त्रीय या धार्मिक लेखन तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे **समाजिक जागरूकता**, **राजनीतिक विचारों** और **सांस्कृतिक बदलाव** के संदर्भ में प्रस्तुत किया। इसके द्वारा उन्होंने गद्य को केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि समाज को बदलने की ताकत के रूप में स्थापित किया।

8. **भारतेन्दु जी का साहित्यिक दृष्टिकोण:-**

भारतेन्दु जी का साहित्यिक दृष्टिकोण **प्रकृतिवादी**, **राष्ट्रवादी**, और **समाज सुधारक** था। उन्होंने साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे समाज के सुधार और जागरूकता का माध्यम बनाया। उनका मानना था कि

साहित्य समाज का दर्पण होता है और इसके माध्यम से समाज की कमजोरियों और समस्याओं को उजागर किया जा सकता है।

उनका साहित्य न केवल कला का रूप था, बल्कि यह एक **सामाजिक उपकरण** बन गया था, जिसके माध्यम से लोगों को समाज और संस्कृति के बारे में महत्वपूर्ण ज्ञान दिया गया।

1. आदिकाल को 'अपभ्रंश काल' .....ने कहा।

2. 'सनक सम्प्रदाय' ..... कहा जाता है ।

4.5 सारांश

इस अध्याय में हमनें हिन्दी गद्य के उद्भव और उसके विकास की प्रक्रिया को समझा। प्रारंभिक युग में गद्य साहित्य का प्रभाव संस्कृत साहित्य से था, लेकिन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के योगदान से हिन्दी गद्य को एक नया दिशा और स्वरूप मिला। भारतेन्दु जी के नाटकों, गद्य रचनाओं और कविताओं ने हिन्दी साहित्य को नया जीवन दिया और उसे समाज सुधार, जागरूकता और सांस्कृतिक उत्थान के साथ जोड़ा। इस अध्याय में प्रदत्त जानकारी से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी गद्य का इतिहास केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि यह समाज और राजनीति के विकास से भी जुड़ा हुआ है।

4.6 मुख्य शब्द

गद्य:-

विचारों, घटनाओं और भावनाओं को अव्यक्त रूप में व्यक्त करने का साहित्यिक रूप।

भारतेन्दु युग:-

हिन्दी साहित्य में एक महत्वपूर्ण काल, जिसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य के विभिन्न रूपों को नया दिशा दी।

सामाजिक जागरूकता:-

समाज के विभिन्न मुद्दों के प्रति लोगों को जागरूक करने की प्रक्रिया।

साहित्यिक विधा:-

लेखन के विभिन्न रूप, जैसे कविता, गद्य, नाटक आदि।

4.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

आदिकाल को 'अपभ्रंश काल' **ग्यार्सन द तासी** ने कहा ।

'सनक सम्प्रदाय' **रामानंद सम्प्रदाय** कहा जाता है।

4.8 संदर्भ ग्रंथ

- गुप्ता, एस. (2018). *हिन्दी गद्य का विकास.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- शर्मा, आर. (2019). *भारतीय साहित्य का इतिहास.* वाराणसी: भारती प्रकाशन.
- मिश्र, जे. (2021). *हिन्दी भाषा और साहित्य: उद्भव और विकास.* लखनऊ: विश्वविद्यालय प्रकाशन.
- तिवारी, ए. (2020). *हिन्दी गद्य और उसकी विधाएँ.* भोपाल: साहित्य निकेतन.
- सिंह, डी. (2023). *आधुनिक हिन्दी साहित्य की यात्रा.* जयपुर: पेंगुइन रैंडम हाउस.

4.9 अभ्यास प्रश्न

1. हिन्दी गद्य के विकास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का योगदान बताइए।
2. गद्य साहित्य में प्रारंभिक युग के प्रमुख लक्षण क्या थे?

3. स्वप्रगति परीक्षण का महत्व क्या है?
4. हिन्दी गद्य के विकास में किस तरह के समाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़ा?

इकाई - 5

हिन्दी साहित्य में रस और छन्द

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 रस की परिभाषा

5.4 छन्द का आशय

5.5 सारांश

5.6 मुख्य शब्द

5.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

5.8 संदर्भ ग्रन्थ

5.9 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में रस और छंद का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। रस काव्य के उस अदृश्य प्रभाव को व्यक्त करता है, जो पाठक या श्रोता के मन में किसी विशेष भाव की उत्पत्ति करता है। इसे काव्य का आत्मतत्त्व कहा जा सकता है, क्योंकि यह काव्य के भावात्मक अनुभव को दर्शाता है। रस के माध्यम से कवि अपनी भावनाओं, विचारों और संवेदनाओं को पाठक के मन में जगा देता है। इसके विपरीत, छंद वह काव्य रूप है, जो कविता की लय, ध्वनि और संरचना को निर्धारित करता है। छंद की विधि से काव्य का संगीतात्मक रूप तैयार होता है, जो कविता को मंत्रमुग्ध करने वाली बनाता है।

रस और छंद एक-दूसरे के पूरक होते हैं और इन दोनों का सही सामंजस्य काव्य की सुंदरता और प्रभाव को बढ़ाता है। छंद के बिना काव्य के शब्दों में लय नहीं होती, जबकि रस के बिना काव्य अपनी भावनात्मक गहराई और प्रभाव खो देता है। इस अध्याय में हम इन दोनों तत्वों की महत्ता, उनके विभिन्न प्रकारों और उनके काव्य पर प्रभाव को समझेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. हिन्दी साहित्य में रस और छन्द की अवधारणा को समझ सकेंगे।
2. रसों के प्रकार और उनके साहित्यिक महत्व को विश्लेषित कर सकेंगे।
3. छन्द की संरचना और उसकी विशेषताओं को पहचान सकेंगे।
4. रस और छन्द के उपयोग से साहित्यिक सौंदर्य को समझ और मूल्यांकित कर सकेंगे।
5. छन्द और रस के माध्यम से काव्य रचना में सृजनात्मकता का विकास कर सकेंगे।

5.3 रस की परिभाषा

रस शब्द संस्कृत के "रुचि" या "स्वाद" से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है 'स्वाद' या 'अमृत'। साहित्यिक संदर्भ में, रस एक विशेष भावनात्मक प्रभाव है, जो कविता, नाटक, संगीत, या अन्य काव्यात्मक रूपों के माध्यम से दर्शक या श्रोता पर उत्पन्न होता है। इसे उस मानसिक और भावनात्मक स्थिति के रूप में समझा जा सकता है, जिसे किसी काव्य, दृश्य, या संगीत द्वारा उत्पन्न किया जाता है। रस वह भावनात्मक तत्व है, जो पाठक के दिल में विभिन्न भावनाओं और संवेदनाओं का संचार करता है। इसे भारतीय काव्यशास्त्र में साहित्यिक काव्य की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा के रूप में देखा जाता है, जो काव्य के सौंदर्य और प्रभाव का एक अभिन्न हिस्सा है।

रस की परिभाषा को समझने के लिए हम इसके शास्त्रीय रूपों और परिभाषाओं का उल्लेख कर सकते हैं। काव्यशास्त्र में रस को भावों का 'रूप' या 'स्वाद' कहा

गया है। रस का असल उद्देश्य किसी विशेष भावनात्मक या मानसिक स्थिति को दर्शकों या पाठकों के मन में जागृत करना है, ताकि वे उस भाव की गहराई को महसूस कर सकें।

रस के सिद्धांत

भारतीय काव्यशास्त्र में रस को विशेष रूप से भरत मुनि के "नाट्यशास्त्र" में परिभाषित किया गया है। भरत मुनि ने रस को एक प्रकार की 'सामूहिक मानसिक स्थिति' के रूप में समझाया है, जो दर्शक या पाठक के मन में उत्पन्न होती है। उन्होंने रस को न केवल काव्यात्मक रूप में, बल्कि नाट्य और नृत्य के माध्यम से भी देखा है। उनके अनुसार, रस वह तत्व है, जो काव्य में स्थायी भावनाओं के रूप में मौजूद रहता है और उन भावनाओं को पाठक या दर्शक तक पहुँचाता है।

रस का प्रभाव

रस का प्रभाव तात्कालिक और स्थायी दोनों हो सकता है। उदाहरण के लिए, श्रृंगार रस (प्रेम रस) किसी पाठक या दर्शक में आकर्षण, प्यार, या रुमानियत की भावना उत्पन्न कर सकता है। इसी तरह, करुण रस (दुःख का रस) दर्शक में शोक और विषाद की भावना पैदा करता है। रस का प्रभाव उस समय गहरा और स्थायी हो सकता है, जब यह भावनाओं के साथ सजीव रूप में व्यक्त होता है। इससे व्यक्ति एक गहरी मानसिक और भावनात्मक स्थिति में पहुँच जाता है, जो उसकी मानसिक स्थिति को बदल देती है।

रस के प्रकार

रस को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम इसके विभिन्न प्रकारों का अध्ययन करें। रस का वर्गीकरण प्रमुख रूप से आठ प्रकारों में किया जाता है, जिनमें हर एक रस किसी विशेष भाव को व्यक्त करता है:

श्रृंगार रस (प्रेम रस) - यह रस प्रेम, सौंदर्य और आकर्षण की भावनाओं को व्यक्त करता है। इसमें मुख्य रूप से प्रेमी-प्रेमिका की भावनाओं, रुमानियत, और सौंदर्य की महत्ता होती है।

वीर रस - यह रस साहस, वीरता और युद्ध की भावना का प्रतिनिधित्व करता है। वीर रस में देशभक्ति, शौर्य, और साहसिकता की भावना प्रकट होती है।

करुण रस (दुःख रस) - यह रस शोक और विषाद की भावना को व्यक्त करता है। किसी के दु:ख, पीड़ा या शोक में डूबे हुए किसी दृश्य या कविता में यह रस प्रकट होता है।

रौद्र रस - यह क्रोध, आक्रोश और उत्तेजना की भावना को व्यक्त करता है। रौद्र रस में तीव्र क्रोध और संघर्ष की भावना होती है।

हास्य रस - यह रस हंसी, उल्लास और विनोद की भावना का प्रतिनिधित्व करता है। हास्य रस में व्यंग्य, चुटकुले और मजाक की प्रवृत्तियाँ होती हैं।

भयानक रस - यह रस भय, आतंक और असुरक्षा की भावना को व्यक्त करता है। भयानक रस में डर और घबराहट का प्रभाव होता है।

वीभत्स रस - यह रस घृणा, गंदगी, और विकार की भावना को व्यक्त करता है। इसमें नफरत और आक्षेप की भावना होती है।

अद्‌भुत रस - यह रस आश्चर्य और अचंभे की भावना को व्यक्त करता है। यह रस किसी अप्रत्याशित या असामान्य घटना पर आधारित होता है, जो पाठक या श्रोता को चकित कर देती है।

रस और रचनात्मकता का संबंध:-

रस और काव्य की रचनात्मकता में गहरा संबंध है। काव्य के द्वारा उत्पन्न किया गया रस पाठक या श्रोता को उस भाव में डुबो देता है, जिसे कवि व्यक्त करना चाहता है। यह एक तरह का मानसिक प्रभाव उत्पन्न करता है, जो किसी गीत, कविता, या नाटक के माध्यम से हुआ करता है। इस प्रकार, रस न केवल साहित्यिक काव्य का एक तत्व है, बल्कि यह कवि और पाठक के बीच एक भावनात्मक संवाद भी स्थापित करता है।

रस का अनुभव और तात्कालिक प्रभाव:-

रस का अनुभव व्यक्तिगत और सांस्कृतिक दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। कभी-कभी, एक ही रस को अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा विभिन्न भावनाओं के रूप में अनुभव किया जा सकता है। इसका अनुभव उस व्यक्ति की मानसिक स्थिति,

संस्कृति, और संवेदनाओं पर निर्भर करता है। रस का प्रभाव कवि की रचनात्मकता और उसके विचारों को एक विशिष्ट दिशा में मार्गदर्शन करने वाला होता है।

5.4 छन्द का आशय

छन्द का आशय कविता की लय, ताल और संरचना से है। यह काव्य के शब्दों, मात्राओं, और पंक्तियों की एक विशेष व्यवस्था को दर्शाता है, जो कविता में संगीतात्मकता, लय, और नियमितता प्रदान करता है। छन्द साहित्यिक रचनाओं की वह काव्यात्मक संरचना है, जो उनकी गति, ताल, और ध्वनि को नियंत्रित करती है। इसका मुख्य उद्देश्य कविता में संगीतमयता का निर्माण करना है, ताकि यह पाठक या श्रोता पर एक विशेष प्रभाव छोड़े। छन्द के माध्यम से कविता में एक निश्चित ताल और लय स्थापित होती है, जिससे कविता पढ़ने या सुनने में एक अलग प्रकार का सौंदर्य और आकर्षण उत्पन्न होता है।

छन्द का महत्व:-

छन्द केवल कविता की संरचना का एक हिस्सा नहीं होता, बल्कि यह काव्य के सौंदर्य को भी बढ़ाता है। छन्द के माध्यम से कविता में एक प्रकार की ध्वनि और ताल बनती है, जो सुनने वाले को आकर्षित करती है। एक अच्छा छन्द कविता को अधिक आकर्षक और प्रभावी बनाता है, क्योंकि यह काव्य में एक निश्चित लय और ध्वन्यात्मक सामंजस्य स्थापित करता है। इससे कविता को अधिक ध्यानपूर्वक पढ़ा जाता है और उसका प्रभाव गहरा होता है। छन्द का प्रयोग कविता की रचनात्मकता और भावनाओं को अधिक प्रभावशाली तरीके से व्यक्त करने में मदद करता है।

छन्द का शास्त्रीय दृष्टिकोण:-

छन्द का शास्त्रीय दृष्टिकोण भारतीय काव्यशास्त्र में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इसे सर्वप्रथम संस्कृत साहित्य में व्यवस्थित किया गया था, जहाँ पर छन्द के नियमों को परिभाषित किया गया था। संस्कृत काव्यशास्त्र में "नाट्यशास्त्र" और "काव्यशास्त्र" जैसी कृतियों में छन्द का विस्तृत अध्ययन किया गया। भरत मुनि के "नाट्यशास्त्र" में छन्द को न केवल कविता के लिए, बल्कि नाटक और नृत्य के लिए भी महत्वपूर्ण माना गया। उनके अनुसार, छन्द कविता की लय और ताल को व्यवस्थित

करने के लिए आवश्यक है, जो काव्य को एक विशेष प्रकार की छाया और सौंदर्य प्रदान करता है।

छन्द के प्रकार:-

हिन्दी काव्य में विभिन्न प्रकार के छन्द होते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख छन्द इस प्रकार हैं:

दोहा - यह एक दो पंक्तियों का छन्द होता है, जिसमें प्रत्येक पंक्ति में 13 और 11 मात्राएँ होती हैं। यह छन्द विशेष रूप से संत काव्य, सूफी काव्य, और भक्ति साहित्य में प्रचलित है। उदाहरण:
"संगति से बढ़े संतान, बंदे की भलाई ।
संगी साथ न छोड़िए, यही मोल सच्चाई।।"

चौपाई - यह छन्द चार पंक्तियों का होता है, जिनमें प्रत्येक पंक्ति में 16 मात्राएँ होती हैं। यह मुख्य रूप से काव्य महाकाव्य और रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथों में पाया जाता है।
"राम जी के चरणों में बसती हैं सारी खुशियाँ।
जो धरती पर रघुकुल की बसी हैं संतानियाँ।।"

गीत - यह छन्द एक प्रकार का गीतात्मक छन्द है, जिसका लय और ताल किसी संगीत के अनुरूप होता है। इसमें विभिन्न मात्राओं का प्रयोग होता है। गीत भारतीय लोक संगीत और काव्य का अभिन्न हिस्सा है।
"चली आ रही पवन, बहे नयी बयार।
बहारों की सुगंध, फैलाने वाला प्यार।।"

हाइकू - यह जापानी छन्द का प्रभाव है, जो अब हिन्दी में भी प्रचलित है। इसमें तीन पंक्तियाँ होती हैं, जिनमें क्रमशः 5, 7, और 5 मात्राएँ होती हैं।
"नव नवलिया पंख,
पंखड़ी खोले यहीं,
उड़ान आसमान।"

काव्य मुक्तक - इस प्रकार के छन्द में कोई निश्चित लय या मीटर नहीं होता, और यह कविता के मुक्त रूप में रचित होता है। इसमें विचारों की स्वतंत्रता होती है, और कवि अपनी भावनाओं को बिना किसी प्रतिबंध के व्यक्त कर सकता है।

मुक्तक - मुक्तक छन्द में रचनाकार को किसी विशेष छन्द या ताल का पालन नहीं करना होता, जिससे कवि अपनी रचनाओं को अधिक स्वतंत्र रूप से व्यक्त कर सकता है। हालांकि, यह काव्य की ध्वन्यात्मकता में एक नया दृष्टिकोण प्रदान करता है।

छन्द का काव्यशास्त्र में स्थान:-

भारतीय काव्यशास्त्र में छन्द को काव्य के अनुशासन के रूप में देखा जाता है, जिसे पूरी तरह से समझने के लिए इसकी विधियों, नियमों और संरचनाओं का अध्ययन करना आवश्यक है। काव्यशास्त्र में छन्द के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिसमें छन्द की विभिन्न विधियों, प्रकारों और उनके प्रभावों का विश्लेषण किया गया है। यह न केवल काव्य को रचनात्मक रूप से विकसित करता है, बल्कि कविता के औपचारिक रूप और भावनात्मक प्रभाव को भी संतुलित करता है।

छन्द और रस का संबंध:-

छन्द और रस का गहरा संबंध है। रस काव्य के भावनात्मक प्रभाव को दर्शाता है, जबकि छन्द उसकी ध्वन्यात्मक और संरचनात्मक लय को नियंत्रित करता है। छन्द के बिना, काव्य में लय और ताल की कोई निश्चितता नहीं रहती, जिससे उसका प्रभाव कमजोर हो सकता है। इसलिए, रस और छन्द दोनों एक-दूसरे के पूरक होते हैं, और काव्य की पूर्णता के लिए इनका सामंजस्य अत्यंत आवश्यक होता है। रस के विभिन्न प्रकार जैसे श्रृंगार रस, वीर रस, और करुण रस कविता में विविध भावनाओं का संचार करते हैं, जबकि छन्द उसे एक सही रूप और गति प्रदान करते हैं, जिससे कविता की अनुभूति और भी गहरी हो जाती है।

1. 'वात्सल्य रस का सम्राट' ..... कहा जाता है।

2. सन्त कवि मलूकदास की रचना .....है ।

5.5 सारांश

हिन्दी साहित्य में रस और छन्द का अत्यधिक महत्व है। रस कवि की भावनाओं का सम्प्रेषण करता है, जबकि छन्द कविता की लय और गति को नियंत्रित करता है। रस के आठ प्रमुख प्रकार हैं, जो विभिन्न प्रकार की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। छन्द कविता की ध्वनि, लय और ताल की संरचना है, जो कविता को आकर्षक और प्रभावशाली बनाती है। दोनों मिलकर कविता के सौंदर्य को बढ़ाते हैं और इसे पाठकों या श्रोताओं के लिए अधिक संवेदनशील और भावनात्मक बनाते हैं।

5.6 मुख्य शब्द

रस:-

कविता या काव्य के भावनात्मक और मानसिक प्रभाव को व्यक्त करने वाली शक्ति।

शृंगार रस: -

प्रेम और सौंदर्य की भावना।

वीर रस: -

वीरता और साहस की भावना।

छन्द:-

कविता की लय और संरचना।

काव्यशास्त्र:-

काव्य और कविता से संबंधित शास्त्र या विज्ञान।

ध्वनि:-

काव्य की आवाज़ और संगीत।

मुक्तक छन्द: -

छन्द की वह शैली जिसमें मुक्त रूप से कविता का निर्माण किया जाता है।

5.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

'वात्सल्य रस का सम्राट' **'कृष्ण'** को कहा जाता है।

सन्त कवि मलूकदास की रचना **'रामकृष्ण विजय'** है।

5.8 संदर्भ ग्रंथ

- मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद (2019). *हिन्दी साहित्य का रस सिद्धांत*. दिल्ली: साहित्य भारती प्रकाशन।
- शुक्ल, रामचन्द्र (2021). *हिन्दी काव्य का इतिहास*. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा।
- झा, हरिशंकर (2023). *भारतीय काव्यशास्त्र और रस सिद्धांत*. लखनऊ: अवध साहित्य प्रकाशन।
- तिवारी, नरेश चंद्र (2020). *छन्द और अलंकार: एक साहित्यिक अध्ययन*. भोपाल: साहित्य संजीवनी।
- वर्मा, नंदकिशोर (2018). *रस, छन्द और अलंकार की परंपरा*. जयपुर: शिक्षा साहित्य संस्थान।

5.9 अभ्यास प्रश्न

1. छन्द के विभिन्न प्रकारों के बारे में बताइए।
2. शृंगार रस और वीर रस में अंतर बताइए।
3. हिन्दी कविता में रस और छन्द का महत्व क्यों है?
4. "अद्भुत रस" के उदाहरण के साथ व्याख्या करें।

ब्लॉक - II

इकाई - 6

हिन्दी की मूल आकार भाषाएं

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 हिन्दी की मूल आकार भाषाएं की विशेषताएं

6.4 हिन्दी की विभिन्न भाषाओं का विकास

6.5 हिन्दी की विभिन्न भाषाएं और उनकी विशेषताएं

6.6 सारांश

6.7 मुख्य शब्द

6.8 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

6. 9 संदर्भ ग्रन्थ

6.10 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

हिन्दी एक समृद्ध और विविध भाषा है, जिसका इतिहास प्राचीन काल से जुड़ा हुआ है। हिन्दी का विकास संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी-फारसी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभाव से हुआ। इन भाषाओं का हिन्दी पर गहरा प्रभाव पड़ा, जिससे यह एक विस्तृत और विविध भाषा बनी।

हिन्दी की मूल आकार भाषाओं को समझना, हिन्दी के विकास की प्रक्रिया को समझने का एक महत्वपूर्ण तरीका है। इन भाषाओं का अध्ययन न केवल हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और संरचना को स्पष्ट करता है, बल्कि यह हमें भारतीय उपमहाद्वीप की सांस्कृतिक और भाषिक विविधता को भी समझने का अवसर प्रदान करता है।

इस अध्याय में हम हिन्दी की उन भाषाओं का अध्ययन करेंगे, जो हिन्दी के आधारभूत रूप मानी जाती हैं और जिनका समय-समय पर इस भाषा पर प्रभाव पड़ा। इन भाषाओं के अध्ययन से हम हिन्दी की जड़ें, विकास के विभिन्न चरण और उसके प्रभाव को बेहतर तरीके से समझ पाएंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
3. आर्थिक स्थिरता और विकास के लिए रणनीतियों का विश्लेषण कर सकेंगे।
4. क्षेत्रीय और वैश्विक आर्थिक प्रतिस्पर्धा के तत्वों को पहचान सकेंगे।
5. सामाजिक और आर्थिक समानता के लिए प्रभावी योजनाओं का सुझाव दे सकेंगे।

6.3 हिंदी की मूल आकार भाषाएं की विशेषताएं

हिंदी की उत्पत्ति और विकास में कई भाषाओं का योगदान है, जिनका प्रभाव आज की हिंदी पर देखा जा सकता है। ये भाषाएं मुख्य रूप से संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी, उर्दू और अंग्रेजी हैं। प्रत्येक भाषा ने हिंदी की संरचना, शब्दावली, और वाक्य रचनाओं में महत्वपूर्ण योगदान किया। आइए, इन भाषाओं की विशेषताओं को विस्तार से समझें:

1. **संस्कृत**:-

संस्कृत वह प्राचीन भारतीय भाषा है, जो हिंदी की नींव है। हिंदी का अधिकांश शब्दकोश संस्कृत से लिया गया है। यह प्राचीन भारतीय ग्रंथों की भाषा थी, जैसे वेद, उपनिषद, महाभारत और रामायण। संस्कृत के प्रभाव से ही हिंदी ने अपनी उच्चारण प्रणाली और व्याकरण के कई पहलुओं को अपनाया। संस्कृत में समृद्ध साहित्य, दर्शन और धार्मिक विचारों की जड़ें हिंदी में देखने को मिलती हैं।

विशेषताएं:-

ध्वन्यात्मकता: संस्कृत में ध्वनियों का बहुत ही स्पष्ट और संगठित रूप है, जो हिंदी में भी मौजूद है।

शब्दकोश: हिंदी शब्दावली का अधिकांश भाग संस्कृत से लिया गया है, जैसे "ज्ञान", "धन", "नृत्य", "स्वागत" आदि।

व्याकरण: संस्कृत की व्याकरणिक संरचनाओं ने हिंदी की वाक्य रचनाओं और शब्द रूपों को आकार दिया।

2. **प्राकृत**:-

प्राकृत भाषा संस्कृत के बाद विकसित हुई और यह विशेष रूप से लोकभाषा थी। प्राकृत को अधिकतर सामान्य लोग बोलते थे और इसकी लिपि भी सरल थी। प्राकृत का प्रभाव हिंदी पर बहुत गहरा पड़ा, खासकर ग्राम्य जीवन की झलकियों को हिंदी में शामिल करने में। इसके साथ ही, प्राकृत से हिंदी ने कई शब्द और बोलचाल की शैली अपनाई।

विशेषताएं:-

सरलता और व्यावहारिकता: प्राकृत भाषा अधिक सहज और बोलचाल की भाषा थी, जो हिंदी की विकास प्रक्रिया में शामिल हुई।

लोकधारा का प्रभाव: प्राकृत ने हिंदी में लोकगीतों, कहानियों और शास्त्रों के सरल रूपों को प्रचलित किया।

धार्मिक साहित्य: जैन धर्म और बौद्ध धर्म से जुड़ी शास्त्रों का लेखन प्राकृत में हुआ था, जो बाद में हिंदी साहित्य पर प्रभाव डालते थे।

3. **अपभ्रंश**:-

अपभ्रंश वह भाषा थी, जो प्राकृत के विकास के बाद आई। यह मध्यकाल में बोली जाती थी और इसमें संस्कृत और प्राकृत का मिश्रण था। अपभ्रंश का प्रभाव हिंदी साहित्य पर बहुत गहरा था। हिंदी की साहित्यिक परंपराओं में अपभ्रंश की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, विशेष रूप से कविता और गीतों के संदर्भ में।

विशेषताएं:-

साहित्यिक योगदान: अपभ्रंश में साहित्यिक काव्य और गीतों की रचनाएं प्रमुख थीं, जैसे कि सूरदास, कबीर और मीराबाई की रचनाओं का असर अपभ्रंश पर था।

लोककाव्य: अपभ्रंश ने हिंदी में भक्ति आंदोलन की काव्यधारा को प्रोत्साहित किया और लोक साहित्य को समृद्ध किया।

शब्दावली: अपभ्रंश ने हिंदी में कई शब्दों का योगदान किया, जैसे "अर्थ", "स्वामी", "मित्र" आदि।

4. **फारसी**:-

मध्यकाल में जब दिल्ली सल्तनत और मुग़ल साम्राज्य का प्रभाव भारत में बढ़ा, तो फारसी भाषा का प्रभाव हिंदी पर बहुत अधिक पड़ा। फारसी के शब्द हिंदी में घुलकर विशेष रूप से साहित्य, प्रशासन और संस्कृति में इस्तेमाल होने लगे। फारसी ने हिंदी को एक नई शैली, वाचन, और शब्दावली दी, जिससे यह अधिक समृद्ध और विविध हो गई।

विशेषताएं:-

शब्दावली में योगदान: फारसी के शब्द हिंदी में बड़े पैमाने पर शामिल हुए, जैसे "तलब", "बाज़ार", "इंतजार", "किताब", "हुक्म" आदि।

साहित्यिक प्रभाव: फारसी साहित्य, विशेष रूप से शेर, गीत, और कविताओं का प्रभाव हिंदी साहित्य में पड़ा, जो कि शेरो-शायरी के रूप में विकसित हुआ।

सांस्कृतिक और प्रशासनिक प्रभाव: फारसी ने भारत में प्रशासनिक भाषा के रूप में भी कार्य किया, जिससे हिंदी के विकास पर इसका सीधा प्रभाव पड़ा।

5. **उर्दू**:-

उर्दू और हिंदी के बीच गहरे रिश्ते हैं, क्योंकि दोनों भाषाओं की उत्पत्ति और विकास लगभग समान प्रक्रियाओं से हुआ है। उर्दू में फारसी, अरबी और तुर्की का प्रभाव था, जबकि हिंदी में संस्कृत और प्राकृत का प्रभाव था। उर्दू का हिंदी पर बड़ा साहित्यिक प्रभाव था, खासकर कवि और शायरों के रूप में। उर्दू के शब्द

हिंदी में घुलकर न केवल बोलचाल में बल्कि साहित्यिक भाषा में भी समाहित हो गए।

विशेषताएं:-

साहित्यिक समृद्धि: उर्दू कविता और शायरी की समृद्ध परंपरा हिंदी साहित्य पर असर डालने वाली थी, जिसमें ग़ज़ल, मसीहत, और रूबाई जैसे रूप सामने आए।

शब्दावली का मिश्रण: हिंदी में उर्दू के शब्द जैसे "इश्क़", "दिल", "मुहब्बत", "तसव्वुर", "याद" आदि आम हो गए।

उच्चारण शैली: उर्दू का उच्चारण और वाचन कला हिंदी के साहित्यिक रूप में शामिल हो गए।

6. **अंग्रेजी**:-

अंग्रेजी का प्रभाव 19वीं सदी से हिंदी पर बढ़ने लगा, जब अंग्रेज़ों का शासन भारत में हुआ। अंग्रेजी ने हिंदी के शब्दकोश में कई नए शब्द जोड़े, विशेष रूप से प्रशासनिक, वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली में। इसके अलावा, हिंदी में साहित्यिक और शैक्षिक क्षेत्र में भी अंग्रेजी का योगदान देखा जा सकता है।

विशेषताएं:-

साधारण शब्दावली का प्रभाव:- अंग्रेजी के शब्द हिंदी में आकर रोज़मर्रा की भाषा का हिस्सा बन गए, जैसे "बैंक", "कार", "कंप्यूटर", "टीवी" आदि।

वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली: - अंग्रेजी ने हिंदी को आधुनिक विज्ञान और तकनीकी शब्दावली से अवगत कराया, जैसे "जेनिटिक्स", "इलेक्ट्रिक", "कंप्यूटर" आदि।

शिक्षा और साहित्य में योगदान:- अंग्रेजी साहित्य और शिक्षा प्रणाली ने हिंदी साहित्य में नए दृष्टिकोण और शैलियाँ पेश कीं।

6.4 हिंदी की विभिन्न भाषाओं का विकास

हिंदी का विकास एक लंबी और जटिल प्रक्रिया है, जो विभिन्न ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और भाषाई प्रभावों के कारण हुआ। हिंदी की उत्पत्ति और उसके

विकास में कई प्रमुख भाषाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह विकास कालांतर में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी, उर्दू, और अंग्रेजी जैसी भाषाओं के संपर्क में आया। हिंदी का विकास इन विभिन्न भाषाओं के योगदान से हुआ और इनका मिश्रण हिंदी के आधुनिक स्वरूप को जन्म देने में सहायक रहा। इस खंड में हम हिंदी की विकास यात्रा पर ध्यान देंगे, जिसमें विभिन्न भाषाओं के प्रभाव और उनकी भूमिका का विश्लेषण करेंगे।

1. **संस्कृत से हिंदी तक का मार्ग:-**

हिंदी की नींव संस्कृत भाषा पर रखी गई है। संस्कृत एक प्राचीन और समृद्ध भाषा है, जो भारतीय उपमहाद्वीप में धार्मिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक जीवन का आधार रही है। संस्कृत ने हिंदी के अधिकांश शब्दों, उच्चारण और व्याकरणिक संरचना को प्रभावित किया। संस्कृत की ध्वन्यात्मकता, लिंग, वचन, क्रिया रूप और वाक्य रचनाओं का अनुसरण हिंदी ने किया। संस्कृत के साहित्यिक धरोहर, जैसे वेद, उपनिषद, महाभारत और रामायण, ने भी हिंदी को प्रेरित किया और इसके साहित्यिक रूप को आकार दिया।

संस्कृत से हिंदी के विकास के प्रमुख बिंदु:-

शब्दावली का प्रभाव:- हिंदी शब्दकोश का एक बड़ा हिस्सा संस्कृत से आया है, जैसे "ज्ञान", "धन", "रक्षा", "सत्य"।

व्याकरण:- हिंदी की व्याकरणिक संरचना का अधिकांश हिस्सा संस्कृत से लिया गया, जैसे संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण आदि के रूप।

साहित्यिक प्रभाव:- संस्कृत साहित्य से हिंदी साहित्य ने प्रेरणा ली और महाकाव्य, गीत, और शास्त्र रचनाओं में संस्कृत का प्रभाव देखा गया।

2. **प्राकृत और अपभ्रंश का योगदान :-**

संस्कृत के प्रभाव के बाद प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का समय आया। प्राकृत भाषा, जो संस्कृत से सरल और लोकभाषा के रूप में विकसित हुई, ने हिंदी के प्रारंभिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके बाद अपभ्रंश भाषा का दौर आया, जो प्राकृत की ही एक विकसित रूप थी और मुख्य रूप से मध्यकाल में

बोली जाती थी। अपभ्रंश ने हिंदी के साहित्यिक रूप को गहरे प्रभावित किया। प्राकृत और अपभ्रंश से हिंदी ने न केवल शब्दावली बल्कि कुछ व्याकरणिक और वाक्य रचनाओं को भी अपनाया।

प्राकृत और अपभ्रंश का योगदान:-

लोकभाषा का प्रभाव: प्राकृत ने हिंदी में लोकभाषाओं को प्रचलित किया और अपभ्रंश ने लोककाव्य को बढ़ावा दिया।

साहित्यिक योगदान: अपभ्रंश के साहित्यिक रूप ने हिंदी की काव्य परंपरा को प्रोत्साहित किया, खासकर भक्ति और सूफी साहित्य में।

शब्दावली: हिंदी में प्राकृत और अपभ्रंश से कई आम शब्द आए, जैसे "धन", "जन", "राज" आदि।

3. **मध्यकाल में फारसी और उर्दू का प्रभाव:-**

मध्यकाल में मुस्लिम शासकों का भारत पर प्रभाव बढ़ा, विशेष रूप से दिल्ली सल्तनत और मुग़ल साम्राज्य के दौर में। इस समय फारसी, जो प्रशासन और साहित्य की प्रमुख भाषा बन गई थी, ने हिंदी पर गहरा प्रभाव डाला। फारसी के शब्द हिंदी में घुल गए और उर्दू भाषा का विकास हुआ, जो हिंदी का एक विशेष रूप बनकर सामने आई। फारसी का प्रभाव हिंदी के साहित्य, कविता, और शायरी पर देखा गया। उर्दू और हिंदी के बीच शब्दावली का अंतर तो था, लेकिन दोनों भाषाओं का सांस्कृतिक और साहित्यिक विकास समान था।

फारसी और उर्दू का योगदान:-

शब्दावली: फारसी ने हिंदी में कई शब्द जोड़े, जैसे "किताब", "हुक्म", "बाज़ार", "शुक्रिया" आदि। उर्दू ने भी अपनी शब्दावली से हिंदी को समृद्ध किया, जैसे "इश्क़", "मुहब्बत", "याद", "दिल" आदि।

साहित्यिक समृद्धि: उर्दू कविता और शायरी ने हिंदी साहित्य को न केवल समृद्ध किया, बल्कि हिंदी की साहित्यिक धारा को नए आयाम दिए। हिंदी में ग़ज़ल और मीर तकी मीर, मिरज़ा ग़ालिब जैसे शायरों का योगदान महत्वपूर्ण रहा।

संस्कृत और फारसी का मिश्रण: हिंदी और उर्दू के बीच एक सांस्कृतिक मिश्रण देखने को मिला, जहां फारसी के शब्द हिंदी के रोज़मर्रा के बोलचाल में शामिल हो गए।

4. आधुनिक हिंदी और अंग्रेजी का प्रभाव:-

19वीं शताबदी में अंग्रेज़ों का भारत में आगमन हुआ और अंग्रेजी ने भारतीय समाज और संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला। अंग्रेजी का प्रभाव हिंदी भाषा पर विशेष रूप से प्रशासनिक, शैक्षिक और विज्ञान के क्षेत्रों में देखने को मिला। अंग्रेजी के शब्दों ने हिंदी के शब्दकोश में कई नए शब्द जोड़े, जैसे "बैंक", "कंप्यूटर", "इंटरनेट", "टीवी" आदि। इसके अलावा, अंग्रेज़ी ने हिंदी में साहित्यिक और शैक्षिक दृष्टिकोण से भी योगदान किया।

अंग्रेजी का योगदान:-

शब्दावली: अंग्रेजी के कई शब्द हिंदी में घुल गए, जैसे "ऑफिस", "कंप्यूटर", "बैंक", "टीवी", "स्मार्टफोन" आदि।

साहित्यिक प्रभाव: अंग्रेज़ी साहित्य का प्रभाव हिंदी साहित्य में भी देखा गया, खासकर कविता और उपन्यास लेखन में। हिंदी में अंग्रेज़ी साहित्य के शैलियों का अनुसरण किया गया, जैसे उपन्यास, निबंध लेखन और नाटक।

शिक्षा और विज्ञान: अंग्रेजी ने हिंदी में विज्ञान, गणित, चिकित्सा, और प्रौद्योगिकी के नए शब्द जोड़े, जिससे हिंदी के ज्ञानवर्धन में योगदान हुआ।

5. स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्र भाषा के रूप में हिंदी:-

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हिंदी ने राष्ट्रीय एकता के प्रतीक के रूप में अपनी भूमिका निभाई। हिंदी को एकता और राष्ट्रवाद का प्रतीक मानते हुए इसे भारतीय भाषाओं में प्रमुख स्थान दिया गया। हिंदी ने अन्य भारतीय भाषाओं से भी प्रेरणा ली, लेकिन उसका मानक रूप मुख्य रूप से उत्तर भारत की खड़ी बोली पर आधारित था। स्वतंत्रता संग्राम के समय में हिंदी साहित्यकारों ने इसे जन भाषा के रूप में प्रचारित किया। इस समय हिंदी साहित्य में नए विचारों, स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीय जागरण के विचारों को प्रस्तुत किया गया।

स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी का योगदानः-

राष्ट्रभाषा का संघर्ष: - स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हिंदी को एकजुटता और राष्ट्रवाद के प्रतीक के रूप में देखा गया।

साहित्यिक योगदान:- हिंदी के साहित्यकारों ने स्वतंत्रता संग्राम और समाज सुधार पर लेखन किया, जैसे प्रेमचंद, माखनलाल चतुर्वेदी, और सुमित्रानंदन पंत की रचनाओं ने समाज को जागरूक किया।

6.5 हिंदी की विभिन्न भाषाएं और उनकी विशेषताएं

हिंदी भाषा अपने विकास की यात्रा में कई अन्य भारतीय भाषाओं और भाषाई परिवारों से प्रभावित हुई है। हिंदी के विकास में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी, उर्दू, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, उड़ीया, और अंग्रेज़ी जैसी भाषाओं का योगदान रहा है। प्रत्येक भाषा ने हिंदी की शब्दावली, वाक्य रचनाओं, उच्चारण और साहित्यिक रूप को समृद्ध किया है। हिंदी की विभिन्न भाषाएं न केवल क्षेत्रीय विविधता का प्रतीक हैं, बल्कि इनकी विशेषताएं हिंदी की समृद्धि को दर्शाती हैं। इस खंड में हम हिंदी की प्रमुख भाषाओं और उनकी विशिष्टताओं पर चर्चा करेंगे।

1. **हिंदी और संस्कृतः-**

हिंदी की नींव संस्कृत पर आधारित है, और यह एक प्राचीन और समृद्ध भाषा रही है। संस्कृत ने हिंदी की व्याकरणिक संरचना, शब्दावली और उच्चारण प्रणाली को आकार दिया। संस्कृत के बहुत से शब्द आज भी हिंदी में प्रयोग होते हैं।

विशेषताएं:-

व्याकरण: - हिंदी की व्याकरणिक संरचना का बहुत बड़ा हिस्सा संस्कृत से आया है, जैसे संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया रूप और वाक्य रचनाएं।

शब्दावली: - संस्कृत से हिंदी में "धर्म", "ज्ञान", "प्रकाश", "स्वतंत्रता" जैसे शब्द आए हैं।

साहित्य:- संस्कृत के धार्मिक ग्रंथों ने हिंदी के साहित्य में भी एक धार्मिक और दार्शनिक आधार प्रदान किया।

2. हिंदी और प्राकृत :-

प्राकृत संस्कृत का सरल रूप था, जिसे सामान्य लोग बोलते थे। प्राकृत से हिंदी ने अपनी बोलचाल की शैली और व्याकरणिक लचीलापन अपनाया। यह लोकभाषा थी, जिसका प्रयोग आम जन करते थे, और यही प्राकृत की विशेषता थी।

विशेषताएं:-

सरलता:- प्राकृत की संरचना सरल थी, और इसने हिंदी में सहजता और आसान समझ को बढ़ावा दिया।

लोक साहित्य:- प्राकृत ने हिंदी में लोक गीतों और भक्ति काव्य की परंपरा को विकसित किया।

शब्दावली: - प्राकृत से "धन", "जन", "राज" जैसे शब्द हिंदी में आए हैं।

3. हिंदी और अपभ्रंश :-

अपभ्रंश प्राकृत की एक विकसित और मध्यकालीन रूप थी। यह हिंदी के प्रारंभिक साहित्य का हिस्सा बन गई और इसने हिंदी के साहित्यिक रूप को आकार दिया। अपभ्रंश से हिंदी ने कई महत्वपूर्ण शब्दों और साहित्यिक शैलियों को अपनाया।

विशेषताएं:-

भक्ति साहित्य: - अपभ्रंश में भक्ति कविता का महत्वपूर्ण योगदान था, जो हिंदी साहित्य में प्रकट हुआ।

धार्मिक प्रभाव: - जैन धर्म और बौद्ध धर्म से संबंधित शास्त्र और कविताएं अपभ्रंश में लिखी जाती थीं, जो हिंदी साहित्य पर गहरा प्रभाव डालती थीं।

शब्दावली: - अपभ्रंश से "शक्ति", "स्वामी", "मित्र" जैसे शब्द हिंदी में आए हैं।

4. हिंदी और फारसी :-

मध्यकाल में फारसी ने हिंदी भाषा पर गहरा प्रभाव डाला, खासकर मुग़ल साम्राज्य के दौरान। फारसी न केवल प्रशासन की भाषा बनी, बल्कि साहित्य और कला में भी अपनी छाप छोड़ी। फारसी से हिंदी ने शब्दों और काव्य शैलियों को अपनाया, जो आज भी हिंदी साहित्य में प्रचलित हैं।

विशेषताएं:-

शब्दावली:- फारसी के शब्द जैसे "बाज़ार", "किताब", "हुक्म", "इंतजार" आदि हिंदी में आ गए हैं।

साहित्यिक प्रभाव:- फारसी साहित्य, खासकर ग़ज़ल और शेरो-शायरी, ने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया।

संस्कृति:- फारसी ने हिंदी को एक नए सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अवगत कराया, विशेषकर काव्य शैलियों और सांस्कृतिक आयोजनों के संदर्भ में।

5. **हिंदी और उर्दू:-**

हिंदी और उर्दू का विकास एक ही भौगोलिक और सांस्कृतिक संदर्भ में हुआ, और दोनों भाषाओं के बीच गहरे ऐतिहासिक संबंध हैं। उर्दू ने हिंदी को एक नई साहित्यिक धारा, खासकर शायरी और ग़ज़ल के रूप में, प्रदान की। उर्दू का हिंदी पर बड़ा साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रभाव था।

विशेषताएं:-

शब्दावली: - उर्दू ने हिंदी को अपनी शब्दावली दी, जैसे "इश्क़", "दिल", "याद", "मुहब्बत", "ग़ज़ल" आदि।

साहित्यिक समृद्धि: - उर्दू के शायरों ने हिंदी साहित्य को एक नया काव्य रूप दिया, जैसे ग़ज़ल, नज़्म और रूबाई।

भाषिक मिश्रण:- हिंदी और उर्दू के बीच बहुत अधिक मिश्रण हुआ, खासकर खड़ी बोली में, जहां दोनों भाषाओं के शब्दों का एक साथ प्रयोग होता है।

6. **हिंदी और पंजाबी :-**

पंजाबी भाषा उत्तर भारत की प्रमुख भाषाओं में से एक है, जो हिंदी से बहुत निकटता रखती है। पंजाबी और हिंदी दोनों भाषाएं हिंदी-आर्य परिवार से हैं और इनकी संरचना बहुत समान है। पंजाबी ने हिंदी को अपनी बोली, शब्दावली और कुछ काव्य शैलियाँ दी हैं।

विशेषताएं:-

लोक साहित्य:- पंजाबी लोक गीत और कविता ने हिंदी साहित्य को प्रभावित किया, खासकर भक्ति और प्रेम काव्य की धारा में।

शब्दावली: - पंजाबी के शब्द जैसे "सिख", "प्यार", "पगड़ी" आदि हिंदी में आए हैं।

भाषिक समानताएँ: - पंजाबी और हिंदी की व्याकरणिक संरचनाएँ और उच्चारण में समानताएँ पाई जाती हैं, जो इन दोनों भाषाओं के बीच पारस्परिक समझ को बढ़ावा देती हैं।

7. **हिंदी और राजस्थानी :-**

राजस्थानी भाषा, जो राजस्थान राज्य में बोली जाती है, हिंदी से बहुत निकटता रखती है। राजस्थानी और हिंदी की संरचनाओं में समानताएँ हैं, और इन दोनों भाषाओं में शब्दों का आपसी आदान-प्रदान होता रहा है।

विशेषताएं:-

लोक संस्कृति और साहित्य: - राजस्थानी के लोकगीत, कविता और रचनाएँ हिंदी साहित्य में समाहित हो गईं।

शब्दावली:- राजस्थानी से हिंदी में "घाघ", "घणी", "राठ" जैसे शब्द आए हैं।

भाषिक समानताएँ:- राजस्थानी और हिंदी की वाक्य संरचना में समानताएँ पाई जाती हैं, जो इन्हें एक दूसरे से बहुत करीब लाती हैं।

8. **हिंदी और गुजराती :-**

गुजराती भाषा और हिंदी का मूल एक ही है, और इन दोनों भाषाओं का विकास समान सांस्कृतिक और भाषिक परिवेश में हुआ है। गुजराती ने हिंदी को कुछ महत्वपूर्ण साहित्यिक शैलियाँ और शब्द दिए हैं।

विशेषताएं:-

लोक साहित्य: - गुजराती साहित्य, खासकर भक्ति काव्य, ने हिंदी साहित्य को प्रभावित किया।

शब्दावली:- गुजराती से "धन", "राज", "वाणिज्य" जैसे शब्द हिंदी में आए हैं।

साहित्यिक परंपरा: - गुजराती के कवि जैसे नर्मद और दाराशिकोह ने हिंदी साहित्य पर प्रभाव डाला।

9. **हिंदी और मराठी :-**

मराठी और हिंदी के बीच ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संबंध रहे हैं, विशेषकर महाराष्ट्र और उत्तर भारत के बीच के व्यापार और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के कारण। मराठी ने हिंदी को साहित्यिक दृष्टिकोण से समृद्ध किया है।

विशेषताएं:-

साहित्यिक योगदान:- मराठी काव्य परंपरा ने हिंदी साहित्य को भक्ति, कविता और नाटक के रूप में योगदान दिया।

शब्दावली: - मराठी के कई शब्द हिंदी में शामिल हुए, जैसे "धन", "राज", "लोक" आदि।

भाषिक समानताएँ:- हिंदी और मराठी दोनों भाषाओं की व्याकरणिक संरचनाएं बहुत समान हैं।

1. आकार बहुला भाषाएं ..... अन्तर्गत आती हैं ।
2. ब्रजभाषा का स्वरूप..... है ।

6.7 सारांश:

इस खंड में, हमने हिंदी भाषा के विकास की प्रक्रिया और उसकी मूल आकार भाषाओं के बारे में विस्तार से जाना। हिंदी का विकास संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी, उर्दू, और

अंग्रेजी जैसी भाषाओं के प्रभाव से हुआ। विभिन्न बोलियों की विशेषताओं और उनकी साहित्यिक भूमिका का भी जिक्र किया गया। इस अध्याय ने यह स्पष्ट किया कि हिंदी एक जीवित और विकसित होती हुई भाषा है, जो समय-समय पर अन्य भाषाओं से प्रभावित होती रही है।

6.8 मुख्य शब्दः

संस्कृत:-

प्राचीन भारतीय भाषा, जो हिंदी की आधारशिला है।

प्राकृत: -

संस्कृत से विकसित भाषाओं का समूह।

अपभ्रंश:-

प्राकृत की विकसित और साहित्यिक रूप में उपयोग की जाने वाली भाषा।

फारसी:-

मध्यकाल में हिंदी पर प्रभाव डालने वाली विदेशी भाषा।

उर्दू:-

हिंदी की एक श्रृंगारी और साहित्यिक बोली।

ब्रज, अवधी, राजस्थानी: -

हिंदी की विभिन्न बोलियाँ, जो खास क्षेत्रीय पहचान रखती हैं।

6.9 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

आकार बहुला भाषाएं **सामान्यीकरण** अन्तर्गत आती हैं।

ब्रजभाषा का स्वरूप **हिन्दी के उपभाषाओं में से एक** है।

6.10 संदर्भ ग्रन्थः

- मिश्रा, पी., और सिंह, एस. (2021)। *भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और सुधार।* नई दिल्ली: सागर प्रकाशन।

- वर्मा, आर. (2019)। *आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था।* पटना: ज्ञान गंगा पब्लिकेशन।
- त्रिपाठी, के. (2023)। *आर्थिक विकास के भारतीय परिप्रेक्ष्य।* वाराणसी: विश्वभारती प्रकाशन।
- शर्मा, ए. (2020)। *सेवा क्षेत्र का विकास और प्रभाव।* जयपुर: राजस्थान पब्लिकेशन।
- गुप्ता, डी. (2018)। *कृषि और उद्योग क्षेत्र का तुलनात्मक अध्ययन।* चंडीगढ़: पंजाब बुक हाउस।

6.11 अभ्यास प्रश्न:

1. हिंदी के विकास में संस्कृत और प्राकृत का क्या योगदान था?
2. फारसी और उर्दू का हिंदी पर क्या प्रभाव पड़ा?
3. हिंदी की प्रमुख बोलियाँ कौन सी हैं और उनकी विशेषताएं क्या हैं?
4. हिंदी और उर्दू में अंतर स्पष्ट करें।
5. हिंदी भाषा के विकास में अंग्रेजी के योगदान को कैसे समझते हैं?

इकाई - 7
हिन्दी भाषा पर विदेशी प्रभाव

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 प्रत्यय, उपसर्ग

7.4 हिन्दी में आगतविदेशी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन सम्बन्धी नियम

7.5 अरबी, फारसी ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी नियम

7.6 स्वर सम्बन्धी एवं व्यंजन सम्बन्धी ध्वनि परिवर्तन

7.7 सारांश

7.8 मुख्य शब्द

7.9 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

7.10 संदर्भ ग्रन्थ

7.11 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

हिन्दी भाषा पर विदेशी प्रभाव एक महत्वपूर्ण और दिलचस्प विषय है, जो भारतीय उपमहाद्वीप के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तनों को दर्शाता है। भारत का ऐतिहासिक संपर्क विभिन्न विदेशी संस्कृतियों और भाषाओं से रहा है, जो व्यापार, राजनीति, धार्मिक प्रचार, और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से हुआ। इस प्रभाव का सबसे बड़ा उदाहरण हिन्दी भाषा में विदेशी शब्दों का समावेश है।

हिन्दी भाषा में विदेशी शब्दों का प्रवेश मुख्यतः तीन प्रमुख भाषाओं–अरबी, फारसी और अंग्रेज़ी–से हुआ है, जिनका भारत के इतिहास में विभिन्न कालखंडों में प्रभाव

पड़ा। अरबी और फारसी शब्दों का प्रभाव मध्यकाल में मुस्लिम शासकों और व्यापारिक संबंधों के कारण बढ़ा, जबकि अंग्रेज़ी शब्दों का प्रभाव ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान हुआ।

इसके अलावा, भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य भाषाओं, जैसे तुर्की, पुर्तगाली और फ्रेंच, से भी कुछ शब्द हिन्दी में आए हैं। इन शब्दों का समावेश न केवल हिन्दी के शब्दकोश को समृद्ध करता है, बल्कि भाषा की संरचना, वाक्य रचनाविधान, और उच्चारण में भी बदलाव लाता है।

यह अध्ययन हमें यह समझने में मदद करता है कि कैसे बाहरी संस्कृतियों और भाषाओं का समावेश किसी भाषा के विकास और प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हिन्दी भाषा पर विदेशी प्रभावों के कारण ही आज यह भाषा इतनी समृद्ध और विविधतापूर्ण हो चुकी है।

इस प्रस्तावना में यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार हिन्दी पर विदेशी भाषाओं का प्रभाव पड़ा और यह प्रभाव न केवल शब्दों, बल्कि भाषा की ध्वनियों, उच्चारण और व्याकरण में भी देखा जाता है। आगे इस विषय पर विस्तृत अध्ययन और विश्लेषण किया जाएगा, जो हिन्दी में विदेशी शब्दों के समावेश और उनके ध्वन्यात्मक परिवर्तनों को समझने में मदद करेगा।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. हिन्दी भाषा पर विदेशी प्रभाव का अध्ययन और विश्लेषण कर सकेंगे।
2. भाषाई संरचना में बदलाव के ऐतिहासिक कारणों को समझ सकेंगे।
3. हिन्दी भाषा के विकास में विदेशी भाषाओं के योगदान को पहचान सकेंगे।
4. भाषाई विविधता और प्रभाव के आधार पर सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं का आकलन कर सकेंगे।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
6. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
7. आर्थिक स्थिरता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।

8. हिन्दी भाषा की आधुनिकता और प्रासंगिकता का आकलन कर सकेंगे।
9. भाषाई समायोजन की प्रक्रिया को व्यावहारिक रूप से लागू कर सकेंगे।

7.3 प्रत्यय और उपसर्ग

भाषा विकास और शब्द रचना की प्रक्रिया में प्रत्यय और उपसर्ग का विशेष महत्व है। ये दोनों शब्द निर्माण की बुनियादी इकाइयाँ हैं, जो शब्दों के अर्थ और उनके रूपों को बदलने में सहायता करती हैं। इस लेख में हम प्रत्यय और उपसर्गों के विभिन्न प्रकार, उनके अर्थ और उपयोग पर विस्तृत चर्चा करेंगे।

प्रत्यय की परिभाषा और प्रकार:-

प्रत्यय एक ऐसा शब्दांश या अक्षर समूह है, जो मूल शब्द के अंत में जुड़ता है और उसके अर्थ या व्याकरणिक स्वरूप को बदलता है। प्रत्यय मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं:

कृत प्रत्यय: यह वह प्रत्यय है जो धातु में जुड़कर नए शब्द का निर्माण करता है। उदाहरण के लिए, 'खेल' में 'क' प्रत्यय जोड़ने से 'खेलक' बनता है।

तद्धित प्रत्यय: यह प्रत्यय संज्ञा या विशेषण के अंत में जुड़ता है और उससे अन्य शब्द बनते हैं। जैसे, 'राम' से 'रामक'।

अन्य प्रमुख प्रत्यय:-

तव्य: जैसे 'खेल' से 'खेलने योग्य'।

इक: जैसे 'दूध' से 'दुग्धिक'।

ता: जैसे 'नया' से 'नवता'।

प्रत्यय के उदाहरण:-

प्रत्यय के माध्यम से शब्दों का व्याकरणिक रूप बदलता है और नए शब्दों का निर्माण होता है। जैसे:

आशा + **वान** = आशावान

विचार + **शील** = विचारशील

उपसर्ग की परिभाषा और प्रकार:-

उपसर्ग वे अक्षर समूह होते हैं, जो किसी मूल शब्द के पहले जुड़े जाते हैं और उसके अर्थ में बदलाव करते हैं। उपसर्गों के प्रयोग से शब्द के अर्थ में विस्तार या परिवर्तन होता है। संस्कृत, हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में कई प्रकार के उपसर्ग प्रचलित हैं।

उपसर्ग के प्रकार:-

संस्कृत उपसर्ग:-

प्र: जैसे 'गमन' से 'प्रगमन'।

अति: जैसे 'सुख' से 'अतिसुख'।

नि: जैसे 'श्रेणी' से 'निश्रेणी'।

हिंदी उपसर्ग:-

बिना: जैसे 'बिना' से 'बिनाजान'।

संग: जैसे 'संग' से 'संगचल'।

उपसर्ग के उदाहरण:-

अधि + **कार** = अधिकार

नि + **वृत्त** = निवृत्त

प्रत्यय और उपसर्ग का महत्व :-

भाषा में प्रत्यय और उपसर्ग का प्रयोग नए शब्दों के निर्माण में अत्यंत सहायक होता है। इसके माध्यम से शब्दों की संरचना में बदलाव आता है, जिससे भाषा अधिक समृद्ध और अभिव्यक्तिपूर्ण बनती है। प्रत्यय और उपसर्ग के सही उपयोग से न केवल शब्दावली का विस्तार होता है, बल्कि वाक्य में भावार्थ स्पष्ट करने में भी मदद मिलती है।

व्याकरणिक महत्व:-

प्रत्यय और उपसर्ग व्याकरण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये संज्ञा, विशेषण, क्रिया आदि के विभिन्न रूपों को बनाते हैं। उदाहरण के लिए, 'नृत्य' में 'क' प्रत्यय जोड़कर 'नर्तक' शब्द बनता है, जिससे व्यक्ति विशेष का बोध होता है। इसी प्रकार 'सु' उपसर्ग जोड़ने से 'सुख' से 'सुखमय' शब्द बनता है, जिससे सकारात्मक अर्थ निकलता है।

7.4 हिन्दी में आगतविदेशी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन सम्बन्धी नियम

हिंदी भाषा ने विभिन्न विदेशी भाषाओं से शब्द उधार लिए हैं, जैसे फ़ारसी, अरबी, तुर्की, अंग्रेज़ी आदि। इन शब्दों के आगमन के साथ, उनके उच्चारण में ध्वनि-परिवर्तन की प्रक्रियाएँ देखने को मिलती हैं। ये परिवर्तन आवश्यक होते हैं ताकि शब्द हिंदी भाषा की ध्वन्यात्मक संरचना के अनुरूप हो सकें।

ध्वनि-परिवर्तन के प्रमुख नियम:-

ध्वनि-लोप:-

कुछ विदेशी शब्दों में विशेष ध्वनियाँ हिंदी में नहीं पाई जातीं, इसलिए वे लुप्त हो जाती हैं। जैसे, 'अफसर' शब्द अरबी के 'उफसर' से लिया गया है।

स्वर परिवर्तन:-

विदेशी शब्दों में स्वर बदल जाते हैं ताकि वे हिंदी भाषियों के लिए उच्चारण में सरल हों। उदाहरण: 'कमांडर' अंग्रेज़ी से आया शब्द है, जिसमें 'अ' का उच्चारण हिंदी ध्वनियों के अनुरूप बदल जाता है।

अनुनासिक ध्वनि का समावेश:-

हिंदी में विदेशी शब्दों के उच्चारण को सरल बनाने के लिए अनुनासिक ध्वनि का प्रयोग होता है। जैसे, 'बैंक' अंग्रेज़ी से आया शब्द है, जिसमें हिंदी में 'ङ' का प्रयोग होता है।

संधि-परिवर्तन:-

कुछ शब्दों में ध्वनियों का मिलन होता है। उदाहरण के लिए, 'स्टेशन' शब्द का उच्चारण हिंदी में 'स्टे-शन' के रूप में होता है।

ध्वनि-समुच्चय का सरलीकरण:-

विदेशी शब्दों में जटिल ध्वनि-समुच्चयों को हिंदी में सरल बना दिया जाता है। जैसे, 'स्कूल' को 'इस्कूल' कहा जाता था।

अक्षर स्थानांतरण: -

कुछ विदेशी शब्दों में अक्षरों की स्थिति हिंदी उच्चारण के अनुसार बदल दी जाती है। जैसे, 'कॉलम' को हिंदी में 'कालम' के रूप में कहा जाता है।

संघात ध्वनियों का विभाजन:-

जटिल ध्वनियों को सरल करने के लिए उनके विभाजन का प्रयोग होता है, जैसे अंग्रेज़ी शब्द 'डॉक्टर' को हिंदी में 'डाक्टर' के रूप में।

विशेष ध्वनियों का लोप:-

अरबी और फारसी के 'ख़', 'ग़', 'ज़' जैसे ध्वनियों को हिंदी में सरल कर 'ख', 'ग', 'ज' के रूप में लिया जाता है। जैसे 'ज़िद' को 'जिद'।

उदाहरण:-

अंग्रेज़ी शब्द 'ट्रेन' हिंदी में 'ट्रेन' के रूप में अपनाया गया, लेकिन उच्चारण में ध्वनियों का सरलीकरण होता है।

फ़ारसी शब्द 'खुशबू' में 'खुश' और 'बू' का संयोजन हिंदी ध्वनियों के अनुकूल किया गया।

'स्टेशन' का हिंदी रूप 'स्टेशन' ही है, लेकिन उच्चारण में 'स्टे-शन' का रूप लिया गया।

अंग्रेज़ी 'स्कूल' का हिंदी में सरल उच्चारण 'इस्कूल' रहा है।

अरबी का 'क़लम' हिंदी में 'कलम' बन गया।

7.5 अरबी, फारसी ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी नियम

ध्वनि परिवर्तन भाषाई विकास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसके अंतर्गत किसी भाषा की ध्वनियाँ समय के साथ परिवर्तित होती हैं। अरबी और फारसी भाषाएँ, जिनकी उत्पत्ति सेमिटिक और इंडो-ईरानी भाषाओं में हुई है, ऐतिहासिक दृष्टि से एक-दूसरे से काफी प्रभावित रही हैं। ध्वनि परिवर्तन के नियम इन दोनों भाषाओं में विभिन्न भाषाई प्रक्रियाओं का प्रदर्शन करते हैं। इस आलेख में हम अरबी और फारसी ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी नियमों का विश्लेषण करेंगे और यह समझेंगे कि वे कैसे एक-दूसरे से भिन्न और समान हैं।

1. ध्वनि संरचना और उसकी विशेषताएँ :-

अरबी भाषा सेमिटिक भाषा परिवार से संबंधित है और इसमें ध्वनियों की एक जटिल प्रणाली है। इसमें स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ विभिन्न रूपों में दिखाई देती हैं, जैसे कि गले के, दंत्य, उच्चारण वाले, और गहरी ध्वनियाँ। फारसी भाषा इंडो-ईरानी भाषा परिवार का हिस्सा है, और यह अधिकतर ध्वनियों में सरल है। इसमें अरबी की तुलना में स्वर ध्वनियाँ अधिक प्रमुख हैं।

2. स्वर परिवर्तन के नियम :-

अरबी और फारसी दोनों भाषाओं में स्वर ध्वनियों में परिवर्तन का महत्व है।

अरबी में स्वर परिवर्तन:-

अरबी में स्वर ध्वनियों का उच्चारण स्थान परिवर्तन से बदलता है। इसमें तीन मूल स्वर ध्वनियाँ हैं: /a/, /i/, /u/। इन स्वरों का विस्तार विभिन्न रूपों में होता है और उच्चारण में बदलाव के साथ यह परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए, /a/ ध्वनि के उच्चारण में कभी-कभी /ā/ की लंबाई जुड़ जाती है।

फारसी में स्वर परिवर्तन:-

फारसी में लंबी और छोटी स्वर ध्वनियाँ मौजूद हैं। यह ध्वनियाँ अक्सर अरबी से अलग होती हैं। फारसी में स्वरों की ध्वनि संरचना सरल होती है और इसमें

उच्चारण के अनुसार परिवर्तन देखा जा सकता है, जैसे कि /e/ का /i/ में और /o/ का /u/ में बदलना।

3. व्यंजन परिवर्तन के नियम:-

व्यंजन ध्वनियों में भी अरबी और फारसी के बीच अंतर और समानता देखी जा सकती है।

अरबी में व्यंजन परिवर्तन:-

अरबी भाषा में उच्चारण के लिए गले और जीभ का प्रमुख योगदान होता है। उदाहरण के लिए, अरबी में मौजूद विशेष गले की ध्वनियाँ जैसे /ḥ/ और /ʿ/ फारसी में अनुपस्थित हैं।

फारसी में व्यंजन परिवर्तन:-

फारसी ने अरबी से कई शब्दों को अपनाया है, परंतु इनमें ध्वनि परिवर्तन हुआ है। जैसे, अरबी का शब्द /q/ फारसी में अक्सर /g/ के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार, अरबी के कठोर उच्चारण वाले ध्वनियों जैसे /θ/ और /ð/ को फारसी में क्रमशः /s/ और /z/ में परिवर्तित किया जाता है।

4. अरबी से फारसी में ध्वनि रूपांतरण:-

अरबी और फारसी के बीच ध्वनि परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि जब अरबी के शब्द फारसी में शामिल होते हैं, तो उन्हें फारसी ध्वनि संरचना के अनुसार बदला जाता है। उदाहरण के लिए:

अरबी का "ثقافة" (thaqāfa) फारसी में "فرهنگ" (farhang) के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसमें /θ/ ध्वनि /f/ में बदल जाती है।

अरबी शब्द "عظيم" (/ʿaẓīm/) फारसी में "عظیم" (/azim/) के रूप में उपयोग होता है, जिसमें उच्चारण की गहराई कम हो जाती है।

5. अनुकूलन और सरलता :-

ध्वनि परिवर्तन का एक प्रमुख नियम यह भी है कि किसी भाषा में आयातित शब्द को उस भाषा के मौलिक उच्चारण नियमों के अनुसार सरल किया जाता है। फारसी

में अरबी के कठिन ध्वनियों को बदलने की प्रवृत्ति होती है जिससे शब्द सरलता से उच्चरित हो सकें।

6. संधि और समास :-

अरबी और फारसी में संधि नियम ध्वनि परिवर्तन को प्रभावित करते हैं।

अरबी संधि: अरबी में संधियों में स्वर और व्यंजन एकसाथ आकर नई ध्वनि उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिए, "كتاب الله" (kitāb Allāh) में /b/ और /ʔ/ का मिलकर प्रभाव उत्पन्न होता है।

फारसी संधि: फारसी संधि में अरबी से सरल व्यंजन और स्वर ध्वनियाँ अपनाई जाती हैं। जैसे, "کتابخانه" (kitābkhāne) शब्द में उच्चारण आसानी से किया जा सके, इसके लिए ध्वनियों का सरलीकरण होता है।

7. ध्वन्यात्मक स्थानांतरण :-

ध्वन्यात्मक स्थानांतरण की प्रक्रिया में अरबी से फारसी में कई ध्वनि परिवर्तन के नियम शामिल हैं। जैसे:

/ħ/ और /ʕ/ जैसे गले के व्यंजनों का हट जाना या सरलीकरण होना।

अरबी के स्वर समूहों का फारसी में समायोजन। जैसे, अरबी में /a/ और /i/ का मिश्रण, फारसी में लंबी स्वरों /ā/ और /ī/ में बदल जाता है।

7.6 स्वर सम्बन्धी एवं व्यंजन सम्बन्धी ध्वनि परिवर्तन

ध्वनि परिवर्तन भाषा विज्ञान का एक प्रमुख अध्ययन क्षेत्र है जिसमें यह समझने का प्रयास किया जाता है कि कैसे भाषा के स्वर (वोकल्स) और व्यंजन (कांन्सोनेंट्स) समय के साथ परिवर्तित होते हैं। इन परिवर्तनों का अध्ययन भाषाशास्त्रियों को भाषा के विकास, उत्पत्ति और उसके ऐतिहासिक विकास को समझने में सहायता करता है। ध्वनि परिवर्तन की प्रक्रिया स्वभावतः बहुत ही जटिल होती है और इसके कई प्रकार होते हैं। इस आलेख में, हम स्वर और व्यंजन संबंधी ध्वनि परिवर्तन के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करेंगे।

स्वर संबंधी ध्वनि परिवर्तन :-

स्वर ध्वनियाँ भाषा की नींव होती हैं, और उनके परिवर्तनों का भाषा के उच्चारण, लय और संगीतिकता पर गहरा प्रभाव होता है। स्वर संबंधी ध्वनि परिवर्तन के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं:

1. **स्वरागम (Vowel Addition) :-**

स्वरागम का तात्पर्य उन परिवर्तनों से है जिनमें स्वर किसी शब्द में जोड़े जाते हैं। इसे अंग्रेज़ी में एपेन्थेसिस (Epenthesis) कहा जाता है। उदाहरण के लिए, संस्कृत के 'गुप्त' शब्द का आधुनिक हिंदी में 'गुप्ता' हो जाना स्वरागम का एक उदाहरण है।

2. **स्वर लोप (Vowel Deletion):-**

स्वर लोप एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें किसी शब्द के एक या एक से अधिक स्वरों का उच्चारण के दौरान लोप हो जाता है। यह परिवर्तन अक्सर संक्षिप्त उच्चारण और सुविधा के लिए होता है। उदाहरण के लिए, हिंदी के 'सरस्वती' शब्द का बोली-भाषा में 'सर्सती' हो जाना।

3. **स्वर परिवर्तन (Vowel Shift) :-**

स्वर परिवर्तन के अंतर्गत स्वरों के गुण (quality) या मात्रा (quantity) में परिवर्तन आता है। अंग्रेजी में 'ग्रेट वॉवेल शिफ्ट' (Great Vowel Shift) इस प्रकार के परिवर्तन का एक उल्लेखनीय उदाहरण है। यह परिवर्तन 15वीं से 18वीं शताब्दी के बीच हुआ और इसके कारण कई अंग्रेजी शब्दों के उच्चारण में बड़ा बदलाव आया।

4. **स्वर सम्मिश्रण (Vowel Merger):-**

स्वर सम्मिश्रण वह प्रक्रिया है जिसमें दो भिन्न स्वरों का उच्चारण एक जैसा हो जाता है। यह परिवर्तन आमतौर पर भाषाई सरलता के कारण होता है। उदाहरणस्वरूप, 'बेरी' और 'बेरी' (berry और bury) जैसे शब्दों का उच्चारण कुछ अंग्रेज़ी बोलियों में समान हो जाता है।

व्यंजन संबंधी ध्वनि परिवर्तन :-

व्यंजन ध्वनि परिवर्तन भाषाओं के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये परिवर्तन उच्चारण की सरलता और भाषा के प्रवाह को बनाए रखने में सहायक होते हैं। व्यंजन संबंधी परिवर्तन के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं:

1. **व्यंजन लोप (Consonant Deletion) :-**

यह एक सामान्य ध्वनि परिवर्तन है जिसमें किसी शब्द के एक या अधिक व्यंजनों का लोप हो जाता है। उदाहरण के लिए, संस्कृत के 'सप्तमी' शब्द का हिंदी में 'सतमी' में बदलना।

2. **व्यंजन परिवर्तन (Consonant Shift):-**

यह वह प्रक्रिया है जिसमें व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण स्थान, पद्धति या गतिकी बदलती है। इसका प्रभाव पूरे शब्द पर पड़ता है। जर्मनिक भाषाओं में होने वाला 'जर्मनिक ध्वनि परिवर्तन' (Grimm's Law) इसका एक प्रमुख उदाहरण है, जिसमें व्यंजन ध्वनियों का स्थानांतरण हुआ।

3. **व्यंजन के स्थानांतरण (Consonant Cluster Reduction):-**

कभी-कभी शब्दों में एक साथ आने वाले व्यंजनों का समूह या क्लस्टर उच्चारण के दौरान सरल हो जाता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी शब्द 'knight' में प्रारंभिक 'k' का लोप हो गया और अब इसे 'नाइट' उच्चारित किया जाता है।

4. **व्यंजन समन्वय (Assimilation):-**

व्यंजन समन्वय एक प्रकार का ध्वनि परिवर्तन है जिसमें एक ध्वनि अपने निकटवर्ती ध्वनि के साथ समान या मिलती-जुलती हो जाती है। यह प्रक्रिया उच्चारण को आसान बनाने के लिए होती है। उदाहरण के लिए, संस्कृत में 'संज्ञा' शब्द में 'ज्ञ' ध्वनि की समन्वय प्रक्रिया होती है।

5. **व्यंजन ध्वनि संधि (Consonant Mutation):-**

व्यंजन ध्वनि संधि में एक व्यंजन की ध्वनि दूसरे के संपर्क में आने पर बदल जाती है। उदाहरण के लिए, प्राचीन हिंदी में 'द्रव्य' शब्द का आधुनिक रूप 'दब्बा' बन गया।

ध्वनि परिवर्तन के कारण :-

ध्वनि परिवर्तन के कई कारण होते हैं जिनमें उच्चारण की सुविधा, क्षेत्रीय प्रभाव, भाषाई संपर्क और ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन शामिल हैं।

उच्चारण की सरलता (Ease of Articulation):-

ध्वनि परिवर्तन का एक प्रमुख कारण यह है कि वक्ता अपनी भाषा को अधिक सरलता से बोल सकें। इस प्रक्रिया में कठिन ध्वनियों को सरल बनाना या लोप करना शामिल होता है।

भाषाई संपर्क (Language Contact):-

जब दो भाषाएँ आपस में संपर्क में आती हैं, तो वे एक-दूसरे से ध्वनियों को उधार ले सकती हैं। इससे दोनों भाषाओं में ध्वनि परिवर्तन हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के कई शब्द हिंदी में अपनाए गए हैं और उन्होंने व्यंजनों और स्वरों पर प्रभाव डाला है।

क्षेत्रीय भिन्नताएँ (Regional Variations): -

अलग-अलग क्षेत्रों में बोली जाने वाली एक ही भाषा के उच्चारण में अंतर पाया जाता है। ये क्षेत्रीय भिन्नताएँ समय के साथ ध्वनि परिवर्तन का कारण बन सकती हैं।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव (Social and Cultural Influence):-

सामाजिक परंपराओं, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और स्थानीय बोलियों के चलते भी ध्वनि परिवर्तन होते हैं।

विदेशी भाषाओं के ..... उपसर्गों का हिन्दी में प्रयोग होता है ।

स्वनिम का तात्पर्य..... से है ।

7.7 सारांश

इस पाठ में हमने हिन्दी भाषा पर अरबी, फारसी, अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं के प्रभाव का अध्ययन किया। प्रत्यय, उपसर्गों से लेकर ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी नियमों को समझा। हिन्दी की ध्वनि संरचना में विदेशी शब्दों के समावेश ने भाषा को समृद्ध और बहुआयामी बनाया है।

7.8 मुख्य शब्द

- **प्रत्यय**:-

प्रत्यय वह ध्वन्यात्मक तत्व होता है जो किसी शब्द के अंत में जुड़कर उसका रूप और अर्थ बदलता है। उदाहरण के रूप में, "-ता", "-पन", "-त्व" आदि प्रत्यय हैं, जो किसी शब्द के अर्थ को विस्तार या विशेषता प्रदान करते हैं, जैसे "न्यायकर्ता", "शिक्षक", "मानवता" आदि।

- **उपसर्ग**:-

उपसर्ग वह ध्वनि या वर्ण है जो किसी शब्द के प्रारंभ में जुड़कर उसका अर्थ बदलता है। जैसे "अ- (अधिकार)", "वि- (विपरीत)", "अधि- (अधिकार)" आदि। उपसर्ग शब्द के अर्थ में विशेष परिवर्तन करते हैं।

- **ध्वनि परिवर्तन**:-

जब एक शब्द दूसरी भाषा से आयात किया जाता है, तो उसमें ध्वनिगत परिवर्तन होते हैं। यह परिवर्तन शब्द की ध्वनियों के सामंजस्य के कारण होते हैं। जैसे अरबी या फारसी शब्दों में आए परिवर्तन, जैसे "ख" को "क" या "ग" में बदलना।

- **अनुनासिकरण**:-

जब किसी शब्द में "ं" (चिह्न) का प्रयोग किया जाता है, तो उसे अनुनासिक कहा जाता है। यह ध्वनि परिवर्तन है, जिसमें शब्द के स्वर में नासिकता का प्रभाव होता है, जैसे "हंसी", "कंठ" आदि।

- **स्वर परिवर्तन**: -

स्वर परिवर्तन तब होता है जब किसी शब्द में स्वर की ध्वनि बदल जाती है, जैसे संस्कृत में "उ" का "ओ" में परिवर्तित होना, या किसी अन्य भाषाई कारणों से स्वर का रूप बदलना।

- **व्यंजन लोप**: -

व्यंजन लोप वह प्रक्रिया है जिसमें किसी शब्द से व्यंजन (क, ख, ग, आदि) की ध्वनि समाप्त हो जाती है। उदाहरण के तौर पर, संस्कृत शब्द "कृष्ण" में व्यंजन "क" का लोप होकर "श्री कृष्ण" में बदलना।

7.9 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

विदेशी भाषाओं के **प्रत्ययों** और **उपसर्गों** का हिन्दी में प्रयोग होता है।
स्वनिम का तात्पर्य **स्वयं उत्पन्न होने वाली ध्वनि** से है।

7.10 संदर्भ ग्रन्थ

- मिश्र, र. (2018). *हिन्दी भाषा और उसका वैश्विक परिप्रेक्ष्य*. नई दिल्ली: पुस्तक भवन।
- शर्मा, पी. (2019). *विदेशी प्रभाव और हिन्दी भाषा का विकास*. जयपुर: साहित्य अकादमी।
- वर्मा, ए. (2020). *हिन्दी की भाषा संरचना और उसका ऐतिहासिक दृष्टिकोण*. वाराणसी: काशी विद्यापीठ।
- गुप्ता, एस. (2021). *हिन्दी पर विदेशी भाषाओं का प्रभाव: औपनिवेशिक युग से आधुनिक युग तक*. मुंबई: लोकभारती प्रकाशन।
- पांडे, आर. (2023). *सांस्कृतिक विविधता और भाषाई समन्वय: हिन्दी का संदर्भ*. लखनऊ: राष्ट्रीय भाषा संस्थान।

7.11 अभ्यास प्रश्न

1. हिन्दी भाषा पर फारसी और अरबी प्रभाव के दो उदाहरण दीजिए।
2. प्रत्यय और उपसर्ग में क्या अंतर है? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
3. हिन्दी में स्वर परिवर्तन के एक नियम को समझाइए।
4. ध्वनि परिवर्तन का अर्थ क्या है, और यह क्यों आवश्यक है?

इकाई - 8

आदिकाल की पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियां

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 आदिकाल की विभिन्न परिस्थितियों का परिचय

8.4 आदिकाल के विभिन्न नाम

8.5 सारांश

8.6 मुख्य शब्द

8.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

8.8 संदर्भ ग्रन्थ

8.9 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

आदिकाल भारतीय साहित्य और संस्कृति का प्रारंभिक काल है, जिसे 'प्राचीन काल' या 'संस्कृत काल' के रूप में भी जाना जाता है। यह काल भारतीय इतिहास में अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसी अवधि में भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म और साहित्य की नींव रखी गई। आदिकाल की समयसीमा को लेकर विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हो सकते हैं, लेकिन इसे लगभग वेदों के रचनाकाल से लेकर 12वीं शदी तक माना जाता है।

आदिकाल का साहित्य मुख्य रूप से संस्कृत में रचित था, और यह धार्मिक, सांस्कृतिक तथा दार्शनिक दृष्टिकोण से अत्यधिक समृद्ध था। वेद, उपनिषद, पुराण, महाभारत, रामायण, और अन्य धार्मिक ग्रंथ इसी काल में रचे गए थे,

जिनका भारतीय जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस काल में भारतीय समाज की संरचना, धार्मिक आस्थाएँ, और सांस्कृतिक विविधताएँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं।

आदिकाल में राजनीति भी बहुत महत्वपूर्ण थी, क्योंकि इस दौरान विभिन्न राजवंशों की स्थापना हुई और उनके द्वारा स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था और सैन्य व्यवस्था का भारतीय समाज पर प्रभाव पड़ा। साथ ही, इस समय में भारत में व्यापारी, वैज्ञानिक और शिल्पकला के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई थी।

इस काल की विशेषता यह भी है कि इसके दौरान साहित्यिक रचनाओं में मानवता, आस्थाएँ, भक्ति, नीति और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को अत्यंत सुंदरता से व्यक्त किया गया। आदिकाल के साहित्य में धर्म, युद्ध, प्रेम, और जीवन के उद्देश्य पर आधारित गहन विचार प्रस्तुत किए गए, जो आज भी भारतीय समाज के सांस्कृतिक और धार्मिक धरोहर के रूप में महत्वपूर्ण हैं।

इस प्रकार, आदिकाल भारतीय सभ्यता का आधारस्तंभ था, जिसने भविष्य में आने वाले साहित्य, कला, और संस्कृति को आकार दिया।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
3. सामाजिक और आर्थिक समानता की स्थापना के उपायों को समझ सकेंगे।
4. रोजगार सृजन और आर्थिक स्थिरता को बढ़ाने के प्रयासों का विश्लेषण कर सकेंगे।
5. वैश्विक प्रतिस्पर्धा में भारतीय अर्थव्यवस्था की भूमिका का आकलन कर सकेंगे।

8.3 आदिकाल की विभिन्न परिस्थितियों का परिचय

आदिकाल भारतीय साहित्य के महत्वपूर्ण और प्रारंभिक कालों में से एक माना जाता है। यह काल प्राचीन भारतीय सभ्यता, संस्कृति, समाज और धर्म के विकास में एक अहम भूमिका निभाता है। आदिकाल की विभिन्न परिस्थितियाँ, जैसे कि सामाजिक, धार्मिक, और राजनीतिक परिस्थितियाँ, इस काल की विशिष्टता को समझने में मदद करती हैं। इस काल में भारतीय समाज में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए थे, जिन्होंने साहित्य और कला के विकास को प्रभावित किया।

आदिकाल की परिस्थितियाँ अनेक दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इस समय भारतीय संस्कृति, साहित्य और धर्म की नींव पड़ी थी। आदिकाल को हम वैदिक काल, महाकाव्यकाल, शास्त्रकाल और भक्ति काल के रूप में विभाजित कर सकते हैं, और प्रत्येक काल की अपनी विशेष परिस्थितियाँ और विशेषताएँ थीं।

1. **सामाजिक परिस्थितियाँ:-**

आदिकाल की सामाजिक स्थिति बहुत ही विविधतापूर्ण थी। भारतीय समाज इस समय कठोर वर्ण व्यवस्था से बंधा हुआ था, जिसके अनुसार समाज को चार वर्गों में विभाजित किया गया था: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। प्रत्येक वर्ग का अपना कार्य, अधिकार और कर्तव्य निर्धारित था। इस व्यवस्था का उद्देश्य समाज में अनुशासन बनाए रखना था, लेकिन इसके चलते शूद्रों और स्त्रियों को अधिकांश अधिकारों से वंचित रखा गया था।

स्त्रियों की स्थिति: -

आदिकाल में भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति न तो पूरी तरह से स्वतंत्र थी और न ही पूरी तरह से वंचित। वे घर के कार्यों में संलग्न रहती थीं, लेकिन कुछ स्थानों पर उन्हें उच्च शिक्षा और सम्मान भी प्राप्त था। आदिकाव्य में उल्लेखित कई महिला पात्रों जैसे कि सीता, दमयन्ती और श्रुतकीर्ति को आदर्श माना जाता था। हालांकि, स्त्रियों को समाज के सार्वजनिक जीवन में भागीदारी की सीमाएँ थीं।

जातिवाद और सामाजिक असमानताएँ: -

वर्ण व्यवस्था ने भारतीय समाज में सामाजिक असमानताएँ पैदा की थीं। ब्राह्मणों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था, जबकि शूद्रों और अति निर्धन लोगों को निम्न स्थिति में रखा गया था। इससे समाज में भेदभाव बढ़ा, और कई सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हुईं। इसी दौरान कुछ सामाजिक सुधारकों ने जातिवाद के खिलाफ आवाज उठाई, जैसे कि बुद्ध और महावीर ने अपने उपदेशों में जातिवाद की कड़ी आलोचना की थी।

2. **धार्मिक परिस्थितियाँ :-**

आदिकाल में भारतीय समाज में धार्मिक दृष्टिकोण से कई महत्वपूर्ण बदलाव हुए थे। यह काल वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म और हिंदू धर्म के उत्थान और विकास का समय था।

वैदिक धर्म:-

आदिकाल का आरंभ वैदिक काल से हुआ था, जो भारतीय धर्म और संस्कृति की नींव था। वेदों की रचना इस समय के दौरान हुई थी, जिनमें धार्मिक कर्मकांड, यज्ञ, मंत्र, और प्राचीन देवताओं की पूजा का वर्णन था। वैदिक धर्म में मुख्य रूप से इन्द्र, अग्नि, वरुण, सूर्य आदि देवताओं की पूजा की जाती थी। धर्म का पालन करने के लिए यज्ञों और बलि अनुष्ठानों का आयोजन किया जाता था।

बौद्ध धर्म और जैन धर्म का उदय:-

आदिकाल में बौद्ध और जैन धर्मों का उदय हुआ, जो वैदिक धर्म के विपरीत विचारों का समर्थन करते थे। बौद्ध धर्म की स्थापना गौतम बुद्ध ने की, जिन्होंने संसार के दुखों से मुक्ति के लिए 'चार आर्य सत्य' और 'आठfold मार्ग' का सिद्धांत प्रस्तुत किया। जैन धर्म की स्थापना महावीर ने की, जो अहिंसा, अपरिग्रह और सत्य के सिद्धांतों पर जोर देते थे। इन दोनों धर्मों ने भारतीय समाज में धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा दिया और लोगों को अधिक नैतिक और धर्मपरायण जीवन जीने के लिए प्रेरित किया।

भक्ति आंदोलन:-

आदिकाल के अंत में भारत में भक्ति आंदोलन का आरंभ हुआ, जो विशेष रूप से दक्षिण भारत में प्रारंभ हुआ था। यह आंदोलन भगवान के प्रति व्यक्तिगत भक्ति और सच्चे आस्थावान जीवन जीने का आह्वान करता था। भक्त कवियों ने जातिवाद और ऊंच-नीच की परवाह किए बिना हर व्यक्ति को भगवान की भक्ति करने के लिए प्रेरित किया। रामानुज, कबीर, गुरु नानक, और मीरा बाई जैसे संतों ने भक्ति साहित्य का सृजन किया।

3. **राजनीतिक परिस्थितियाँ :-**

आदिकाल में भारतीय राजनीति में कई बड़े साम्राज्यों का उत्थान और पतन हुआ। इस समय में भारत में शासकों और उनके साम्राज्यों का प्रभाव था, जो भारतीय संस्कृति और साहित्य के विकास में सहायक रहे।

मौर्य साम्राज्य:-

मौर्य साम्राज्य (321 ई. पू. - 185 ई. पू.) आदिकाल के एक महत्वपूर्ण राजनीतिक बदलाव का समय था। चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित यह साम्राज्य भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकांश हिस्से में फैला हुआ था। मौर्य साम्राज्य के शासक अशोक ने बौद्ध धर्म को अपनाया और पूरे साम्राज्य में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयास किए। अशोक की दया, सहिष्णुता, और नैतिक शासन की नीतियों ने भारतीय राजनीति और समाज पर दीर्घकालिक प्रभाव डाला।

गुप्त साम्राज्य:-

गुप्त साम्राज्य (320 ई. - 550 ई.) आदिकाल के अंतिम भाग में हुआ था और इसे भारतीय इतिहास का "स्वर्णिम काल" भी कहा जाता है। चंद्रगुप्त गुप्त और सम्राट विक्रमादित्य के नेतृत्व में गुप्त साम्राज्य ने कला, साहित्य, विज्ञान और गणित में महत्वपूर्ण योगदान दिया। गुप्त काल में संस्कृत साहित्य और महाकाव्य जैसे रामायण और महाभारत का पुनर्लेखन हुआ और भारतीय साहित्य के एक नए आयाम की शुरुआत हुई।

राजवंशों का उत्थान और पतन: आदिकाल में कई छोटे-छोटे राज्य और राजवंश अस्तित्व में थे, जिनमें हर्यक वंश, शुंग वंश, काण्व वंश, चोल वंश, पलव वंश, और दिल्ली सल्तनत प्रमुख थे। इन राजवंशों का उत्थान और पतन भारतीय राजनीति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था।

4. साहित्यिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ :-

आदिकाल में भारतीय साहित्य का विकास संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और क्षेत्रीय भाषाओं में हुआ। संस्कृत साहित्य का प्राचीनतम रूप वेदों और उपनिषदों में था। महाकाव्य जैसे रामायण, महाभारत, और पुराणों ने भारतीय साहित्य को एक नई दिशा दी। महाकाव्य और पुराणों में धर्म, नीति, और समाज के आदर्शों का वर्णन किया गया, जिनसे भारतीय समाज को जीवन के विभिन्न पहलुओं के बारे में शिक्षा प्राप्त हुई।

काव्यशास्त्र:-

काव्यशास्त्र का विकास आदिकाल में हुआ, जिसमें काव्य रचनाओं के विभिन्न अंगों, उनके उद्देश्य और उनकी विशेषताओं का वर्णन किया गया। कालिदास के अभिज्ञानशाकुंतलम और भास के नाटकों ने काव्यशास्त्र के सिद्धांतों को स्थापित किया।

नाटक और संगीत:-

आदिकाल में नाटक और संगीत का भी विशेष महत्व था। भारतीय नाटकों में धार्मिक, नैतिक और सामाजिक विषयों को उजागर किया जाता था। भास, कालिदास, शूद्रक और बाणभट्ट जैसे महान नाटककारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज और धर्म की गहरी छायाएँ प्रस्तुत की।

भक्ति काव्य:-

भक्ति काव्य का प्रमुख उद्देश्य भगवान के प्रति समर्पण और प्रेम को व्यक्त करना था। इस समय के काव्य में संतों और भक्तों द्वारा रचित गीत, भजन, और कीर्तन बहुत महत्वपूर्ण थे।

संस्कृति का विकास:-

आदिकाल में भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का समृद्धि के साथ विकास हुआ। कला, साहित्य, संगीत और नृत्य के साथ-साथ वास्तुकला और चित्रकला ने भी भारतीय संस्कृति को नया रूप दिया।

8.4 आदिकाल के विभिन्न नाम

आदिकाल भारतीय साहित्य के आरंभिक कालों में से एक है और इसे भारतीय सांस्कृतिक, धार्मिक और साहित्यिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस काल को विभिन्न नामों से जाना जाता है, जो इस समय की विशेषताओं और घटनाओं को व्यक्त करते हैं। आदिकाल के विभिन्न नाम इस काल के विविध पहलुओं को दर्शाते हैं, जैसे कि धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, और राजनीतिक स्थितियाँ। इन नामों को समझना आदिकाल के समग्र परिप्रेक्ष्य को जानने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

1. **वैदिक काल :-**

वैदिक काल आदिकाल का पहला और सबसे महत्वपूर्ण भाग था। इस समय में वेदों की रचना हुई, जो भारतीय धर्म, संस्कृति और साहित्य का मूलाधार बने। इसे "वैदिक काल" कहा जाता है क्योंकि इस समय के दौरान वेदों का निर्माण और उनके अध्ययन की परंपरा विकसित हुई। वैदिक साहित्य में चार प्रमुख वेद–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद–समाविष्ट हैं।

वैदिक काल की विशेषताएँ:-

इस समय भारतीय समाज का आधार वेदों और उनके उपदेशों पर था।

वेदों में पूजा, यज्ञ, कर्मकांड, धर्म, और संसार के उत्पत्ति के बारे में विचार किया गया।

संस्कृत भाषा में वेदों का रचनात्मक कार्य हुआ था, जिसने भारतीय साहित्य की नींव रखी।

वैदिक काल के दौरान भारतीय समाज में अनेक धार्मिक और सामाजिक विधियाँ और परंपराएँ विकसित हुईं, जो भारतीय जीवन के प्रत्येक पहलू पर प्रभाव डालने वाली थीं।

2. **महाकाव्यकाल:-**

आदिकाल का एक अन्य नाम महाकाव्यकाल भी है, क्योंकि इस काल के दौरान भारतीय साहित्य में दो महान महाकाव्यों–**रामायण** और **महाभारत**–की रचना हुई। ये महाकाव्य न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि इनका सामाजिक और धार्मिक प्रभाव भी अत्यधिक था।

महाकाव्यकाल की विशेषताएँ:-

रामायण, जो वाल्मीकि द्वारा रचित है, और **महाभारत**, जो व्यास द्वारा रचित है, भारतीय साहित्य के सबसे बड़े महाकाव्य हैं।

महाकाव्य साहित्य में आदर्शों, नीति, धर्म, राजनीति, और युद्ध के बारे में गहन विचार प्रस्तुत किए गए हैं।

इन काव्यों ने भारतीय समाज में नैतिक शिक्षा और जीवन के मूल्यों को प्रतिष्ठित किया।

महाकाव्यकाल भारतीय संस्कृति और धर्म का आदर्श रूप प्रस्तुत करता है, और इन महाकाव्यों के पात्रों और घटनाओं का भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। राम और कृष्ण जैसे पात्र भारतीय संस्कृति के प्रतीक बन गए, और उनके आदर्शों को समाज में व्यापक रूप से स्वीकार किया गया।

3. **शास्त्रकाल :-**

आदिकाल का एक अन्य नाम शास्त्रकाल है, जिसमें भारतीय शास्त्रों की रचना और अध्ययन की प्रक्रिया विकसित हुई। शास्त्र, जो धर्म, न्याय, राजनीति, और काव्यशास्त्र के बारे में होते थे, इस समय के दौरान विशेष रूप से महत्वपूर्ण थे।

शास्त्रकाल की विशेषताएँ:-

इस काल में धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, और काव्यशास्त्र के अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना हुई, जैसे कि **मनुस्मृति**, **याज्ञवल्क्य स्मृति**, **काव्यप्रकाश** और **नाट्यशास्त्र**।

शास्त्रों का उद्देश्य समाज में नियम और विधियों का पालन करना था, जिससे जीवन की नैतिकता और शांति सुनिश्चित की जा सके।

शास्त्रकाल में विभिन्न प्रकार के शास्त्रों–धर्मशास्त्र, काव्यशास्त्र, राजनीति शास्त्र आदि–की रचना की गई, जो भारतीय समाज और संस्कृति के विकास में सहायक सिद्ध हुईं।

शास्त्रकाल के दौरान भारतीय समाज में धर्म और नीति के विषय में गहन विचार किया गया और शास्त्रों को एक आधारभूत ढाँचा माना गया, जिस पर भारतीय समाज के सदस्यों को अपने जीवन का संचालन करना था।

4. **भक्ति काल :-**

आदिकाल के अंतर्गत भक्ति काल का भी महत्वपूर्ण स्थान है। भक्ति काल विशेष रूप से भारत में भक्ति आंदोलन के उदय का काल था, जिसमें संतों और भक्त कवियों ने भगवान के प्रति व्यक्तिगत भक्ति और प्रेम की आवश्यकता पर बल दिया। भक्ति काल का एक अन्य नाम "भक्ति आंदोलन" भी है, क्योंकि इस समय धार्मिक उथल-पुथल और सामाजिक बदलाव का प्रमुख कारण भक्ति आंदोलन ही था।

भक्ति काल की विशेषताएँ:-

भक्ति आंदोलन ने भारतीय समाज में जातिवाद, मंदिरों की पूजा पद्धतियों और सामाजिक भेदभाव को चुनौती दी।

संतों और कवियों ने भक्ति साहित्य की रचना की, जो व्यापक रूप से लोकप्रिय हुआ। इनमें संत कबीर, गुरु नानक, रामानुजाचार्य, मीरा बाई, सूरदास, और तुलसीदास जैसे प्रमुख संत शामिल थे।

भक्ति काल में कवियों ने भगवान के प्रति प्रेम और समर्पण की भावना को व्यक्त किया, और उनका काव्य धार्मिक और सामाजिक असमानताओं को चुनौती देने वाला था।

भक्ति साहित्य में भगवान के प्रति व्यक्ति की आत्मीयता और प्रेम को महत्व दिया गया और जातिवाद, ऊँच-नीच जैसी परंपराओं की आलोचना की गई।

भक्ति काल ने भारतीय समाज में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, जहाँ भक्ति और प्रेम को सर्वोपरि माना गया। यह काल भारतीय धर्म, संस्कृति और साहित्य में एक परिवर्तनकारी दौर था।

5. **दर्शनकाल :-**

आदिकाल का एक और नाम दर्शनकाल भी है, जो इस काल में भारतीय दर्शन के विभिन्न Schools (दर्शन प्रणालियाँ) के विकास को व्यक्त करता है। इस काल के दौरान भारतीय दर्शन में मुख्य रूप से **वैदिक दर्शन**, **उपनिषदिक दर्शन**, और **बौद्ध व जैन दर्शन** का अध्ययन और विकास हुआ।

दर्शनकाल की विशेषताएँ:-

इस काल में **आदिशंकराचार्य**, **भगवद गीता**, और **योगसूत्र** जैसे ग्रंथों की रचना हुई, जो भारतीय दर्शन की गहरी समझ को प्रस्तुत करते थे।

उपनिषदों में आत्मा, ब्रह्म, और मोक्ष की अवधारणाओं को प्रस्तुत किया गया, जिसने भारतीय धार्मिक और दार्शनिक सोच को एक नई दिशा दी।

बौद्ध और जैन दर्शन ने जीवन के दुखों और संसार से मुक्ति पाने के तरीकों को बताया और भारतीय दर्शन की गहरी जड़ों को सशक्त किया।

दर्शनकाल ने भारतीय समाज को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया, जो आत्मज्ञान, ब्रह्म के साथ संबंध, और जीवन के असल उद्देश्य को समझने पर आधारित था।

1. आदिकाल के लौकिक साहित्य में ..... भाषा का प्रयोग किया गया है ।

2. 'वीर रस' का स्थायी भाव ..... है ।

8.5 सारांश

आदिकाल भारतीय साहित्य का अत्यंत महत्वपूर्ण काल था, जो सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण था। इस समय ने भारतीय सभ्यता, संस्कृति और साहित्य के विकास में एक मजबूत नींव रखी। आदिकाल के विभिन्न नाम, जैसे वैदिक काल, महाकाव्यकाल और शास्त्रकाल, इस काल के विभिन्न पहलुओं को उजागर करते हैं। इसके साथ ही आदिकाल में भारतीय समाज के भीतर जातिवाद, धार्मिक परिवर्तन और सामाजिक जागरूकता के तत्व प्रमुख थे।

8.6 मुख्य शब्द

- **वैदिक काल**:-

यह भारतीय साहित्य का सबसे प्राचीन काल है, जिसमें वेदों की रचनाएँ हुईं। इसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद शामिल हैं। यह काल लगभग 1500 ईसा पूर्व से 500 ईसा पूर्व तक माना जाता है। वेदों में धर्म, समाज, और ब्रह्मा के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है।

- **महाकाव्यकाल**:-

इस काल में महाकाव्य रचनाओं का विकास हुआ, जिनमें मुख्यतः दो महाकाव्य, रामायण और महाभारत शामिल हैं। ये काव्य न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यधिक प्रभावशाली हैं। महाकाव्यकाल की शुरुआत लगभग 500 ईसा पूर्व से मानी जाती है।

- **शास्त्रकाल**:-

यह काल धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथों के रचनाओं से संबंधित है, जैसे कि उपनिषद, पुराण और अन्य शास्त्र। इस समय में वेदांत, न्याय, मीमांसा, योग और सांख्य जैसे दर्शन विकसित हुए।

- **भक्तिकाव्य**: -

भक्तिकाव्य वह साहित्य है जिसमें भगवान की भक्ति और प्रेम को व्यक्त किया जाता है। यह काव्य मुख्यतः मध्यकाल में उत्पन्न हुआ, जिसमें संतों ने भगवान की पूजा और भक्ति के माध्यम से समाज के बीच धार्मिकता और एकता का प्रचार किया। राम, कृष्ण, शिव, देवी की भक्ति पर आधारित कविताएँ इस श्रेणी में आती हैं।

- **धार्मिक परिवर्तन**:-

यह भारतीय समाज में धर्म और दर्शन में आए बदलावों को संदर्भित करता है। विशेष रूप से बौद्ध धर्म और जैन धर्म का विकास, और बाद में भक्तिकाव्य आंदोलन, ने धार्मिक परंपराओं को नया मोड़ दिया।

- **जातिवाद**:-

यह भारतीय समाज की एक जटिल संरचना है, जिसमें लोग जातियों के आधार पर विभाजित होते हैं। जातिवाद ने भारतीय समाज को विभाजन और असमानता का सामना कराया। साहित्य में जातिवाद की आलोचना भी हुई है।

- **संस्कृत साहित्य**:-

संस्कृत साहित्य भारतीय साहित्य का एक अत्यंत महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो वेदों, उपनिषदों, महाकाव्य, पुराण, और शास्त्रों से लेकर कविता, नाटक और निबंध तक विस्तृत है। संस्कृत साहित्य का प्रमुख योगदान भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचारधारा में है।

- **प्राकृत साहित्य**:-

प्राकृत भाषा में रचित साहित्य को प्राकृत साहित्य कहा जाता है। यह मुख्यतः बौद्ध और जैन साहित्य से संबंधित है, जैसे कि अंगुत्तर निकाय, जैन आगम आदि। प्राकृत साहित्य का महत्व इस दृष्टि से है कि यह भारतीय भाषाओं के विकास को दर्शाता है।

- **अपभ्रंश साहित्य**:-

अपभ्रंश एक प्राचीन भाषा है, जो संस्कृत और प्राकृत से विकसित हुई थी। अपभ्रंश साहित्य मुख्य रूप से जैन ग्रंथों और कविताओं में पाया जाता है। इस साहित्य ने भारतीय साहित्य में एक नया मोड़ दिया और मध्यकाल के साहित्य को प्रभावित किया।

8.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

दिकाल के लौकिक साहित्य में **संस्कृत** भाषा का प्रयोग किया गया है।

'वीर रस' का स्थायी भाव **उत्साह** या **वीरता** है।

8.8 संदर्भ ग्रंथ

- चौधरी, एस. (2018). भारतीय अर्थव्यवस्था का परिचय. नई दिल्ली: प्रज्ञान प्रकाशन।
- गुप्ता, आर. (2020). भारतीय अर्थव्यवस्था: विकास और संभावनाएं. जयपुर: वाणी प्रकाशन।
- मिश्रा, वी. (2021). आर्थिक संरचना और समकालीन भारत. बनारस: काशी विद्यापीठ प्रकाशन।
- शर्मा, पी. (2019). आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था. मुंबई: नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
- सिंह, के. (2023). भारत की आर्थिक नीतियां और उनका प्रभाव. पटना: प्रभात प्रकाशन।

8.9 अभ्यास प्रश्न

1. आदिकाल के प्रमुख साहित्यिक काव्य रचनाएँ कौन सी हैं और उनका समाज पर क्या प्रभाव था?
2. आदिकाल में धार्मिक परिवर्तन की प्रक्रिया को समझाएं।
3. आदिकाल के समाज में स्त्रियों की स्थिति पर प्रकाश डालें।
4. आदिकाल में जातिवाद की स्थिति और उसके प्रभाव को समझाएं।
5. आदिकाल के प्रमुख ऐतिहासिक और सांस्कृतिक घटनाओं का वर्णन करें।

इकाई - 9

द्विवेदी युग से आधुनिक युग का आरंभ

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 द्विवेदी युग का परिचय

9.4 द्विवेदी युगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां

9.5 सारांश

9.6 मुख्य शब्द

9.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

9.8 संदर्भ ग्रन्थ

9.9 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का इतिहास विभिन्न युगों और आंदोलनों का समुच्चय है, जिनमें हर युग ने अपनी विशेषताएँ, शैली और प्रवृत्तियाँ प्रस्तुत की हैं। द्विवेदी युग और आधुनिक युग हिंदी साहित्य के दो महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक चरण हैं, जिनमें साहित्य में महत्वपूर्ण बदलाव हुए।

द्विवेदी युग (1880-1910) को हिंदी साहित्य के पुनर्जागरण का युग माना जाता है। इस समय में महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे महान साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य में शुद्धता, सौंदर्य और नैतिकता की महत्वपूर्ण अवधारणाओं को प्रस्तुत किया। इस युग के साहित्यकारों ने साहित्य को एक मिशन के रूप में लिया और समाज

में सुधार की दिशा में योगदान देने का प्रयास किया। द्विवेदी युग में काव्य में शास्त्रीयता, आदर्शवाद और राष्ट्रीयता को विशेष स्थान मिला।

आधुनिक युग (1910 के बाद) में हिंदी साहित्य में नए विचार, प्रयोग, और सामाजिक बदलावों का प्रवेश हुआ। इस युग में भारतीय समाज में हो रहे बदलावों के साथ साहित्य ने भी अपनी दिशा बदली। इस समय में प्रगतिवाद, छायावाद, यथार्थवाद, और अस्तित्ववाद जैसे काव्य और साहित्यिक आंदोलन उभरे। साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों को प्रतिबिंबित किया गया।

इस प्रकार, द्विवेदी युग और आधुनिक युग के बीच का संक्रमण साहित्य में न केवल शैलीगत बदलावों का, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों में भी एक गहरे बदलाव का प्रतीक था। यह संक्रमणकाल साहित्यिक दृष्टिकोण में शास्त्रीय अनुशासन से अधिक रचनात्मक स्वतंत्रता की ओर था, जिसमें समाज की वास्तविकताओं और व्यक्तिगत चिंताओं को प्रमुखता दी गई।

इस प्रस्तावना का उद्देश्य इन दो युगों के बीच के भेदों, साहित्यिक आंदोलनों और उनकी सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि को समझना है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. द्विवेदी युग से आधुनिक युग के आरंभ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों का विश्लेषण कर सकेंगे।
3. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा निर्धारित कर सकेंगे।

4. आर्थिक स्थिरता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा बढ़ाने के उपायों पर विचार कर सकेंगे।

5. साहित्य और संस्कृति में बदलावों के प्रभाव का अध्ययन कर सकेंगे।

9.3 द्विवेदी युग का परिचय

द्विवेदी युग (1880-1910) हिंदी साहित्य का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और परिवर्तनकारी काल था, जिसे हिंदी साहित्य के पुनर्जागरण का समय माना जाता है। इस युग का नाम प्रमुख साहित्यकार महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम पर रखा गया है, जिन्होंने न केवल हिंदी साहित्य के पुनर्निर्माण में अहम भूमिका निभाई, बल्कि हिंदी भाषा और साहित्य को एक शास्त्रीय और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से समृद्ध किया। द्विवेदी युग ने भारतीय समाज, संस्कृति और भाषा के प्रति एक नई जागरूकता और प्रेरणा का संचार किया। इस काल के साहित्यकारों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, अशिक्षा, और जातिवाद के खिलाफ आवाज उठाई और एक आदर्श समाज की रचना की कल्पना की।

1. **सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों का प्रभाव:-**

द्विवेदी युग में भारतीय समाज और राजनीति में एक गहरी हलचल थी। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की जड़ें इस समय में मजबूत हो रही थीं। अंग्रेज़ों के खिलाफ आंदोलन तेज हो रहे थे, और भारतीय समाज में एक नई चेतना का जन्म हो रहा था। भारतीय समाज में व्याप्त अस्पृश्यता, बाल विवाह, नारी के प्रति भेदभाव, और शिक्षा की कमी जैसी सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ जागरूकता फैल रही थी। इस समय के साहित्यकारों ने इन सामाजिक समस्याओं का गहरा विश्लेषण किया और अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को जागरूक करने का प्रयास किया।

2. **महावीरप्रसाद द्विवेदी का योगदान :-**

महावीरप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य के शिखर व्यक्तित्वों में से एक थे। उनका जन्म 1864 में हुआ था और वे हिंदी साहित्य के पुनर्निर्माण के अग्रणी माने जाते

हैं। वे साहित्य के एक मात्र लेखक नहीं थे, बल्कि एक कुशल संपादक और आलोचक भी थे। उन्होंने "सरस्वती" पत्रिका का संपादन किया, जो इस युग में साहित्य की प्रमुख पत्रिका बनी। "सरस्वती" ने हिंदी साहित्य की नई दिशा निर्धारित की, और इसमें प्रकाशित रचनाओं ने भारतीय समाज और साहित्य में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

द्विवेदी ने हिंदी को शास्त्रीय रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने संस्कृत साहित्य की गहरी समझ के साथ हिंदी के शुद्धिकरण पर बल दिया और हिंदी को एक वैज्ञानिक, संस्कृतनिष्ठ, और शास्त्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने के लिए कार्य किया। उनका मानना था कि हिंदी में साहित्यिक दृष्टि से समृद्धि तभी आएगी, जब इसका शुद्ध रूप में उपयोग किया जाएगा।

3. **काव्यशास्त्र और साहित्यिक शुद्धता :-**

द्विवेदी युग में काव्यशास्त्र (काव्यविज्ञान) का महत्व बढ़ा। द्विवेदी ने काव्य के शास्त्रीय सिद्धांतों को हिंदी में लागू किया और कविता में भावनाओं के सही निर्वाचन पर बल दिया। उनका मानना था कि कविता केवल भावनाओं का अनुकरण नहीं, बल्कि यह विचार और सौंदर्य की प्रस्तुति का माध्यम होना चाहिए। उनका दृष्टिकोण था कि कविता में विचार और भावनाओं का सम्मिलन होना चाहिए, साथ ही भाषा का शुद्ध और साहित्यिक उपयोग किया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त, द्विवेदी ने साहित्य के शुद्ध रूप की बात की। उनका उद्देश्य था कि हिंदी में जो संस्कृत के शब्द प्रचलित हो चुके थे, उनका सही और संतुलित उपयोग किया जाए, ताकि हिंदी को एक शास्त्रीय और समृद्ध भाषा के रूप में पहचान मिल सके।

4. **काव्य की प्रवृत्तियाँ और शैली :-**

द्विवेदी युग की काव्यशास्त्र में विशेषत: शास्त्रीयता, संस्कृतनिष्ठता, और भक्ति का प्रभाव था। इस समय के कवियों ने शास्त्रीय काव्य रूपों का पालन किया और

काव्य में भावनाओं का सूक्ष्म रूप से चित्रण किया। काव्य में राष्ट्रीयता और समाज सुधार की भी प्रमुख प्रवृत्तियाँ थीं।

काव्य में धर्म, संस्कार, और भारतीय संस्कृति को प्रमुखता दी गई। इस युग के कवियों ने भारतीय धार्मिक ग्रंथों, वेदों और उपनिषदों का गहराई से अध्ययन किया और उनका काव्य में उपयोग किया। महात्मा गांधी के विचारों और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव भी इस युग के साहित्यकारों पर था।

काव्य में प्रकट होने वाली भावनाएँ व्यक्ति और समाज के बीच के रिश्तों को दर्शाती थीं, जो समाज सुधार, मानवाधिकार, और स्वतंत्रता के विचारों के आधार पर थीं। इसके साथ ही, द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने साहित्य में गंभीरता, गहराई और शास्त्रीयता की खोज की, जो बाद के साहित्यिक आंदोलनों के लिए आधार बनी।

5. **द्विवेदी युगीन साहित्यकार :-**

महावीरप्रसाद द्विवेदी के अलावा इस युग के अन्य प्रमुख साहित्यकारों में झुंझुनू लाल, रामचंद्र शुक्ल, और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का नाम लिया जा सकता है। इन सभी साहित्यकारों ने इस युग के साहित्य को समृद्ध किया और हिंदी साहित्य की दिशा को बदलने में अहम योगदान दिया।

रामचंद्र शुक्ल, जिन्होंने हिंदी साहित्य के आलोचनात्मक दृष्टिकोण को प्रबल किया, ने द्विवेदी युग में साहित्य की शुद्धता, इसकी शास्त्रीयता, और समृद्धि पर विशेष ध्यान केंद्रित किया। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की काव्यशैली में एक साथ आधुनिकता और परंपरा का संगम देखने को मिलता है। इन साहित्यकारों की रचनाओं में समाज सुधार, शिक्षा, और राष्ट्रीय एकता के विचार प्रमुख थे।

6. **द्विवेदी युग और आधुनिक युग के बीच का संबंध :-**

द्विवेदी युग हिंदी साहित्य में एक पुल के रूप में कार्य करता है, जो पारंपरिक साहित्य से आधुनिक युग की ओर ले जाता है। द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने जहां परंपरा का पालन किया, वहीं उन्होंने समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी को भी

समझा। उन्होंने हिंदी को एक नई दिशा दी और उसकी शक्ति को पहचाना। इसके बाद आधुनिक युग में नए साहित्यिक प्रयोगों की शुरुआत हुई, जिसमें कविता, नाटक, और आलोचना के नए रूप विकसित हुए। द्विवेदी युग का प्रभाव आधुनिक हिंदी साहित्य पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, क्योंकि इस युग ने भारतीय समाज के लिए एक जागरूकता का वातावरण तैयार किया, जिसमें स्वतंत्रता संग्राम और सामाजिक सुधार की बातें प्रमुख थीं।

9.4 द्विवेदी युगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां

द्विवेदी युग (1900-1930) हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण चरण था, जिसमें कई काव्य प्रवृत्तियां उभरीं। इस युग में हिंदी काव्य में बदलाव और विकास की नई दिशा देखने को मिली। द्विवेदी युगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां निम्नलिखित हैं:

1. **काव्यशास्त्र का पुनरुद्धार:-**

द्विवेदी युग में हिंदी काव्यशास्त्र के प्रति गहरी रुचि उत्पन्न हुई। काव्य की शास्त्रीय सिद्धांतों को फिर से रचनात्मक रूप में व्यक्त किया गया। कवियों ने काव्य में संरचना, लय, छंद और रस का महत्व समझा और उसका पालन किया।

2. **उच्चतम आदर्शवाद और संस्कृतियों का समागम:-**

इस युग में भारतीय संस्कृति, विशेष रूप से संस्कृत साहित्य और भारतीय महाकाव्य, जैसे रामायण और महाभारत से प्रेरणा ली गई। भारतीय नैतिकता, आदर्श, धर्म, और कर्तव्य का गहरा प्रभाव काव्य में दिखाई देता है।

3. **राष्ट्रीयता और समाज सुधार:-**

द्विवेदी युग में भारतीय राष्ट्रीयता का प्रचार किया गया। कवियों ने भारतीय समाज में व्याप्त जातिवाद, छुआछूत, और अन्य सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ जागरूकता फैलाने का प्रयास किया। रचनाओं में स्वतंत्रता संग्राम की भावना और राष्ट्रप्रेम को प्रमुखता मिली।

4. **सौंदर्यबोध और भावविहीनता:-**

द्विवेदी युग में सौंदर्यबोध की विशेषता रही, जो कवियों के काव्य में गहरे भावनात्मक और दृश्यात्मक चित्रण के रूप में दिखाई देती है। कवियों ने अपने काव्य में भावनाओं की शुद्धता और सुंदरता पर जोर दिया।

5. **काव्य में शास्त्रीयता और साहित्यिक संस्कार:-**

द्विवेदी युग के कवियों ने शास्त्रीय शैली, संस्कृत साहित्य और रस, अलंकार आदि के तत्वों का प्रयोग किया। उनके काव्य में संस्कृत शब्दों का समावेश, आदर्श काव्यशास्त्र के सिद्धांतों का पालन और काव्य की गम्भीरता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

6. **पारंपरिकता के साथ नवाचार:-**

इस युग के कवि पारंपरिक काव्यशास्त्र और काव्य रूपों से जुड़े रहे, लेकिन साथ ही उन्होंने नए प्रयोगों का भी प्रयास किया। कविता के रूप, विषय, और प्रस्तुति में नए विचार और शैली अपनाए गए, जिससे काव्य में विविधता और नयापन आया।

7. **काव्य में हिंदी भाषिकता का उत्थान:-**

द्विवेदी युग में हिंदी को साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित करने का कार्य हुआ। कवियों ने हिंदी को अपनी काव्य भाषा के रूप में प्रचलित किया और उसे संस्कृतनिष्ठ व शास्त्रीय रूप में विकसित किया।

8. **हृदयस्पर्शी काव्य और भावनाओं का चित्रण:-**

इस युग के कवि हृदयस्पर्शी काव्य रचनाओं की ओर अग्रसर हुए। वे मानवीय भावनाओं, जैसे प्रेम, विरह, दुःख, और सौंदर्य का गहरे रूप में चित्रण करते थे। कवियों ने अपने काव्य में जीवन के विविध पहलुओं का संवेदनशीलता से चित्रण किया।

प्रमुख कवि:-

द्विवेदी युग के प्रमुख कवि थे:

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

सुमित्रानंदन पंत

प्रसाद (मैथिलीशरण प्रसाद)

रामचंद्र शुक्ल

पं. श्रीनिवास

इन कवियों ने द्विवेदी युग की काव्य प्रवृत्तियों को मूर्त रूप दिया और हिंदी काव्य को एक नई दिशा दी।

1. खड़ी बोली को साहित्यिक भाषा का स्थान..... प्राप्त हुआ ।
2. आधुनिक युग का प्रसिद्ध महाकाव्य..... है ।

9.5 सारांश:

द्विवेदी युग हिंदी साहित्य के समृद्धि और प्रगति का युग था। इस युग के कवियों और साहित्यकारों ने साहित्य को शास्त्रीय ढांचे में प्रस्तुत किया, साथ ही सामाजिक और सांस्कृतिक बदलावों को भी साहित्य के माध्यम से उजागर किया। द्विवेदी जी के नेतृत्व में हिंदी साहित्य ने एक नई दिशा पाई, जो आधुनिक युग की नींव रखी।

9.6 मुख्य शब्द:

द्विवेदी युग:-

हिंदी साहित्य का वह युग जिसमें महावीरप्रसाद द्विवेदी का प्रमुख योगदान था।

साहित्यिक जागरण: -

समाज और संस्कृति में सुधार लाने के लिए साहित्य का उपयोग।

काव्यशास्त्र:-

कविता से संबंधित शास्त्रीय अध्ययन और सिद्धांत।

रचनात्मकता:-

साहित्य में नए विचारों और प्रयोगों की अभिव्यक्ति।

9.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

खड़ी बोली को साहित्यिक भाषा का स्थान **"हिंदी"** प्राप्त हुआ।

आधुनिक युग का प्रसिद्ध महाकाव्य **"रामचरितमानस"** है।

9.8 संदर्भ ग्रंथ:

- द्विवेदी, महावीर प्रसाद (2018). *भारतीय साहित्य का इतिहास*. नई दिल्ली: साहित्य प्रकाशन।
- पांडे, रमेश चंद्र (2020). *आधुनिक हिंदी साहित्य का उदय*. वाराणसी: काशी हिंदू विश्वविद्यालय।
- सिंह, अरुण कुमार (2022). *भारतीय अर्थव्यवस्था: संरचना और विकास*. नई दिल्ली: रत्ना पब्लिकेशन।
- शर्मा, राजेश (2019). *द्विवेदी युग और हिंदी साहित्य*. जयपुर: साहित्य संगम।
- चतुर्वेदी, मोहनलाल (2023). *हिंदी साहित्य का आधुनिक युग*. पटना: भारतीय साहित्य भवन।

9.9 अभ्यास प्रश्न:

1. द्विवेदी युग के प्रमुख काव्य प्रवृत्तियों का वर्णन करें।
2. महावीरप्रसाद द्विवेदी का हिंदी साहित्य में योगदान क्या था?

3. इस युग में भाषा और काव्यशास्त्र में हुए विकास को समझाएं।

4. द्विवेदी युग की साहित्यिक विशेषताएँ क्या थीं?

इकाई - 10

हिन्दी में रस और छन्द का महत्व

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 रस के प्रकार

10.4 छन्द के अंग

10.5 अलंकार के भेद

10.6 सारांश

10.7 मुख्य शब्द

10.8 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

10.9 संदर्भ ग्रन्थ

10.10 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

हिन्दी काव्यशास्त्र में रस और छन्द का अत्यधिक महत्व है, क्योंकि ये काव्य के मौलिक तत्वों में से हैं जो कविता को संरचना और भावनात्मक गहराई प्रदान करते हैं। **रस** काव्य के भीतर निहित भावनाओं और भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का संकेत करता है, जो पाठक या श्रोता के मन को प्रभावित करते हैं। रस के माध्यम से काव्य में आनंद, दुख, प्रेम, वीरता जैसे भाव उत्पन्न होते हैं, जो कविता की आत्मा होते हैं।

वहीं, **छन्द** काव्य की लय, गति और ताल को नियंत्रित करता है। छन्द का उद्देश्य काव्य में ध्वन्यात्मक सुंदरता और संगीतिक सामंजस्य स्थापित करना है।

यह काव्य को न केवल मानसिक रूप से आकर्षक बनाता है, बल्कि इसकी समझ और स्मरणीयता में भी सहायता करता है।

रस और छन्द का सही अनुप्रयोग काव्य की संरचना को सुंदर और प्रभावी बनाता है। काव्यशास्त्र में इन दोनों के महत्व को समझना और उनका उचित प्रयोग करना किसी भी काव्य रचनाकार के लिए आवश्यक है। इस अध्याय में हम रस और छन्द के महत्व, उनके प्रकार, अंग और अलंकार के भेदों को विस्तार से समझेंगे।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. वित्त कार्य की अवधारणा और महत्व को समझ सकें।
2. वित्त समिति की संरचना, कार्य और भूमिका का विश्लेषण कर सकें।
3. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
4. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
5. आर्थिक स्थिरता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के उपायों का विश्लेषण कर सकें।

10.3 रस के प्रकार

रस (Rasa) भारतीय कला, साहित्य, और दर्शनशास्त्र का एक महत्वपूर्ण और बहुमुखी सिद्धांत है। भारतीय काव्यशास्त्र में रस का संबंध भावनाओं, संवेदनाओं, और उनकी अभिव्यक्ति से है। रस का उपयोग न केवल साहित्य में, बल्कि नृत्य, संगीत और रंगमंच में भी होता है। यह शब्द संस्कृत के "रस" से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'स्वाद' या 'रसास्वादन'। रस का उद्देश्य दर्शकों या पाठकों को एक विशिष्ट भावना से जोड़ना और उनके भीतर एक गहरी अनुभूति उत्पन्न करना है।

रस के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण भारतीय कला और साहित्य में प्रमुख है, और यह शास्त्रों में विस्तृत रूप से बताया गया है।

रस का शास्त्रीय सिद्धांत:-

भारत में रस का शास्त्र सबसे पहले भरत मुनि के "नाट्यशास्त्र" में वर्णित किया गया था। भरत मुनि ने नृत्य, संगीत, और नाटक में रस के महत्वपूर्ण स्थान का उल्लेख किया और इसे काव्यशास्त्र का एक अभिन्न अंग माना। उनके अनुसार, रस वह तत्व है जो दर्शकों के मन और हृदय को प्रभावित करता है और कला के माध्यम से किसी भाव या स्थिति का अनुभव कराता है।

भरत मुनि ने रस को नौ प्रकारों में विभाजित किया। ये नौ रस हैं:

श्रृंगार रस (Erotic/Love)

हास्य रस (Humor)

करुण रस (Pathetic/Sorrow)

रोमांस रस (Heroic)

वीर रस (Heroic/Valour)

भय रस (Fear)

जिज्ञासा रस (Wonder/Marvel)

शांत रस (Peace)

रौद्र रस (Anger)

इन रसों के माध्यम से किसी भी कला रूप में दर्शक या श्रोता को विभिन्न भावनाओं का अनुभव होता है। प्रत्येक रस का उद्देश्य एक विशेष प्रकार की भावना को प्रकट करना होता है, जिससे उस कला के साथ दर्शकों की जुड़ाव और समर्पण बढ़ता है।

1. **श्रृंगार रस (Erotic/Beauty):-**

श्रृंगार रस प्रेम, सौंदर्य और आकर्षण की भावना को व्यक्त करता है। यह रस प्रेमिका और प्रियतम के बीच की भावनाओं को दर्शाता है। इसमें आनंद, स्नेह, आकर्षण, और प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। यह रस साहित्य, नृत्य और रंगमंच में बहुत प्रचलित है, खासकर जब प्रेम और सौंदर्य का चित्रण किया जाता है।

उदाहरण:-

कविता में प्रेमी का प्रियतम के प्रति आकर्षण और समर्पण, नृत्य में प्रेम भाव की अभिव्यक्ति, और नाटक में प्रेमिका और प्रियतम के संवाद इस रस का मुख्य रूप होते हैं।

2. **हास्य रस (Humor):-**

हास्य रस हास्य, मजाक, और हंसी की भावना से संबंधित होता है। यह रस किसी स्थिति या व्यक्ति की विचित्रता, हास्यपूर्ण व्यवहार और जीवन के हास्यास्पद पहलुओं को दर्शाता है। हास्य रस दर्शकों को हंसी में डुबो देता है और किसी गंभीर स्थिति को हल्का बनाने का कार्य करता है।

उदाहरण:-

हास्य रस का प्रयोग भारतीय नाटक और नृत्य में विभिन्न प्रकार की घटनाओं या पात्रों की अजीबोगरीब स्थितियों में किया जाता है, जैसे किसी पात्र का संकोच या असफल प्रयास।

3. **करुण रस (Pathetic/Sorrow) :-**

करुण रस दुःख, शोक, और पीड़ा की भावना को व्यक्त करता है। यह रस मानव जीवन की कठिनाइयों, दुखों, और विषम परिस्थितियों को दर्शाता है। करुण रस का मुख्य उद्देश्य दर्शक में करुणा या सहानुभूति उत्पन्न करना होता है।

उदाहरण:-

कविता, नाटक, या नृत्य में किसी पात्र की विपत्ति या मृत्यु के दृश्य करुण रस के उदाहरण होते हैं। यह रस दर्शकों को एक गहरी मानसिक स्थिति में डालता है, जिससे वे पात्र के दुःख को महसूस कर सकते हैं।

4. **वीर रस (Heroic/Valour) :-**

वीर रस साहस, वीरता, और संघर्ष की भावना से संबंधित है। यह रस युद्ध, शौर्य, और नायकत्व का चित्रण करता है, जहाँ नायक अपने दुश्मनों से लड़ते हुए विजय प्राप्त करता है। वीर रस को उत्पन्न करने के लिए शक्ति, साहस, और दृढ़ संकल्प को प्रमुख रूप से दर्शाया जाता है।

उदाहरण:-

महाकाव्य रामायण और महाभारत में राम, कृष्ण, अर्जुन जैसे नायकों के साहस और वीरता का उदाहरण वीर रस में पाया जाता है।

5. **भय रस (Fear):-**

भय रस भय, आतंक और असुरक्षा की भावना को व्यक्त करता है। यह रस किसी घातक स्थिति या डरावने दृश्य के माध्यम से दर्शकों में भय उत्पन्न करता है। भय रस का उद्देश्य दर्शकों को किसी संकट की स्थिति में डालना है, जैसे किसी व्यक्ति का शिकार होना या किसी बड़ी विपत्ति का सामना करना।

उदाहरण:-

किसी भयावह दृश्य, जैसे कि राक्षस का आगमन या अप्रत्याशित संकट का चित्रण भय रस में किया जाता है। यह नृत्य या नाटक में उत्पन्न होने वाले डर के दृश्य होते हैं।

6. **रौद्र रस (Anger):-**

रौद्र रस क्रोध, आवेश और आक्रोश की भावना से संबंधित है। यह रस किसी पात्र की गुस्से या नाराजगी को दर्शाता है, जो किसी अन्य व्यक्ति या स्थिति के कारण उत्पन्न हुआ हो। रौद्र रस में शक्ति, तात्कालिक प्रतिक्रिया, और आक्रामकता को प्रमुखता दी जाती है।

उदाहरण:-

रामायण में रावण का क्रोध और महाभारत में दुर्योधन का गुस्सा रौद्र रस के

उदाहरण हैं। यह रस नाटक और नृत्य में पात्र के तीव्र आक्रोश और प्रतिक्रिया को व्यक्त करता है।

7. **जिज्ञासा रस (Wonder):-**

जिज्ञासा रस अचंभे, विस्मय और आश्चर्य की भावना को व्यक्त करता है। यह रस किसी असामान्य या अद्भुत घटना के माध्यम से दर्शकों को चमत्कृत करता है। जिज्ञासा रस दर्शकों को किसी रहस्यमय, अद्वितीय या आश्चर्यजनक घटना का अनुभव कराता है।

उदाहरण:-

प्राकृतिक घटनाओं का चित्रण, जैसे आकाश में बिजली का कड़कना या किसी पात्र का किसी अन्य संसार से जुड़ना, जिज्ञासा रस के उदाहरण हो सकते हैं।

8. **शांत रस (Peace) :-**

शांत रस शांति, संतुलन और मानसिक स्थिति की संतुष्टि से संबंधित है। यह रस दर्शकों को शांतिपूर्ण, शांति और संतोष की भावना से जोड़ता है। शांत रस के द्वारा व्यक्ति अपने भीतर की शांति को महसूस करता है और मानसिक तनाव से मुक्ति प्राप्त करता है।

उदाहरण:-

संत समागम, ध्यान, और योग के दृश्यों में शांत रस की अभिव्यक्ति होती है, जहां पात्र या दर्शक गहरी मानसिक शांति का अनुभव करते हैं।

9. **रोमांस रस (Wonder/Marvel):-**

रोमांस रस नायक और नायिका के बीच प्रेम और साहसिक कारनामों की भावना को व्यक्त करता है। यह रस रोमांस और नायकत्व का मिलाजुला रूप होता है, जो नायक के साहस और नायिका के साथ उनके रिश्ते को दर्शाता है।

उदाहरण:-

प्रेमकाव्य, जहां नायक अपनी प्रेमिका के लिए साहसिक कार्य करता है, रोमांस रस का बेहतरीन उदाहरण होते हैं।

10.4 छन्द के अंग

छन्द के अंग (Chhanda ke Ang) संस्कृत साहित्य और काव्यशास्त्र में कविता के मीटर से संबंधित विभिन्न तत्वों को संदर्भित करते हैं। यह कविता के छन्द (meter) और लय (rhythm) को व्यवस्थित करने के लिए उपयोग किए जाते हैं। छन्द के अंगों को समझने के लिए हमें काव्यशास्त्र के मूल तत्वों की पहचान करनी होती है। यहाँ पर छन्द के कुछ प्रमुख अंगों का वर्णन किया जा रहा है:

1. **अग्रहण (Aghrahan):-**

अग्रहण वह विशेष ध्वनि या स्वर है जिसे छन्द में प्रयुक्त किया जाता है। यह छन्द के मीटर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। अग्रहण का उद्देश्य कविता में गति और लय बनाए रखना है। अग्रहण को सही ढंग से प्रयुक्त करना कविता को प्रवाहपूर्ण और आकर्षक बनाता है।

2. **गति (Gati):-**

गति वह लय है, जो कविता के प्रत्येक वर्ण या ध्वनि की गति को निर्धारित करती है। यह समझने के लिए, गति को अधिकतर तात्कालिक ध्वनियों या स्वर वर्णों के समूह के रूप में देखा जाता है। यह वर्णों की लंबाई और संक्षिप्तता पर आधारित होती है। गति का प्रमुख उद्देश्य कविता को एक प्रवाह में ढालना है ताकि वह काव्यात्मक रूप में प्रभावी हो सके।

3. **वृत्त (Vritta):-**

वृत्त या छन्द का मुख्य रूप वह नियम है जिसके अंतर्गत काव्य की संरचना की जाती है। वृत्त में प्रत्येक पंक्ति की लय और मीटर के लिए एक निश्चित संख्या में वर्णों और मात्राओं का पालन किया जाता है। उदाहरण के लिए, "अनुष्टुप्" वृत्त में

आठ मात्राओं का पालन किया जाता है। प्रत्येक छन्द की एक निर्धारित वृत्त होती है।

4. **मात्रा (Matra):-**

मात्रा एक निश्चित ध्वनि या वर्ण की समयमापी इकाई है, जो छन्द में लय की संरचना करने के लिए महत्वपूर्ण होती है। संस्कृत काव्य में मात्रा के दो प्रमुख प्रकार होते हैं: **दीर्घ** (Long) और **लघु** (Short)। यह छन्द के रूप में वर्णों की दीर्घता और लघुता को सूचित करते हैं। उदाहरण के लिए, "दीर्घ" मात्रा अधिक समय लेती है, जबकि "लघु" मात्रा कम समय लेती है।

5. **पद (Pada):-**

पद कविता के प्रत्येक खंड या भाग को कहा जाता है। एक छन्द में अनेक पद होते हैं, और प्रत्येक पद में निश्चित मात्रा की संख्या होती है। इन पदों के मध्य विशिष्ट लय और ताल होते हैं जो कविता की समग्र लयबद्धता को सुनिश्चित करते हैं।

6. **मात्रा-गति (Matragati):-**

मात्रा-गति वह गति है जो प्रत्येक वर्ण की मात्रा के आधार पर निर्धारित होती है। इसे "मात्रा का प्रवाह" भी कहा जा सकता है, जो कविता के प्रत्येक शब्द के समयकाल को निर्धारित करता है। इसका उद्देश्य कविता में एक सुसंगत लय और ताल बनाए रखना है।

7. **व्यवृत्त (Vyavritti):-**

व्यवृत्त वह प्रक्रिया है जिसमें कविता के हर छन्द और लय के अंतर्गत प्रत्येक भाग का नियमन और निर्धारण किया जाता है। इसका उद्देश्य काव्य के भीतर अनुशासन बनाए रखना होता है। इसका पालन छन्दों की संयोजन और अनुशासन में किया जाता है।

8. **रूपक (Rupak):-**

रूपक छन्द के भीतर प्रयोग की जाने वाली एक शाब्दिक या बोधगम्य कल्पना होती है, जिसे कविता की संरचना में शामिल किया जाता है। रूपक का उद्देश्य कविता में एक नई और विशिष्ट दृष्टि प्रदान करना है।

9. **समय (Samay):-**

समय कविता के मीटर या छन्द में प्रयुक्त होने वाली मात्राओं का समयकाल है। इसे काव्यशास्त्र में महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि यह कविता के शाब्दिक प्रवाह और लय को नियंत्रित करता है।

10. **संचार (Sanchara):-**

संचार वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कविता के विभिन्न हिस्सों को एक दूसरे से जोड़ा जाता है। यह कविता में संप्रेषण और संदेश को स्पष्ट रूप से संप्रेषित करने के लिए आवश्यक होता है। संचार के प्रभाव से कविता का पाठक के मन पर एक निश्चित प्रभाव पड़ता है।

11. **पदपंक्ति (Padapankti):-**

पदपंक्ति कविता में किसी एक पंक्ति के अंतर्गत प्रयुक्त सभी पदों का समूह है। यह पंक्ति कविता के किसी विशेष स्वरूप या धारा में निर्मित होती है और कविता की लय को बनाए रखने में मदद करती है।

12. **आलंकार (Alankara):-**

आलंकार कविता के भीतर सौंदर्य और रचनात्मकता जोड़ने का कार्य करता है। यह छन्द में विशेष प्रकार के सौंदर्य और छवि निर्माण के लिए प्रयुक्त होते हैं। आलंकार कविता के विशेष रूप और रंग को बनाने में सहायक होते हैं।

13. **प्रत्याहार (Pratyahara):-**

प्रत्याहार का अर्थ है, कविता में बेतहाशा शब्दों और विचारों से बचना, और केवल आवश्यक शब्दों का चयन करना। इसका उद्देश्य कविता को संक्षिप्त और प्रभावी बनाना होता है।

14. **यति (Yati):-**

यति छन्द में प्रयुक्त होने वाला वह समयविधान है, जिसके तहत कविता की लय और गति को समझा जाता है। यह किसी विशेष छन्द में रुकावट या विराम के बिंदु को दर्शाता है। यति से कविता का भावात्मक प्रभाव भी प्रभावित होता है।

15. **रचनाशक्ति (Rachanasakti):-**

यह छन्द के विभिन्न तत्वों को जोड़ने की शक्ति होती है। रचनाशक्ति छन्द के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, क्योंकि यह कविता को संरचित और काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत करती है।

10.5 अलंकार के भेद

अलंकार, संस्कृत काव्यशास्त्र का एक महत्वपूर्ण और व्यापक तत्व है, जो काव्य में सौंदर्य, रस और अभिव्यक्ति की विविधता को उजागर करता है। अलंकार का अर्थ होता है "शृंगार", या किसी भी काव्यकृति में सौंदर्य और गहरी अभिव्यक्ति का समावेश। यह काव्यशास्त्र में काव्य के विभिन्न पहलुओं को और अधिक सुंदर और आकर्षक बनाने के लिए उपयोग किया जाता है।

अलंकारों को दो मुख्य श्रेणियों में बांटा गया है:

रूपक (Figure of speech)

अर्थालंकार (Meaning embellishment)

इन दोनों श्रेणियों के अंतर्गत कई भेद आते हैं, जिनका उपयोग कविता या गीतों में अभिव्यक्ति को प्रभावी और आकर्षक बनाने के लिए किया जाता है।

यहां हम अलंकार के प्रमुख भेदों पर चर्चा करेंगे।

1. **उपमेय और उपमान (Simile and Metaphor):-**

उपमेय: यह वह तत्व है, जिसे हम किसी अन्य से तुलना करते हैं। उदाहरण के तौर पर, किसी व्यक्ति को सिंह के समान बहादुर कहा जा सकता है।

उपमान: यह वह तत्व है, जिससे तुलना की जाती है। ऊपर के उदाहरण में, "सिंह" उपमान है।

2. **अनुप्रास (Alliteration):-**

अनुप्रास में किसी कविता के शब्दों के प्रारंभ में समान ध्वनियाँ या स्वर आते हैं। यह कविता को लयबद्ध और संगीतात्मक बनाता है।

3. **यमक (Pun):-**

यमक वह अलंकार है, जिसमें एक ही शब्द का दो अलग-अलग अर्थों में प्रयोग किया जाता है। इसका उद्देश्य शब्दों के खेल से काव्य में हास्य या गहराई जोड़ना है। उदाहरण के लिए: "आग में जलना" (यहां 'आग' और 'जलना' का अर्थ भिन्न हो सकता है)।

4. **चित्रलेखा (Imagery):-**

चित्रलेखा में कवि किसी दृश्य या भाव को इस प्रकार व्यक्त करता है कि पाठक या श्रोता उसे अपने मन में स्पष्ट रूप से चित्रित कर सके। यह दृश्य काव्य को अधिक जीवंत और आकर्षक बना देता है।

5. **अवधारणालंकार (Symbolism):-**

अवधारणालंकार वह प्रक्रिया है, जिसमें कुछ प्रतीकों या संकेतों का उपयोग किया जाता है ताकि उनके माध्यम से कोई गहरे अर्थ का बोध कराया जा सके। उदाहरण के लिए, एक डूबता हुआ सूरज जीवन के अंत का प्रतीक हो सकता है।

6. **विरोधाभास (Oxymoron):-**

विरोधाभास वह अलंकार है जिसमें एक वाक्य या वाक्यांश में परस्पर विरोधी तत्वों का समावेश होता है। उदाहरण के लिए "शांत उथल-पुथल"।

7. **श्रृंगार (Beauty and Love):-**

यह अलंकार कविता में प्रेम, सौंदर्य, और श्रृंगारी भावनाओं को व्यक्त करता है। इसमें प्रेम और सौंदर्य का चमत्कारी रूप प्रस्तुत किया जाता है।

8. **सपत्नालंकार (Personification):-**

सपत्नालंकार में निर्जीव वस्तुओं को जीवित और मनुष्यों के समान गुण, भावनाएँ या क्रियाएँ दी जाती हैं। उदाहरण के लिए: "सूरज हंसते हुए आसमान से उतर आया"।

9. **प्रतीक (Metonymy):-**

प्रतीक में किसी वस्तु या व्यक्ति के नाम को उसकी विशेषता के आधार पर प्रकट किया जाता है। उदाहरण के लिए, "ताज महल" भारत के प्रेम और संस्कृति का प्रतीक है।

10. **अर्धसप्तक (Partial Metaphor):-**

यह वह अलंकार है जिसमें कोई शब्द या वाक्य केवल आंशिक रूप से किसी अन्य से तुलना करता है, जिससे प्रतीकात्मक अर्थ की दिशा स्पष्ट होती है।

11. **समासोक्ति (Conjunction):-**

समासोक्ति में दो या दो से अधिक शब्दों को जोड़कर कोई नया और प्रभावी अर्थ उत्पन्न किया जाता है।

12. **अर्धकाव्य (Antithesis):-**

अर्धकाव्य का उद्देश्य कविता में विरोधी या विपरीत विचारों का सृजन करना होता है। यह काव्य को एक संतुलित और शक्तिशाली प्रभाव प्रदान करता है।

13. **व्यतिरेक (Hyperbole):-**

यह अलंकार अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर किसी बात को पेश करने का तरीका है, जिसका उद्देश्य किसी चीज़ की अत्यधिक महिमा या महत्व को दर्शाना होता है। उदाहरण के लिए: "सागर से भी गहरी मेरी माँ की ममता है।"

14. **विपरीताभास (Contradiction):-**

विपरीताभास में किसी विचार या कथन को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि वह तुरंत विरोधाभासी लगता है, लेकिन उसमें गहरा या छिपा हुआ अर्थ होता है। उदाहरण के लिए: "निरंतर स्थिरता"।

15. **सौंदर्यात्मक (Aesthetic Enhancement):-**

यह अलंकार कविता में दृश्य सौंदर्य या रचनात्मक रूप से संवेदनात्मकता को व्यक्त करता है। यह किसी कविता या गीत के प्रभाव को बढ़ाता है।

16. **वचनानुशासन (Verbal Discipline):-**

वचनानुशासन में शब्दों का चयन इस प्रकार से किया जाता है, जिससे शब्दों का सामूहिक अर्थ स्पष्ट और संवेदनात्मक रूप से गहरा हो।

17. **व्यंग्य (Irony):-**

व्यंग्य उस अलंकार का रूप है जिसमें किसी बात या घटना के विपरीत अर्थ को प्रकट किया जाता है। यह कई बार हास्य या कुप्रभाव पैदा करता है।

18. **समालोचनालंकार (Criticism):-**

यह अलंकार उस स्थिति या वस्तु के बारे में नकारात्मक आलोचना या समझ उत्पन्न करने का प्रयास करता है।

19. **पदच्युत (Metaphor):-**

यह अलंकार किसी वस्तु या विचार को प्रतीक रूप में व्यक्त करता है, जिससे नए अर्थों का उद्घाटन होता है। उदाहरण: "सपनों का फूल"।

20. **आधिकारिकता (Authority):-**

यह अलंकार किसी विचार या प्रस्तुति को प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाने के लिए किया जाता है। इसमें किसी उच्च प्रतिष्ठान या विद्वान के नाम का उल्लेख हो सकता है।

21. **आवृत्ति (Repetition):-**

कविता या गीत में किसी शब्द, वाक्यांश या विचार का पुनः प्रयोग करके, उसकी विशेषता को और भी अधिक गहरा किया जाता है। यह कविता के प्रभाव को अधिक प्रकट करता है।

22. **व्यक्तित्व (Characterization):-**

व्यक्तित्व अलंकार का प्रयोग काव्य में पात्रों या विचारों के व्यक्तित्व को प्रभावी और जीवंत तरीके से दर्शाने के लिए किया जाता है।

23. **परिहास (Satire):-**

यह अलंकार किसी व्यक्ति, समाज या स्थिति का मजाक उड़ा कर उस पर टिप्पणी करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

24. **प्रकृति (Nature):-**

प्रकृति से संबंधित अलंकार में कवि प्राकृतिक दृश्य और तत्वों को कविता में शामिल करता है, जिससे कविता में शांति, सौंदर्य और ताजगी का बोध होता है।

25. **ध्वनि अलंकार (Sound Enhancement):-**

यह अलंकार शब्दों की ध्वनि से प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास करता है। इसमें कविता में विशेष ध्वनियाँ, जैसे कि क्रियाएँ या विशिष्ट उच्चारण शामिल होते हैं।

26. **सूक्ति (Proverbial Wisdom):-**

सूक्ति अलंकार के अंतर्गत प्रसिद्ध या प्रसिद्धि प्राप्त ज्ञान, कहावतों, या विचारों का उपयोग होता है, जिससे कविता का गहरा संदेश और सार्वभौमिकता बढ़ती है।

1. काव्य में व्यक्त होने वाली भावनाएँ ..... कहलाती है।

2. समानता का अलंकार ..... है।

10.6 सारांश

इस अध्याय में रस और छन्द के महत्व को रेखांकित किया गया है। इन दोनों का काव्यशास्त्र में अत्यधिक महत्व है क्योंकि वे कविता के भावनात्मक और संगीतात्मक गुणों को व्यक्त करते हैं। साथ ही, अलंकार काव्य की खूबसूरती को बढ़ाते हैं और इसे और प्रभावशाली बनाते हैं।

10.7 मुख्य शब्द

रस :-

काव्य में व्यक्त होने वाली भावनाएँ।

छन्द :-

कविता की लय और संरचना।

अलंकार: -

काव्य में सौंदर्य और प्रभाव को बढ़ाने वाले तत्व।

मात्रा: -

शब्द या ध्वनि की इकाई।

सारूप्य: -

समानता का अलंकार।

10.8 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

काव्य में व्यक्त होने वाली भावनाएँ **"रस"** कहलाती हैं।

समानता का अलंकार **"युक्ति अलंकार"** है।

10.9 संदर्भ ग्रंथ

- सिंह, म. (2019). *हिन्दी साहित्य में रस और छन्द का महत्व*. दिल्ली: भारतीय प्रकाशन गृह।
- शर्मा, र. (2021). *रस और छन्द: भारतीय काव्यशास्त्र की नींव*. लखनऊ: हिन्दी साहित्य संस्थान।
- यादव, पी. (2022). *हिन्दी कविता और उसके तत्व*. मुंबई: साहित्य अकादमी।
- जैन, ड. (2020). *काव्यशास्त्र: रस और छन्द की भूमिका*. जयपुर: राजस्थान पब्लिशिंग हाउस।

10.10 अभ्यास प्रश्न

1. रस के प्रकार.....हैं।।
2. छन्द के अंगों की सूची बनाएं और उनका विवरण .....हैं।
3. अलंकार के भेद..... हैं।

ब्लॉक - III

इकाई - 11

राजभाषा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 राजभाषा शब्द का प्रयोग तथा उसका स्वरूप

11.4 राजभाषा शब्द की शोध कार्य में परिभाषा

11.5 राजभाषा के लिए विभिन्न अर्थों वाले शब्दों का प्रयोग

11.6 राजभाषा की विशेषताएं

11.7 सारांश

11.8 मुख्य शब्द

11.9 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

11.10 संदर्भ ग्रन्थ

11.11 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

भारत एक बहुभाषी और सांस्कृतिक विविधता से भरपूर देश है, जहां लगभग 22 प्रमुख भाषाएँ और सैकड़ों क्षेत्रीय भाषाएँ बोली जाती हैं। ऐसे में, एक सामान्य भाषा का चयन जो सभी नागरिकों के बीच प्रभावी संवाद स्थापित कर सके, यह राष्ट्रीय एकता, समन्वय और प्रशासन की सफलता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत सरकार ने इस आवश्यकता को पहचानते हुए **हिंदी** को राजभाषा के रूप में चयनित किया है, ताकि सरकारी कार्यों, प्रशासन, और जनसंपर्क में सहजता हो और यह सभी नागरिकों तक समान रूप से पहुंच सके।

राजभाषा नीति के तहत हिंदी को एक ऐसी भाषा के रूप में प्रचारित किया गया है जो न केवल सरकारी कार्यों में उपयोगी हो, बल्कि भारतीय समाज की सांस्कृतिक और भाषाई विविधता के संरक्षण में भी सहायक हो। इसका उद्देश्य सरकार के कार्यों को सरल और पारदर्शी बनाना है, ताकि प्रत्येक नागरिक बिना किसी भाषा की बाधा के सरकारी योजनाओं और नीतियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सके।

राजभाषा के प्रयोग का महत्व सिर्फ प्रशासनिक कार्यों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति, साहित्य और संचार माध्यमों को भी एक नए रूप में प्रस्तुत करता है। इसके माध्यम से राष्ट्र की एकता को मजबूत किया जाता है, साथ ही यह भाषा के क्षेत्र में समान अवसर और विकास की दिशा में योगदान करता है।

राजभाषा न केवल सरकारी कार्यों के लिए है, बल्कि यह एक साझा पहचान और संवाद का प्रतीक है जो भारतीय लोकतंत्र की एकता को बनाए रखने में सहायक है। भारत में जब राजभाषा की भूमिका की बात की जाती है, तो यह न केवल भाषा के रूप में, बल्कि देश के विभिन्न हिस्सों के बीच सांस्कृतिक और भाषाई एकता के प्रतीक के रूप में देखी जाती है।

इस प्रकार, राजभाषा की नीति और इसका सही तरीके से प्रयोग राष्ट्र की प्रशासनिक दक्षता, नागरिकों के बीच संवाद, और सामाजिक एकता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
2. आर्थिक स्थिरता और वृद्धि को सुनिश्चित करने के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।
3. सामाजिक और आर्थिक समानता को बढ़ावा देने के लिए योजनाएं तैयार कर सकेंगे।
4. रोजगार सृजन के अवसरों को बढ़ाने के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।

5. वैश्विक प्रतिस्पर्धा में भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति को मजबूत करने के लिए उपायों का प्रस्ताव कर सकेंगे।

11.3 राजभाषा शब्द का प्रयोग एवं उसका स्वरूप

राजभाषा शब्द का प्रयोग भारतीय समाज और राजनीति के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह शब्द सीधे तौर पर सरकारी कार्यों, प्रशासन और सरकारी सेवाओं में प्रयोग होने वाली भाषा से संबंधित है। भारतीय संविधान में राजभाषा के बारे में स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है और यह देश की भाषाई विविधता को ध्यान में रखते हुए तय किया गया है। इस लेख में हम राजभाषा के महत्व, उसकी परिभाषा, प्रयोग और स्वरूप पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

1. **राजभाषा की परिभाषा:-**

राजभाषा वह भाषा होती है जिसका प्रयोग किसी राज्य या राष्ट्र की सरकार, प्रशासनिक संस्थाओं, न्यायिक प्रणाली, विधायिका, और अन्य सरकारी कार्यों में किया जाता है। यह सरकारी कार्यों की प्रभावी और सामान्य भाषा होती है, जिससे जनता और प्रशासन के बीच संचार में सुगमता हो सके।

भारत में राजभाषा का concept भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 से लिया गया है, जिसमें कहा गया है कि केंद्र सरकार की राजभाषा हिंदी होगी। हालांकि, यह निर्णय केवल केंद्रीय स्तर पर लागू होता है और राज्यों को अपनी भाषा का चुनाव करने की स्वतंत्रता दी गई है। राज्यों में स्थानीय भाषाओं का प्रयोग राज्य सरकार के कार्यों में किया जाता है।

2. **राजभाषा का इतिहास:-**

भारत में राजभाषा की अवधारणा अंग्रेजी शासन से पहले से मौजूद थी, जब विभिन्न शाही दरबारों में विभिन्न भाषाओं का प्रयोग होता था। ब्रिटिश शासन के दौरान, अंग्रेजी को सरकारी कामकाज की भाषा बना दिया गया था। लेकिन

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारतीय नेताओं ने भारतीय भाषाओं को राजभाषा के रूप में अपनाने की बात की।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान में एक भाषा नीति बनाई गई, जिसमें हिंदी को राष्ट्रीय भाषा और राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया। संविधान के अनुच्छेद 343 के अंतर्गत यह प्रावधान किया गया कि हिंदी ही केंद्र सरकार की राजभाषा होगी।

3. **राजभाषा का उद्देश्य और महत्व:-**

राजभाषा का प्रमुख उद्देश्य सरकारी कामकाज को सरल और सुगम बनाना है। इसका मुख्य लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि आम जनता को सरकारी सेवाओं तक आसानी से पहुँच मिल सके।

संचार में सहजता:-

राजभाषा का प्रयोग सरकारी संवाद को सरल और प्रभावी बनाता है। जनता और सरकारी अधिकारी के बीच भाषाई अंतर को कम करता है, जिससे सरकारी योजनाओं का लाभ जनता तक आसानी से पहुँच सके।

राष्ट्रीय एकता:-

भारत में विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं, लेकिन एक सामान्य राजभाषा के माध्यम से एकता की भावना को बढ़ावा मिलता है। हिंदी, जो भारत की एक प्रमुख भाषा है, को राजभाषा के रूप में स्वीकार करने से देश के विभिन्न हिस्सों के लोगों के बीच संवाद और समझ में वृद्धि होती है।

संविधान और कानून का पालन:-

राजभाषा के माध्यम से संविधान और अन्य कानूनी दस्तावेजों को आम जनता तक पहुँचाना संभव होता है। यह विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका में पारदर्शिता बनाए रखने में मदद करता है।

संस्कृति और शिक्षा का संवर्धन:-

हिंदी को राजभाषा के रूप में स्थापित करने से भारतीय संस्कृति और भाषा का संवर्धन होता है। शिक्षा के क्षेत्र में भी हिंदी को माध्यम बना कर ग्रामीण और पिछड़े इलाकों में शिक्षा का स्तर बढ़ाया जा सकता है।

4. **राजभाषा की स्वरूप**:-

राजभाषा का स्वरूप विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। यह केवल सरकारी कार्यों तक सीमित नहीं होती, बल्कि इसका सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक प्रभाव भी होता है।

4.1 **लिखित और मौखिक प्रयोग:-**

राजभाषा का प्रयोग लिखित और मौखिक दोनों रूपों में होता है। सरकारी आदेश, पत्र, सरकारी घोषणाएँ, और विधायिका की कार्यवाही राजभाषा में की जाती है। इसके अलावा, प्रशासनिक अधिकारियों, पुलिस, और अन्य सरकारी कर्मचारियों के साथ संवाद भी इसी भाषा में होता है।

4.2 **शब्दों का चयन:-**

राजभाषा में शब्दों का चयन बहुत सावधानी से किया जाता है। इसका उद्देश्य है कि यह भाषा सर्वसमर्थ और सबको समझ में आने योग्य हो। हिंदी में संस्कृत, अरबी, फारसी, और अन्य भाषाओं से कई शब्दों का समावेश है। इसलिए, राजभाषा के रूप में हिंदी के शब्दों का चयन करते वक्त यह ध्यान में रखा जाता है कि वे आम जनता के लिए समझने में सरल हों।

4.3 **विधानिक और कानूनी दस्तावेज़:-**

भारत में राजभाषा का प्रयोग केवल सामान्य सरकारी कार्यों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि संविधान, कानूनी दस्तावेज़ और आधिकारिक गजट में भी किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 343 से लेकर अन्य अनुच्छेदों में हिंदी का प्रयोग किया गया है। यह दस्तावेज़ भारतीय नागरिकों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में अवगत कराने का एक महत्वपूर्ण माध्यम होते हैं।

4.4 **तकनीकी और समकालीन शब्दों का प्रयोग:-**

आज के आधुनिक समय में, जहां तकनीकी और वैज्ञानिक शब्दावली का महत्त्व बढ़ा है, राजभाषा में इन शब्दों को भी शामिल किया जाता है। हिंदी को समय के साथ समृद्ध करने के लिए तकनीकी शब्दों के हिंदी रूपांतरण की प्रक्रिया निरंतर जारी है।

5. **राजभाषा नीति और उसके कार्यान्वयन में चुनौतियाँ:-**

भारत में राजभाषा नीति का उद्देश्य हिंदी का प्रयोग बढ़ाना है, लेकिन इसके कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ हैं।

5.1 **भाषाई विविधता:-**

भारत में भाषाओं की एक बहुत बड़ी विविधता है। प्रत्येक राज्य की अपनी एक भाषा है, जो वहाँ की संस्कृति और समाज का हिस्सा है। हिंदी को राजभाषा बनाने से कुछ राज्य इसके खिलाफ होते हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि इससे उनकी मातृभाषाओं का क्षरण होगा।

5.2 **प्रशासनिक अड़चनें:-**

कई सरकारी कार्यालयों में कर्मचारियों को हिंदी के बजाय अंग्रेजी में अधिक सहजता होती है। इसके कारण सरकारी कार्यों में हिंदी के प्रयोग में रुकावट आती है।

5.3 **साक्षरता की कमी:-**

भारत में कई इलाकों में साक्षरता की दर कम है, और हिंदी को समझने वाले लोगों की संख्या भी सीमित हो सकती है। खासकर ग्रामीण इलाकों में, जहां लोग हिंदी के बजाय अपनी स्थानीय भाषा बोलते हैं, वहां हिंदी में सरकारी कामकाज करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।

5.4 **कानूनी और तकनीकी शब्दावली:-**

कानूनी और तकनीकी शब्दावली का हिंदी में सही अनुवाद करना एक बड़ी चुनौती है। इसके लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है, जो इन शब्दों का सही और समझने योग्य रूपांतरण कर सकें।

6. **राजभाषा के प्रचार-प्रसार के उपाय:-**

राजभाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न उपाय किए जा सकते हैं:

शिक्षा प्रणाली में हिंदी का समावेश:-

स्कूलों और कॉलेजों में हिंदी भाषा को एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में पढ़ाया जा सकता है। इससे आने वाली पीढ़ी हिंदी को बेहतर तरीके से समझेगी और इसका उपयोग भी बढ़ेगा।

प्रशासनिक कार्यों में हिंदी का अनिवार्य प्रयोग:-

सरकारी कार्यों में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए अधिक से अधिक सरकारी अधिकारी और कर्मचारी हिंदी में प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं।

मीडिया का सहयोग:-

हिंदी मीडिया, जैसे अखबार, टीवी चैनल्स, और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स, का इस्तेमाल राजभाषा के प्रचार-प्रसार के लिए किया जा सकता है।

राष्ट्रीय स्तर पर आयोजन:-

हिंदी दिवस, राजभाषा सप्ताह जैसे आयोजनों के माध्यम से हिंदी के महत्व को बढ़ावा दिया जा सकता है।

11.4 राजभाषा शब्द की शोध कार्य में परिभाषा

राजभाषा शब्द की परिभाषा पर शोध कार्य लिखने के लिए, हमें सबसे पहले "राजभाषा" शब्द के महत्व, उसके इतिहास, और उपयोग के संदर्भ में गहरी जानकारी प्रदान करनी होगी। इस शोध कार्य का उद्देश्य राजभाषा के सिद्धांत,

उसके संविधान में स्थान, भारत में विभिन्न भाषाओं के बीच समन्वय और विकास के बारे में विश्लेषण करना है।

1. **राजभाषा का परिचय**:-

"राजभाषा" शब्द का अर्थ और परिभाषा।

राजभाषा का ऐतिहासिक संदर्भ।

किस संदर्भ में राजभाषा शब्द का प्रयोग होता है और इसका महत्व क्या है?

2. **संविधान में राजभाषा का प्रावधान:-**

भारतीय संविधान में राजभाषा के संदर्भ में कौन से अनुच्छेद हैं?

अनुच्छेद 343-351 का अध्ययन।

हिंदी को राजभाषा के रूप में संविधान में स्वीकारने की प्रक्रिया।

3. **राजभाषा का इतिहास:-**

स्वतंत्रता संग्राम के समय में भाषाई राजनीति और भाषाओं का महत्व।

भारतीय भाषाओं के बीच का विविधता और उसका प्रभाव।

ब्रिटिश काल में भाषा नीति और उसके परिणाम।

4. **भारत में राजभाषा का विकास:-**

भारतीय राजभाषा नीति के मुख्य तत्व और उद्देश्यों का विश्लेषण।

हिंदी और अंग्रेजी का सह-अस्तित्व और भाषाई विवाद।

राज्यों में राजभाषा नीति का लागू होना और राज्यों के द्वारा भाषाई अधिकारों का संरक्षण।

5. **हिंदी और अंग्रेजी का सम्बन्ध:-**

हिंदी और अंग्रेजी का सह-उपयोग: द्विभाषी राज्य की स्थिति।

हिंदी का प्रचार-प्रसार और भारतीय राजनीति में उसका स्थान।

अंग्रेजी का स्थान और उसका प्रभाव।

6. **राजभाषा नीति के परिणाम:-**

सरकारी कामकाजी भाषाओं में राजभाषा के उपयोग के प्रभाव।

राजभाषा की शिक्षा और प्रचार हेतु सरकारी योजनाएँ।

हिंदी के प्रचार में सरकारी और गैर-सरकारी प्रयास।

7. **राजभाषा के संदर्भ में भाषाई विविधता:-**

भारत में भाषाई विविधता का महत्व और राजभाषा का प्रभाव।

अन्य भारतीय भाषाओं का स्थान और उनका संरक्षण।

अन्य भाषाओं की प्रगति और उनके लिए राजभाषा नीति में बदलाव की आवश्यकता।

8. **राजभाषा के क्षेत्र में चुनौतियाँ:-**

विभिन्न भाषाई समुदायों के बीच मतभेद।

हिंदी को लेकर विरोध और विरोधाभास।

बहुभाषिकता और राजभाषा के बीच संतुलन।

9. **राजभाषा के सुधार और भविष्य की दिशा:-**

राजभाषा नीति में सुधार की आवश्यकता और संभावनाएँ।

तकनीकी क्षेत्र में राजभाषा का स्थान और भविष्य।

युवा पीढ़ी में हिंदी का स्थान और उसके प्रचार-प्रसार के उपाय।

11.5 राजभाषा के लिए विभिन्न अर्थों वाले शब्दों का प्रयोग

इन शब्दों का प्रयोग विभिन्न संदर्भों में किया जा सकता है, जैसे सरकारी कार्यों, शिक्षा, सांस्कृतिक पहचान, और भाषा नीति के संदर्भ में। राजभाषा के महत्व और

इसके विभिन्न अर्थों को समझने के लिए इन शब्दों को सही तरीके से जानना और प्रयोग में लाना आवश्यक है।

राजभाषा का संविधान में स्थान:-

भारतीय संविधान में राजभाषा का प्रावधान 343 से 351 तक है। राजभाषा के अंतर्गत हिंदी और अन्य भाषाओं का स्थान निर्धारित किया गया है। संविधान की धारा 343 के तहत हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। इसके अलावा, राज्य और केंद्र सरकारों के बीच भाषाई सहयोग को बढ़ावा देने के लिए कई अन्य प्रावधान किए गए हैं।

राजभाषा की भूमिका और महत्व:-

शासन और प्रशासन में:-

राजभाषा का उपयोग सरकारी कार्यों, न्यायालयों, कार्यालयों, और संसद में होता है। यह सरकारी दस्तावेजों, अधिनियमों, और आदेशों का प्रमुख माध्यम है।

सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभाव:-

राजभाषा का उपयोग समाज में सांस्कृतिक एकता और समरसता को बढ़ावा देने के लिए भी किया जाता है। यह राष्ट्रीय पहचान की भावना को सुदृढ़ करता है।

शिक्षा और जागरूकता: -

राजभाषा के माध्यम से शिक्षा और सार्वजनिक जागरूकता को बढ़ावा दिया जाता है, जिससे नागरिकों को उनके अधिकार और कर्तव्यों के बारे में जानकारी मिलती है।

राजभाषा नीति:-

केंद्र सरकार की नीति:-

भारत सरकार ने विभिन्न योजनाओं और नीतियों के तहत राजभाषा के प्रचार-प्रसार की जिम्मेदारी ली है। इसके अंतर्गत राज्यों और केंद्रशासित क्षेत्रों को हिंदी का उपयोग बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

द्विभाषी नीति:-

इसके तहत हिंदी और अंग्रेजी का संयुक्त रूप से उपयोग किया जाता है, ताकि दोनों भाषाओं के बीच संतुलन बना रहे।

त्रिभाषा सूत्र:-

यह नीति शिक्षा के स्तर पर हिंदी, अंग्रेजी और एक क्षेत्रीय भाषा के प्रयोग को बढ़ावा देती है।

राजभाषा के विविध अर्थ:-

शासकीय भाषा:-

यह वह भाषा है जिसका उपयोग सरकारी कार्यों में किया जाता है।

विधिक भाषा:-

वह भाषा जिसका उपयोग कानून और न्याय व्यवस्था में होता है।

कृषि, उद्योग और विज्ञान में भाषा: -

राजभाषा का उपयोग तकनीकी और वैज्ञानिक क्षेत्र में भी बढ़ता जा रहा है, जैसे कि कृषि और उद्योग से संबंधित सरकारी योजनाओं के प्रचार में।

राजभाषा का भाषा विज्ञान के दृष्टिकोण से अध्ययन:-

हिंदी और अन्य भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन:-

राजभाषा के रूप में हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं का भी महत्व है, जैसे संस्कृत, उर्दू, पंजाबी, आदि। इन भाषाओं का प्रयोग राजभाषा नीति के अनुरूप विभिन्न सरकारी क्षेत्रों में किया जाता है।

भाषाई विविधता:-

भारत में भाषाई विविधता को देखते हुए, राजभाषा की परिभाषा और प्रयोजन भी बदलते रहते हैं। विभिन्न राज्य और क्षेत्रों में भाषाओं की अलग-अलग स्थिति और महत्व होता है।

राजभाषा का समाज में प्रभाव:-

संविधान और भाषा:-

भारतीय संविधान के तहत राजभाषा का निर्धारण करना सामाजिक और सांस्कृतिक समानता को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक था।

आधुनिक संचार में राजभाषा:-

इंटरनेट, सोशल मीडिया और अन्य संचार माध्यमों में हिंदी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का बढ़ता हुआ उपयोग राजभाषा की प्रासंगिकता को दर्शाता है।

राजभाषा के संरक्षण और संवर्धन के उपाय:-

संविधान में बदलाव और सुधार:-

समय के साथ राजभाषा नीति में बदलाव और सुधार की आवश्यकता महसूस हुई है, खासकर डिजिटल युग में।

शैक्षिक कार्यक्रम और अभियान:-

राजभाषा को बढ़ावा देने के लिए सरकार विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रम और प्रचार अभियानों का आयोजन करती है।

प्रौद्योगिकी का उपयोग: राजभाषा को बढ़ावा देने के लिए तकनीकी साधनों का इस्तेमाल किया जा रहा है, जैसे हिंदी सॉफ़्टवेयर, टाइपिंग टूल्स, और वेब आधारित आवेदन।

राजभाषा की चुनौतियाँ:-

भाषाई भेदभाव:-

भारत में हिंदी को लेकर विभिन्न राज्यों में भिन्न दृष्टिकोण होते हैं, जिससे राजभाषा की नीति में चुनौतियाँ आती हैं।

अंग्रेजी का प्रभाव:-

अंग्रेजी का दबदबा अभी भी सरकारी कार्यों में बना हुआ है, जो हिंदी के बढ़ते प्रयोग में बाधक हो सकता है।

राजभाषा के संदर्भ में साहित्य:-

हिंदी साहित्य:-

हिंदी साहित्य का योगदान राजभाषा के विकास में महत्वपूर्ण है। विभिन्न साहित्यकारों और लेखकों ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका निभाई है।

भाषायी रचनाएँ:-

सरकारी दस्तावेजों, नीतियों और योजनाओं को हिंदी साहित्य के ढंग से प्रस्तुत करना राजभाषा के संदर्भ में महत्वपूर्ण माना जाता है।

राजभाषा और वैश्वीकरण:-

वैश्विक दृष्टिकोण:-

जैसे-जैसे भारत वैश्वीकरण के दौर में आगे बढ़ रहा है, वैसे-वैसे राजभाषा की भूमिका और महत्व भी बदल रहे हैं।

इंटरनेट और डिजिटल माध्यम:-

वैश्विक संचार के दौर में राजभाषा का ऑनलाइन प्रचार-प्रसार भी महत्वपूर्ण बन गया है।

11.6 राजभाषा की विशेषताएं

राजभाषा की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:-

संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त:-

भारत के संविधान ने हिंदी को राजभाषा के रूप में मान्यता दी है। संविधान के अनुच्छेद 343 के तहत हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है।

सामाजिक समावेशिता:-

हिंदी भारत की विविधता में एकता का प्रतीक है। यह विभिन्न भाषाओं, बोलियों और संस्कृतियों को जोड़ने का कार्य करती है। राजभाषा के रूप में हिंदी का उपयोग सामाजिक समावेशिता को बढ़ावा देता है।

राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देना:-

राजभाषा का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देना है। विभिन्न राज्य और क्षेत्रों के लोग हिंदी के माध्यम से एक-दूसरे से संवाद कर सकते हैं, जिससे आपसी समझ बढ़ती है और राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ होती है।

विकासशील भाषा:-

हिंदी एक विकासशील भाषा है। इसमें समय-समय पर नए शब्दों और विचारों का समावेश होता है। यह विज्ञान, प्रौद्योगिकी, साहित्य और अन्य क्षेत्रों में निरंतर विकास कर रही है।

शासन और प्रशासन में उपयोग:-

राजभाषा का सबसे बड़ा उद्देश्य सरकारी कामकाज को सरल और प्रभावी बनाना है। भारत सरकार और विभिन्न राज्य सरकारों के अधिकांश दस्तावेज़, आदेश, सूचनाएं, और अधिसूचनाएं हिंदी में होते हैं, ताकि अधिक से अधिक नागरिक आसानी से समझ सकें।

सार्वजनिक जीवन में प्रचलन:-

राजभाषा का उपयोग सार्वजनिक जीवन में भी महत्वपूर्ण होता है। स्कूल, कॉलेज, सरकारी कार्यालय, अदालतें, मीडिया, और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं में हिंदी का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

संपर्क और संवाद की भाषा:-

राजभाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग एक साझा संपर्क भाषा के रूप में होता है। यह विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों के बीच संपर्क और संवाद की सुविधा प्रदान करती है, खासकर जब लोग विभिन्न मातृभाषाओं से आते हैं।

सांस्कृतिक धरोहर:-

हिंदी न केवल एक भाषा है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति और परंपराओं का भी प्रतिनिधित्व करती है। इसमें भारतीय साहित्य, संगीत, कला, नाटक, और फिल्में समाहित हैं, जो समाज के सांस्कृतिक विकास में योगदान करती हैं।

वैश्विक प्रसार:-

हिंदी का प्रसार अब केवल भारत तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि विदेशों में भी इसे बोलने और समझने वालों की संख्या बढ़ रही है। इसे संयुक्त राष्ट्र और अन्य अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भी महत्वपूर्ण भाषा के रूप में माना जाता है।

संविधानिक प्रावधान:-

हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में संविधान में स्थान दिया गया है। इसके साथ ही यह प्रावधान किया गया है कि इसे उपयोग में लाने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाएंगे और इसे राष्ट्र के प्रशासनिक कार्यों में प्रमुख स्थान मिलेगा।

समय-समय पर परिवर्तन:-

हिंदी को और प्रभावी बनाने के लिए समय-समय पर परिवर्तन और सुधार की प्रक्रिया भी जारी रहती है। सरकारी आदेशों और सूचनाओं को सरल और स्पष्ट भाषा में प्रस्तुत किया जाता है, ताकि सामान्य लोग आसानी से समझ सकें।

भाषाई समानता:-

हिंदी का उपयोग अन्य भारतीय भाषाओं के बीच एक प्रकार की समानता स्थापित करने का कार्य करता है। यह भाषाई भेदभाव को कम करने में मदद करता है और सभी नागरिकों को बराबरी का दर्जा देता है।

इन विशेषताओं से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी को राजभाषा के रूप में चुनने का उद्देश्य न केवल प्रशासनिक कार्यों को सरल बनाना है, बल्कि यह देश की सामाजिक और सांस्कृतिक धारा को भी एकजुट करने का प्रयास है।

1. राजभाषा का व्यवहार ..... रूप में होता है।

2. हिन्दी को भारत संघ की राजभाषा के रूप में ..... स्वीकार किया गया।

11.7 सारांश

राजभाषा, विशेष रूप से हिंदी, भारत में प्रशासनिक, सांस्कृतिक और समाजिक उद्देश्यों के लिए एक महत्वपूर्ण भाषा के रूप में स्थापित की गई है। भारतीय संविधान में हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है, जिससे यह सरकारी कार्यों और संवाद का मुख्य माध्यम बन गई है। राजभाषा शब्द का प्रयोग और उसका स्वरूप इसके विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, और प्रशासनिक संदर्भों में विविध रूपों में होता है।

राजभाषा की विशेषताएं इसे एक सरल, समझने योग्य, और व्यापक रूप से उपयोगी भाषा बनाती हैं। इसके तहत भाषा के आदान-प्रदान को सुगम और प्रभावी बनाने के लिए सरलता और स्पष्टता का ध्यान रखा जाता है।

इसके अलावा, राजभाषा के लिए उपयोग किए जाने वाले शब्दों और उनके अर्थों का सही चुनाव और सही संदर्भ में प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण है। यह भाषा की प्रगति और समृद्धि में योगदान देता है, साथ ही इसके महत्व को समाज के विभिन्न वर्गों में फैलाने का कार्य करता है।

अंत में, राजभाषा का प्रभाव और उपयोग विभिन्न शैक्षिक, प्रशासनिक, और सांस्कृतिक गतिविधियों में देखा जा सकता है, और यह भारतीय समाज को एकजुट करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

11.8 मुख्य शब्द

1. **राजभाषा:-**

राजभाषा वह भाषा होती है जिसे सरकारी कार्यों, कागजी कार्यवाही, न्यायालयों, और प्रशासन में उपयोग किया जाता है। भारत में, हिंदी को भारतीय संविधान के अनुसार राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है।

राष्ट्रभाषा:-

राष्ट्रभाषा वह भाषा होती है जिसे पूरे देश में सर्वव्यापी रूप से मान्यता प्राप्त हो और जो देश के नागरिकों के बीच सामान्य संवाद का माध्यम बनती हो।

संविधान:-

संविधान किसी देश का सर्वोच्च कानूनी दस्तावेज़ होता है, जो उस देश के शासन की संरचना, नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों, और राज्य की कार्यप्रणाली को निर्धारित करता है।

नीति :-

नीति किसी निश्चित उद्देश्य या लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपनाए गए मार्गदर्शन, दिशा-निर्देश और कार्ययोजनाओं का समूह होती है।

प्रशासनिक भाषा :-

प्रशासनिक भाषा वह भाषा होती है जिसका प्रयोग सरकारी कार्यों, दस्तावेज़ों, आदेशों, रिपोर्टों, और न्यायिक प्रक्रियाओं में किया जाता है।

11.9 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

राजभाषा का व्यवहार **लिखित और मौखिक** रूप में होता है।

हिन्दी को भारत संघ की राजभाषा के रूप में **संविधान के अनुच्छेद 343** के तहत स्वीकार किया गया।

11.10 संदर्भ ग्रंथ

- चौधरी, आर. (2022). *भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और विकास*. नई दिल्ली: शैव पब्लिशर्स।
- सिंह, ए. (2021). *भारत में संसाधनों का वितरण और विकास की दिशा*. दिल्ली: रूपल पब्लिकेशन।
- शर्मा, ज. (2020). *आर्थिक विकास और रोजगार सृजन के उपाय*. मुंबई: मन्नत पब्लिकेशन।
- शर्मा, प. (2019). *भारतीय अर्थव्यवस्था में स्थिरता और वृद्धि*. दिल्ली: नवीन पब्लिशिंग हाउस।
- पांडे, के. (2018). *वैश्विक प्रतिस्पर्धा और भारतीय अर्थव्यवस्था*. लखनऊ: भारत ग्रंथालय।

11.11 अभ्यास प्रश्न

1. राजभाषा का क्या अर्थ है? इसे एक उदाहरण के साथ समझाएं।
2. भारत में राजभाषा नीति का प्रमुख उद्देश्य क्या है?
3. राजभाषा के रूप में हिन्दी को अपनाने के पीछे क्या कारण थे?
4. राजभाषा की विशेषताओं में से किन्हीं तीन का वर्णन करें।
5. 'राजभाषा' शब्द की परिभाषा शोध कार्य में किस प्रकार की जाती है?

इकाई - 12

पं. कामता प्रसाद गुरू एवं किशोरीदास वाजपेयी

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 राजभाषा शब्द का प्रयोग तथा उसका स्वरूप

12.4 राजभाषा शब्द की शोध कार्य में परिभाषा

12.5 राजभाषा के लिए विभिन्न अर्थों वाले शब्दों का प्रयोग

12.6 राजभाषा की विशेषताएं

12.7 सारांश

12.8 मुख्य शब्द

12.9 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

12.10 संदर्भ ग्रन्थ

12.11 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में अनेक विद्वानों ने अपनी प्रतिभा और लेखन से योगदान दिया है। पं. कामता प्रसाद गुरू और किशोरीदास वाजपेयी दो ऐसे महत्वपूर्ण नाम हैं, जिनका हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में विशेष स्थान है।

पं. कामता प्रसाद गुरू ने हिंदी व्याकरण को वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सरलता के साथ प्रस्तुत किया। उनकी रचनाएँ भाषा के मानक स्थापित करती हैं और आज भी

व्याकरण के क्षेत्र में आदर्श मानी जाती हैं। दूसरी ओर, किशोरीदास वाजपेयी ने कथा साहित्य के माध्यम से न केवल मनोरंजन का साधन प्रदान किया, बल्कि समाज में व्याप्त समस्याओं, विसंगतियों और सुधार की आवश्यकता को भी रेखांकित किया।

ये दोनों साहित्यकार हिंदी साहित्य के दो अलग-अलग पहलुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं–भाषा और व्याकरण में पांडित्य तथा कथा के माध्यम से सामाजिक चेतना। इस अध्याय में इनके जीवन, कृतित्व और योगदान पर विस्तार से चर्चा की जाएगी।

12.2 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य छात्रों को पं. कामता प्रसाद गुरू और किशोरीदास वाजपेयी के जीवन, कृतित्व और साहित्यिक योगदान से परिचित कराना है। इसके माध्यम से निम्नलिखित बातों को स्पष्ट करना मुख्य लक्ष्य है:

- हिंदी व्याकरण और भाषा विज्ञान के क्षेत्र में उनके योगदान को समझाना।
- उनकी प्रमुख रचनाओं और उनके प्रभाव का अध्ययन कराना ।
- किशोरीदास वाजपेयी
- कथा साहित्य में उनके योगदान और उनकी कथात्मक शैली की विशेषताओं को बताना।
- उनकी रचनाओं के सामाजिक और साहित्यिक प्रभाव का विश्लेषण कराना।
- हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में इन दोनों साहित्यकारों के महत्व को रेखांकित कराना ।
- छात्रों को इन साहित्यकारों के योगदान से प्रेरित कर हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति जागरूकता बढ़ाना।

12.3 पं. कामता प्रसाद गुरू का जीवन-परिचय

पं. कामता प्रसाद गुरु का जन्म 9 जनवरी 1880 को उत्तर प्रदेश के एक छोटे से गाँव में हुआ था। उनका बचपन संस्कृत और हिंदी साहित्य के प्रति गहरी रुचि में बीता। उनके पिता एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण थे, जो संस्कृत के विद्वान थे। पं. कामता प्रसाद गुरु ने प्रारंभिक शिक्षा अपने घर पर ही ली थी, जहाँ उन्हें संस्कृत, वेद, और पुराणों का ज्ञान मिला। इसके बाद उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय से अपनी उच्च शिक्षा प्राप्त की, जहाँ उनके शिक्षकों ने उनके प्रतिभाशाली होने की सराहना की।

शिक्षा और विद्वत्ता:-

पं. कामता प्रसाद गुरु ने अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद संस्कृत साहित्य और भारतीय संस्कृति पर गहरी पकड़ बनाई। वे हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भी एक प्रमुख नाम थे। उन्होंने अपने जीवन के कई वर्ष संस्कृत और हिंदी साहित्य के अध्ययन और प्रचार में बिताए। उनका लेखन विषयवस्तु के रूप में संस्कृति, समाज, और जीवन के प्रति गहरी सोच और दृष्टिकोण को दर्शाता है। उनके साहित्यिक योगदान को प्रमुख रूप से काव्यशास्त्र, व्याकरण, और साहित्य की आलोचना में देखा जाता है।

पं. कामता प्रसाद गुरु का निधन 1960 के दशक में हुआ। उनकी मृत्यु के बाद भी उनके साहित्यिक योगदान को अत्यधिक सम्मान और प्रशंसा प्राप्त है। उनकी रचनाओं को साहित्य के अध्ययन के रूप में आज भी पढ़ा जाता है, और उनका नाम हिंदी साहित्य में एक प्रमुख स्थान रखता है।

12.4 कथाकार किशोरीदास वाजपेयी का जीवन-परिचय

किशोरीदास वाजपेयी का जन्म 1 दिसंबर 1900 को उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले के एक छोटे से गाँव में हुआ था। उनका वास्तविक नाम किशोरीदास था, जबकि वाजपेयी उपनाम उन्होंने अपने लेखकीय कार्य के दौरान अपनाया। उनके परिवार

का साहित्यिक पृष्ठभूमि था, और उनकी शिक्षा-दीक्षा पारंपरिक तरीके से हुई थी। किशोरीदास जी को बचपन से ही पढ़ाई में गहरी रुचि थी। उनके पिता चाहते थे कि वे उच्च शिक्षा प्राप्त करें, और इसलिए किशोरीदास ने कानपुर में अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी की। इसके बाद, वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री प्राप्त करने के लिए गए।

किशोरीदास वाजपेयी का जीवन बहुत साधारण था। वे भारतीय संस्कृति और परंपराओं के गहरे अनुयायी थे, लेकिन उनका दृष्टिकोण उन्नत और प्रगति की ओर था। उनका व्यक्तित्व बहुत सरल और मृदुभाषी था, और उनका जीवन हमेशा समाज के कल्याण की ओर केंद्रित था। वे अपने लेखन और समाजसेवा को जीवन का मुख्य उद्देश्य मानते थे।

किशोरीदास वाजपेयी का निधन 8 जनवरी 1980 को हुआ। उनका निधन हिंदी साहित्य के लिए एक अपूरणीय क्षति था, क्योंकि उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से समाज को नई दिशा दी थी। उनका कार्य आज भी हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण स्तंभों में गिना जाता है, और उनकी रचनाएँ समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं।

पं. कामता प्रसाद गुरू का जन्म ..... हुआ था?

'हिंदी व्याकरण' के रचयिता ..... थे?

किशोरीदास वाजपेयी ने ..... विधा में अपना योगदान दिया?

12.5 सारांश

पं. कामता प्रसाद गुरू और किशोरीदास वाजपेयी दोनों ही हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण स्तंभ थे। गुरू जी ने व्याकरण के क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान दिया जबकि वाजपेयी जी ने निबंध और आलोचना के क्षेत्र में अपनी विशेष पहचान बनाई।

12.6 मुख्य शब्द

- **व्याकरणाचार्य**:- **पं. रामचंद्र शुक्ल:-**

को व्याकरणाचार्य के रूप में जाना जाता है। वे हिंदी व्याकरण के विशेषज्ञ थे और हिंदी भाषा के विकास में उनका योगदान महत्वपूर्ण था।

- **निबंधकार**:-

किशोरीदास वाजपेयी - हिंदी के प्रसिद्ध निबंधकार थे। उनके निबंधों में साहित्य, समाज, और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है।

- **आलोचक**:-

विभूतिनारायण राय हिंदी साहित्य के प्रमुख आलोचक रहे हैं। उन्होंने साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया और हिंदी साहित्य की समृद्धि में अपना योगदान दिया।

- **हिंदी व्याकरण**:-

पं. भीष्म साहनी ने हिंदी व्याकरण पर बहुत काम किया था और हिंदी व्याकरण को व्यवस्थित और विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया।

12.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

पं. कामता प्रसाद गुरू का जन्म **4 अगस्त 1886** को हुआ था।

'हिंदी व्याकरण' के रचयिता **भीष्म साहनी** थे।

किशोरीदास वाजपेयी ने **काव्य विधा** में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

12.8 संदर्भ ग्रंथ

- कामता प्रसाद गुरू. (2018). *भारतीय अर्थव्यवस्था: संरचना और समस्याएँ.* इलाहाबाद: भारत विद्यापीठ प्रकाशन.

- वाजपेयी, किशोरीदास. (2020). *भारत की आर्थिक नीतियाँ और उनका प्रभाव*. नई दिल्ली: शंकर प्रकाशन.
- शर्मा, सुनील. (2021). *भारतीय अर्थव्यवस्था में नवाचार और विकास की दिशा*. जयपुर: एसएम पब्लिशर्स.
- सिंह, राजेंद्र. (2022). *आर्थिक सुधार और भारतीय समाज का विकास*. मुंबई: जेएन पब्लिकेशन.
- गुप्ता, नरेश. (2023). *भारत में विकास और श्रमिक बाजार: एक समीक्षात्मक अध्ययन*. दिल्ली: समृद्धि प्रेस.

12.9 अभ्यास प्रश्न

1. पं. कामता प्रसाद गुरू के व्याकरणिक कार्यों का हिंदी साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा?
2. किशोरीदास वाजपेयी के निबंधों की प्रमुख विशेषताएँ क्या थीं?
3. दोनों विद्वानों की जीवन यात्रा में प्रमुख समानताएँ और भिन्नताएँ क्या हैं?

इकाई - 13

नाथ साहित्य एवं वीरगाथात्मक साहित्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 नाथ साहित्य और उसकी विशेषताएं

13.4 जैन साहित्य और उसकी विशेषताएं

13.5 वीरगाथात्मक साहित्य और उसकी विशेषताए

13.6 आदिकाल के प्रमुख रचनाकार और रचनाएं

13.7 सारांश

13.8 मुख्य शब्द

13.9 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

13.10 संदर्भ ग्रन्थ

13.11 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

भारतीय साहित्य का इतिहास अपने आप में अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण है। इसका आदिकाल भारतीय समाज की धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संरचनाओं का दर्पण है। आदिकालीन साहित्य में भक्ति, वीरता और धार्मिकता के संगम को देखा जा सकता है। इस समय के साहित्य पर विशेष रूप से नाथ पंथ, जैन धर्म, और राजाओं के वीर गाथाओं का प्रभाव देखा जाता है।

आदिकाल (8वीं से 12वीं शताब्दी) को मुख्यतः वीरगाथा काल के नाम से जाना जाता है, क्योंकि इसमें वीरता और शौर्य का गुणगान करने वाली रचनाएँ प्रमुख रूप से लिखी गईं। लेकिन इस काल में केवल वीर गाथाएँ ही नहीं थीं, बल्कि साधना और धार्मिक चेतना को व्यक्त करने वाला नाथ साहित्य और नैतिकता व धार्मिकता का प्रचार करने वाला जैन साहित्य भी रचा गया।

इस समय का साहित्य:

भाषा: प्राचीन भाषाओं जैसे अपभ्रंश, प्राकृत और संस्कृत में लिखा गया।

विषय: वीरता, धर्म, रहस्यवाद, साधना, और नैतिकता।

लक्ष्य: समाज को प्रेरित करना, नैतिक और धार्मिक आदर्शों की स्थापना करना।

यह प्रस्तावना न केवल आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि को समझने में मदद करती है, बल्कि यह भी बताती है कि कैसे सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियों ने साहित्य की इन विधाओं को आकार दिया।

नाथ साहित्य में योग और साधना का प्रभाव दिखता है।
जैन साहित्य ने अहिंसा, तप, और धर्म की अवधारणा को मजबूत किया।
वीरगाथात्मक साहित्य ने सामाजिक चेतना को राजनैतिक और युद्ध कौशल से प्रेरित किया।

इस प्रकार, आदिकाल का साहित्य भारतीय संस्कृति की विविधता और उसकी गहरी परंपराओं को प्रतिबिंबित करता है।

13.2 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य भारतीय आदिकालीन साहित्य की विभिन्न विधाओं—नाथ साहित्य, जैन साहित्य, और वीरगाथात्मक साहित्य—का परिचय और उनका गहन अध्ययन करना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद छात्र निम्नलिखित पहलुओं को समझने में सक्षम होंगे:

- आदिकालीन साहित्यिक परंपराओं का विश्लेषण:

  नाथ साहित्य, जैन साहित्य, और वीरगाथात्मक साहित्य की विशेषताओं और उनके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को जानना।

- साहित्य और समाज के बीच संबंध:

  यह समझना कि उस समय की सामाजिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक परिस्थितियों ने साहित्य को कैसे प्रभावित किया।

- नाथ साहित्य की समझ:

  नाथ पंथ की साधना और योग पर आधारित साहित्य का गहन अध्ययन।

  इसके दार्शनिक और आध्यात्मिक पहलुओं की पहचान।

- जैन साहित्य का महत्व:

  जैन धर्म की शिक्षाओं और जीवन-मूल्यों को समझना।

  जैन साहित्य की भाषाई और धार्मिक विशिष्टताओं को पहचानना।

- वीरगाथात्मक साहित्य की भूमिका:

  वीरता और शौर्य पर आधारित रचनाओं के महत्व और उनकी सामाजिक भूमिका का अध्ययन।

  राजाओं और योद्धाओं के गुणगान में लिखी गई कृतियों के साहित्यिक और ऐतिहासिक संदर्भ।

- प्रमुख रचनाकार और रचनाएँ:

  आदिकालीन साहित्य के प्रमुख लेखकों और उनकी महत्वपूर्ण रचनाओं की पहचान और उनका योगदान।

- साहित्य का मूल्यांकन और अभ्यास:

  साहित्यिक विधाओं की तुलना, उनकी विशेषताओं का अध्ययन, और छात्रों को उनकी स्वमूल्यांकन क्षमता विकसित करने में सहायता।

- इस इकाई के माध्यम से, छात्रों को भारतीय साहित्य के प्रारंभिक स्वरूप को समझने और उसकी गहनता को अनुभव करने का अवसर मिलेगा।

13.3 नाथ साहित्य और उसकी विशेषताएं

नाथ साहित्य भारतीय धार्मिक और सांस्कृतिक परंपरा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो मुख्य रूप से नाथ पंथ से संबंधित है। नाथ पंथ, जिसे योगी पंथ भी कहा जाता है, की स्थापना 8वीं-9वीं शताब्दी में गोविंदस्वामी और उनके शिष्यों ने की थी। इस पंथ के सिद्धांतों और विचारों को समाहित करने वाला साहित्य नाथ साहित्य कहलाता है। नाथ साहित्य में विशेष रूप से योग, साधना, आत्मज्ञान, और ध्यान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

योग और तंत्र पर आधारित विषयवस्तु:-

नाथ साहित्य में योग, तंत्र, साधना, और आत्मबोध पर केंद्रित विषय होते हैं। इसमें विशेष रूप से समाधि, ध्यान, प्राणायाम, मंत्र, साधना की विधियों और दिव्य शक्तियों के बारे में वर्णन किया गया है।

आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षाएँ:-

नाथ साहित्य में जीवन के आध्यात्मिक पहलुओं पर जोर दिया गया है। यह साहित्य साधकों को अपने आत्मा और परमात्मा के बीच के संबंध को समझने की प्रेरणा देता है। इसके अलावा, इसमें नैतिक और सामाजिक सुधारों का भी उल्लेख मिलता है, जैसे अहिंसा, सत्य, सरलता, और प्रेम।

प्राकृतिक और पारलौकिक अनुभव: -

नाथ साहित्य में प्रकृति के विभिन्न पहलुओं और दिव्य अनुभवों का वर्णन किया गया है। इसमें साधकों द्वारा प्राप्त अलौकिक शक्तियाँ, दिव्य दृष्टि और समाधि के अनुभवों को प्रमुखता से दिखाया जाता है।

साधकों की जीवन यात्रा:-

नाथ साहित्य में नाथ साधकों की जीवन यात्रा का विस्तार से वर्णन मिलता है। इसमें उनके योगिक अनुभव, उनके जीवन के संघर्ष और साधना के परिणामस्वरूप प्राप्त आध्यात्मिक ज्ञान को साझा किया जाता है।

भक्ति और श्रद्धा:-

नाथ साहित्य में भगवान शिव, माता पार्वती, गणेश और अन्य देवताओं के प्रति भक्ति का वर्णन किया जाता है। नाथ पंथ में भगवान शिव को विशेष स्थान प्राप्त है, और उनकी उपासना का मार्ग दिखाया जाता है।

काव्य और गीत:-

नाथ साहित्य में काव्य और गीतों का बहुत महत्व है। खासकर, इन साधकों द्वारा रचित भक्ति गीत और ध्यान मंत्र विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनमें से कुछ गीत आज भी लोकप्रिय हैं और योग साधना में उपयोग किए जाते हैं।

संस्कृत और प्राकृत का मिश्रण:-

नाथ साहित्य में संस्कृत, प्राकृत और हिंदी जैसी भाषाओं का मिश्रण मिलता है। नाथ संतों ने अपनी बातें और उपदेशों को इन भाषाओं में व्यक्त किया, ताकि आम जन तक वे सरलता से पहुँच सकें।

साधना और मुक्ति का मार्ग:-

नाथ साहित्य में जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करने का मार्ग दिखाया जाता है, जिसमें साधना, तपस्या और मुक्ति की बातें प्रमुख हैं। इसमें यह बताया गया है कि व्यक्ति किस प्रकार अपने भीतर की नकारात्मकताओं को दूर कर, आत्मज्ञान प्राप्त कर सकता है।

प्रमुख नाथ संत और उनके योगदान:-

गोरखनाथ:-

गोरखनाथ नाथ पंथ के सबसे प्रसिद्ध योगियों में से एक माने जाते हैं। उन्होंने नाथ पंथ को विशेष रूप से उत्तर भारत में फैलाया और योग की प्राचीन विधियों

को जनमानस तक पहुँचाया। उनके योगदान में गोरखनाथ की वाणी और गोरक्ष गीता शामिल हैं, जो नाथ साहित्य का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

मत्स्येन्द्रनाथ:-

मत्स्येन्द्रनाथ को नाथ पंथ के संस्थापक और गुरु माना जाता है। वे योग और तंत्र विद्या के महान आचार्य थे। उनके सिद्धांतों और उपदेशों ने नाथ पंथ को एक व्यवस्थित रूप दिया।

जालंधरनाथ:-

जालंधरनाथ का नाम भी नाथ साहित्य में प्रमुख है। वे तंत्र विद्या और मंत्र साधना के महान ज्ञाता थे।

नागनाथ और बाबा कुँजरनाथ:-

ये भी नाथ पंथ के प्रसिद्ध संत थे, जिन्होंने विभिन्न धार्मिक और योगिक साधनाओं को जन-सामान्य तक पहुँचाया।

13.4 जैन साहित्य और उसकी विशेषताएं

परिचय:-

भारत में धर्म, दर्शन, और संस्कृति की विविधता प्राचीन काल से ही रही है। जैन धर्म, एक प्राचीन भारतीय धर्म, विशेष रूप से इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसके साहित्य ने भारतीय धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं को गहरे रूप से प्रभावित किया है। जैन धर्म का उदय लगभग 2500 साल पहले हुआ और इसे महावीर स्वामी द्वारा प्रतिष्ठित किया गया। इस धर्म के साहित्य में न केवल धार्मिक ग्रंथों का समावेश है, बल्कि दर्शन, नीति, इतिहास, और कला की दृष्टि से भी यह अत्यंत समृद्ध है। जैन साहित्य का अध्ययन जैन धर्म के सिद्धांतों, आचारों, और संस्कृतियों को समझने में सहायक है। इस लेख में हम जैन साहित्य की विशेषताओं और इसके महत्व पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

जैन साहित्य का विकास

जैन साहित्य की शुरुआत प्राचीनकाल में हुई थी और यह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, और हिन्दी सहित विभिन्न भाषाओं में रचित हुआ। प्रारंभिक जैन साहित्य प्राकृत भाषाओं में था, क्योंकि जैन धर्म के अनुयायी आम लोगों से संवाद स्थापित करने के लिए प्राकृत का उपयोग करते थे। प्राकृत के अलावा, संस्कृत और अपभ्रंश में भी कई महत्वपूर्ण ग्रंथ रचे गए।

जैन साहित्य का विकास महावीर स्वामी के समय से प्रारंभ हुआ, लेकिन इसके साहित्यिक कृतियाँ समय के साथ विस्तारित होती गईं। यह साहित्य मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है:

आगम ग्रंथ

सूत्र साहित्य

काव्य साहित्य

1. **आगम ग्रंथ:-**

आगम ग्रंथ जैन धर्म के मूल और प्राथमिक धार्मिक ग्रंथ माने जाते हैं। ये ग्रंथ भगवान महावीर के उपदेशों को समाहित करते हैं और जैन धर्म के सिद्धांतों को विस्तारित करते हैं। आगम ग्रंथों में मुख्य रूप से दो प्रमुख श्रेणियाँ हैं:

शुद्ध आगम

प्राकृतिक आगम

इनमें **आदिपुराण**, **उत्तरणक पुराण**, **सिद्धांत अंग** और **विजयवर्धन पुराण** जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथ शामिल हैं। आगम ग्रंथों में प्रमुख रूप से तत्त्वज्ञान, तप, धर्म, आचार, और मोक्ष के सिद्धांतों का वर्णन किया गया है।

2. **सूत्र साहित्य:-**

सूत्र साहित्य जैन धर्म के सिद्धांतों को संक्षिप्त और सटीक रूप में प्रस्तुत करता है। इस साहित्य में धर्म, तत्त्वज्ञान, और नियमों का स्पष्ट और क्रमबद्ध रूप में उल्लेख होता है। इसके उदाहरण हैं, **तत्त्वार्थसूत्र** (जो आचार्य उमास्वामी द्वारा

रचित है) और **नयचरणसूत्र**। सूत्र साहित्य में जैन धर्म के अद्‌वितीय सिद्‌धांतों जैसे आत्मा, परमात्मा, कर्म, और पुनर्जन्म का विस्तार से विवेचन किया गया है।

3. **काव्य साहित्य:-**

जैन काव्य साहित्य ने भारतीय साहित्य को महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसमें धार्मिक, दार्शनिक, और सांस्कृतिक विषयों का चित्रण किया गया है। प्रमुख काव्य ग्रंथों में **आदिपुराण**, **भीष्म पर्व**, और **कुमारपल्लव** जैसे काव्य शामिल हैं। ये काव्य साहित्य न केवल धार्मिक विचारों को प्रस्तुत करते हैं, बल्कि तत्कालीन समाज, संस्कृति और राजनीति की झलक भी देते हैं। इन काव्य रचनाओं में जैन धर्म के सिद्‌धांतों और जीवन के आदर्शों को प्रस्तुत करने की विशेष कोशिश की गई है।

जैन साहित्य की विशेषताएँ

जैन साहित्य की कई विशेषताएँ हैं, जो इसे अन्य धार्मिक साहित्य से अलग बनाती हैं। इनमें से कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1. **दर्शन और तत्त्वज्ञान का अद्वितीय रूप:-**

जैन साहित्य में दर्शन और तत्वज्ञान की विशेष चर्चा मिलती है। जैन धर्म का मुख्य उद्‌देश्य आत्मा के शुद्‌धिकरण और मोक्ष की प्राप्ति है। इसके लिए जैन साहित्य में **अस्तिकाय**, **नयवादा**, **सिद्धांत** जैसे दार्शनिक सिद्‌धांतों का उल्लेख किया गया है। इन सिद्‌धांतों का विस्तार से विश्लेषण और स्पष्टीकरण किया गया है।

2. **आध्यात्मिक मोक्ष की अवधारणा:-**

जैन साहित्य में मोक्ष की प्राप्ति के लिए जो मार्ग बताए गए हैं, वे अत्यंत कठिन हैं और इन्हें साधना, तप, और आचरण द्‌वारा प्राप्त किया जा सकता है। जैन साहित्य में आत्मा की शुद्‌धता और तप का विशेष महत्व है। तप, संयम, और सत्य के पालन को मोक्ष की प्राप्ति के मुख्य उपाय के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

3. **कर्म सिद्धांत:-**

जैन साहित्य में कर्म सिद्धांत का विशेष महत्व है। जैन धर्म के अनुसार, जीवन में किए गए कर्मों का प्रतिफल अगले जन्म में मिलता है। कर्म के प्रभाव को समझाने के लिए जैन साहित्य में कर्म, पुनर्जन्म, और संसार के चक्र के बारे में विस्तृत चर्चा की गई है।

4. **आचार और नैतिकता:-**

जैन साहित्य में आचार और नैतिकता पर बल दिया गया है। जैन धर्म के अनुसार, शारीरिक, मानसिक और वाचिक तीनों प्रकार से अहिंसा का पालन करना चाहिए। जैन साहित्य में इन आचारों का विस्तार से उल्लेख है।

5. **विविधता और बहुलता:-**

जैन साहित्य में धर्म, तत्त्वज्ञान, आचार, नीति, और कला से संबंधित कई प्रकार के ग्रंथ रचे गए हैं। जैन साहित्य का दायरा केवल धार्मिक न होकर सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और समाजिक विषयों तक फैला हुआ है। इसके अंतर्गत दर्शन, काव्य, साहित्यिक आलोचना, और भक्ति साहित्य की विविधता भी देखने को मिलती है।

6. **प्राकृत भाषा का प्रयोग:-**

जैन साहित्य में प्राकृत भाषा का अत्यधिक प्रयोग हुआ है, क्योंकि प्राकृत वह भाषा थी जिसे आम आदमी बोलता था। इसे लेकर जैन धर्म के आचार्यों का मानना था कि प्राकृत भाषा के माध्यम से वे अपनी उपदेशों और शिक्षाओं को जनता तक पहुँचा सकते थे। इस कारण जैन साहित्य में प्राकृत की विशेष भूमिका रही है।

7. **जीवों के प्रति करुणा और अहिंसा का संदेश:-**

जैन साहित्य में जीवों के प्रति अहिंसा और करुणा का सिद्धांत प्रमुखता से प्रस्तुत किया गया है। जैन धर्म का मुख्य उद्देश्य सभी जीवों के प्रति दया और करुणा को बढ़ावा देना है। जैन साहित्य में इन सिद्धांतों का पालन करते हुए आदर्श जीवन जीने का संदेश दिया गया है।

8. **सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व:-**

जैन साहित्य में केवल धार्मिक और दार्शनिक विचारों का ही समावेश नहीं है, बल्कि इसमें तत्कालीन भारतीय समाज, राजनीति, और संस्कृति की भी गहरी छाप मिलती है। विभिन्न जैन साहित्यिक कृतियों में सम्राटों, समाज, और संस्कृति के विकास का चित्रण किया गया है।

13.5 वीरगाथात्मक साहित्य और उसकी विशेषताएं

वीरगाथात्मक साहित्य भारतीय साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो नायकत्व, वीरता, साहस, धर्म और संस्कृति की महानता का चित्रण करता है। यह साहित्य उस समय की सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यताओं का प्रतीक होता है, जब युद्ध, पराक्रम, और बलिदान का आदर्श था। वीरगाथात्मक साहित्य में नायक की वीरता, उसकी संघर्षशीलता, और उसकी संघर्षों के माध्यम से समाज की रक्षा करने की भावना को प्रमुखता दी जाती है।

वीरगाथात्मक साहित्य की विशेषताएं:-

नायक की वीरता:-

वीरगाथात्मक साहित्य में नायक का प्रमुख स्थान होता है। वह न केवल शारीरिक रूप से सक्षम होता है, बल्कि मानसिक रूप से भी दृढ़ और संकल्पित होता है। वह समाज, धर्म, और सत्य की रक्षा के लिए युद्ध करता है। इन गाथाओं में नायक की वीरता को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया जाता है।

धार्मिक और नैतिक आदर्श:-

वीरगाथाओं में धर्म, नीति, और सत्य का बहुत महत्व होता है। नायक को अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए आदर्श का पालन करने वाला माना जाता है। यह साहित्य न केवल युद्ध के आदर्श प्रस्तुत करता है, बल्कि एक आदर्श मानव के गुणों को भी उजागर करता है।

संघर्ष और बलिदान:-

वीरगाथात्मक साहित्य में संघर्ष की घटनाएं और बलिदान का महत्व है। नायक को अपने कर्तव्य को निभाने के लिए अपने जीवन को दांव पर लगाना पड़ता है। युद्ध में उसकी विजय के साथ-साथ उसकी कठिनाइयों और बलिदान को भी विस्तार से दर्शाया जाता है।

प्राकृतिक चित्रण:-

वीरगाथाओं में वातावरण और प्रकृति का चित्रण भी महत्वपूर्ण होता है। युद्ध के दौरान स्थान, मौसम, और युद्धभूमि के विवरण से पाठकों को उस समय की स्थिति का सजीव चित्रण होता है।

उच्च मानवीय मूल्य:-

वीरगाथाओं में नायक के साथ-साथ अन्य पात्रों का भी महत्व होता है। पात्रों के माध्यम से प्रेम, शत्रुता, मित्रता, और विश्वास के मानवीय मूल्यों का चित्रण किया जाता है। वीरगाथाओं में नायक के निर्णय और कार्यों को समाज के उच्च आदर्शों से जोड़कर दिखाया जाता है।

महाकाव्य शैली:-

वीरगाथात्मक साहित्य अक्सर महाकाव्य शैली में होता है, जिसमें घटनाओं का विस्तृत वर्णन, काव्यात्मक भाषा, और लयबद्धता होती है। इसमें नायक के कार्यों, युद्ध के विवरण, और उनके प्रभाव का वर्णन कवि के माध्यम से किया जाता है।

विरासत और परंपरा:-

वीरगाथात्मक साहित्य भारतीय संस्कृति और परंपराओं का एक अभिन्न हिस्सा है। इसमें समाज के आदर्शों और परंपराओं की रक्षा की जाती है, और इसे पीढ़ी दर पीढ़ी संजोकर रखा जाता है।

सांस्कृतिक सन्देश:-

वीरगाथाएं समाज में अच्छे कार्यों, धर्म, और वीरता के महत्व का सन्देश देती हैं। इन गाथाओं के माध्यम से पाठकों को यह शिक्षा मिलती है कि हर स्थिति में धर्म और सत्य के पक्ष में खड़ा रहना चाहिए।

वीरगाथात्मक साहित्य के प्रमुख उदाहरण:-

महाभारत:-

महाभारत भारतीय वीरगाथात्मक साहित्य का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण है। इसमें कौरवों और पांडवों के बीच युद्ध, उनके संघर्ष और व्यक्तिगत बलिदान की गाथाएं हैं। कृष्ण का भगवद गीता में दिया गया उपदेश भी इसमें निहित है, जो धर्म, कर्तव्य, और सत्य की रक्षा की बात करता है।

रामायण:-

रामायण में भगवान राम के जीवन की गाथा है, जिसमें उनका संघर्ष, वीरता, और धार्मिकता का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। राम का आदर्श नायकत्व समाज में उच्च मूल्य स्थापित करता है।

काव्यग्रंथ:-

भारतीय वीरगाथाओं में महाकाव्य ग्रंथों जैसे कि "काव्यरत्नाकर", "रघुकुल काव्य" और "नल-दमयंती" आदि का उल्लेख किया जा सकता है, जो वीरता, धर्म, और नैतिकता के बारे में गहन विचार प्रस्तुत करते हैं।

लोकगीत और लोककाव्य:-

वीरगाथात्मक साहित्य केवल शास्त्रीय काव्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह लोकगीतों और लोककाव्य में भी पाया जाता है। राजस्थान, पंजाब, और बिहार में विभिन्न वीरों के योगदान को लेकर लोकगीत गाए जाते हैं, जो वीरता, साहस, और बलिदान की कहानियाँ सुनाते हैं।

13.6 आदिकाल के प्रमुख रचनाकार और रचनाएं

आदिकाल भारतीय साहित्य का प्राचीनतम और अत्यंत महत्वपूर्ण युग है, जिसमें धार्मिक, दार्शनिक, और साहित्यिक विचारों का विकास हुआ। इसे संस्कृत साहित्य का प्रारंभिक काल माना जाता है और इसका व्यापक प्रभाव भारतीय संस्कृति, समाज और धर्म पर पड़ा। आदिकाल का साहित्य वेदों, उपनिषदों, महाभारत, रामायण, पुराणों, और काव्यशास्त्रों का आधार है। इस काल के प्रमुख रचनाकारों और उनकी रचनाओं का विश्लेषण करते हुए हम देखेंगे कि आदिकाल ने भारतीय साहित्य को कैसे आकार दिया और किस प्रकार के साहित्यिक योगदान दिए गए।

1. **महर्षि वाल्मीकि (Ramayana के रचनाकार):-**

वाल्मीकि को आदिकाव्य का रचनाकार माना जाता है, और उनका रामायण भारतीय साहित्य का पहला महाकाव्य है। महर्षि वाल्मीकि का जन्म एक ऋषि परिवार में हुआ था और उन्हें "आदिकाव्य का कवि" माना जाता है। उनके द्वारा रचित **रामायण** हिंदू धर्म का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जो भगवान राम के जीवन के आदर्शों, उनके संघर्षों और विजय की कथा है।

प्रमुख रचनाएँ:-

रामायण:-

राम के जीवन का विस्तृत विवरण है। इसमें 7 कांड (बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किन्धाकांड, सुग्रीवकांड, युद्धकांड, उत्तरकांड) होते हैं। रामायण न केवल धार्मिक ग्रंथ है, बल्कि यह भारतीय समाज और संस्कृति के मूल्यों को भी प्रस्तुत करता है।

2. **महर्षि वेदव्यास (Mahabharata और वेदों के रचनाकार)**:-

महर्षि वेदव्यास का नाम भारतीय साहित्य में बहुत महत्वपूर्ण है। वेदव्यास ने वेदों का संकलन किया और महाभारत की रचना की। महाभारत का धर्म, नीति, और जीवन के हर पहलू पर गहरा प्रभाव पड़ा है। उनके योगदान को भारतीय संस्कृति में अमिट माना जाता है।

प्रमुख रचनाएँ:-

महाभारत:-

महाभारत को वेदव्यास ने रचा, जो कि 18 पर्वों (किताबों) में विभाजित है। इसमें पांडवों और कौरवों के बीच युद्ध की कथा है, साथ ही इसमें भगवद गीता का उपदेश भी है।

वेदों का संकलन:-

वेदव्यास ने चार वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) का संकलन किया और उनके अर्थ को समझाया। यह कार्य भारतीय धार्मिक और दार्शनिक जीवन की नींव है।

3. **आचार्य पतंजलि (योग और व्याकरण के रचनाकार)**:-

आचार्य पतंजलि भारतीय संस्कृत साहित्य के महत्वपूर्ण विद्वान हैं। उनका योगसूत्र भारतीय योग का प्रमुख ग्रंथ है, जिसमें योग के सिद्धांत, प्रक्रिया और उद्देश्य पर चर्चा की गई है।

प्रमुख रचनाएँ:-

योगसूत्र:-

यह ग्रंथ योग के सिद्धांत और अभ्यासों का एक व्यवस्थित संग्रह है, जो मानसिक और शारीरिक साधना के मार्ग को स्पष्ट करता है।

महाभाष्य: यह संस्कृत व्याकरण पर आधारित महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें पतंजलि ने काव्यशास्त्र और व्याकरण के सिद्धांतों की व्याख्या की है।

4. **कालिदास (संस्कृत साहित्य के महान कवि)**:-

कालिदास को संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में जाना जाता है। उन्होंने भारतीय नाट्य और काव्य साहित्य को नई दिशा दी और वे भारतीय काव्यशास्त्र के मास्टरमाइंड माने जाते हैं।

प्रमुख रचनाएँ:-

अभिज्ञानशाकुंतलम्:-

यह नाटक शाकुंतला और राजा दुष्यंत की प्रेम कहानी पर आधारित है। इस नाटक ने कालिदास को विश्वभर में प्रसिद्ध कर दिया।

रघुवंश:-

यह महाकाव्य रघुकुल के राजाओं और उनके वंश की महिमा का वर्णन करता है। यह काव्य काव्यशास्त्र के दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

कुमारसंभव:-

यह महाकाव्य शिव और पार्वती के विवाह, उनके पुत्र कुमार के जन्म और उनकी कथाओं पर आधारित है।

5. भास (प्राचीन संस्कृत नाटककार):-

भास भारतीय साहित्य में नाट्य साहित्य के पहले शास्त्रीय कवि माने जाते हैं। उनके नाटक में मानव संवेदनाओं, युद्धों, प्रेम और संघर्षों का समावेश है।

प्रमुख रचनाएँ:-

स्वप्नवासवदत्ता:-

यह नाटक प्रेम, संयोग और विछेद की भावनाओं पर आधारित है, जिसमें राजमहल की राजनीति भी जुड़ी हुई है।

प्रतिमेध:-

यह नाटक राजा की विद्वता, शक्ति और युद्ध के संघर्ष पर आधारित है।

6. **भवभूति (प्राचीन संस्कृत नाटककार)**:-

भवभूति प्राचीन संस्कृत के महान नाटककार थे, जिन्होंने नाटक और काव्यशास्त्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके नाटकों में मानवता, संघर्ष और आंतरिक तटस्थता की भावना प्रकट होती है।

प्रमुख रचनाएँ:-

उत्तररामचरित:-

यह राम के जीवन के उत्तरकाल (राम के राजभिषेक और उनके साम्राज्य की स्थापना) पर आधारित नाटक है।

महावीरचरित:-

यह नाटक महात्मा बुद्ध के जीवन और उनके कार्यों पर आधारित है।

7. **विष्णु शर्मा (पंचतंत्र के रचनाकार)**:-

विष्णु शर्मा भारतीय साहित्य के महान आचार्य और शिक्षक थे, जिन्होंने शिक्षा के माध्यम से नैतिक और सामाजिक मूल्यों को प्रसारित किया।

प्रमुख रचनाएँ:-

पंचतंत्र: यह भारतीय शिक्षा का एक अद्भुत ग्रंथ है, जिसमें बुद्धिमत्ता, नीति और जीवन के मूल्यों से संबंधित कथाएँ दी गई हैं। इसे विशेष रूप से बच्चों और युवाओं के लिए लिखा गया था, और यह आज भी भारतीय संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है।

8. **आचार्य शंकर (वेदांत के आचार्य):-**

आचार्य शंकर ने वेदांत दर्शन का प्रसार किया और भारतीय धार्मिक जीवन को गहरे तरीके से प्रभावित किया। वे भारतीय संत, योगी और विचारक थे।

प्रमुख रचनाएँ:-

विवेकचूडामणि:-

यह शंकराचार्य का प्रसिद्ध ग्रंथ है, जो आत्म-ज्ञान, आत्म-अवबोधन, और ब्रह्म के अस्तित्व पर केंद्रित है।

अपस्तंभसूत्र:-

यह संस्कृत व्याकरण पर आधारित शास्त्र है, जो संस्कृत के अध्ययन में मदद करता है।

9. **अश्वघोष (महात्मा बुद्ध के जीवन के रचनाकार)**:-

अश्वघोष प्राचीन भारतीय साहित्य के एक महान कवि और दार्शनिक थे। वे महात्मा बुद्ध के जीवन के महत्वपूर्ण प्रसंगों को काव्य रूप में प्रस्तुत करने के लिए प्रसिद्ध हैं।

प्रमुख रचनाएँ:-

बुद्धचरित:-

यह महात्मा बुद्ध के जीवन और उनके उपदेशों पर आधारित ग्रंथ है। इसे भारतीय साहित्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है।

आदिकाल के प्रमुख रचनाकारों और उनकी रचनाओं ने न केवल भारतीय साहित्य की नींव रखी, बल्कि भारतीय संस्कृति, धर्म और समाज के आदर्शों का भी निर्माण किया। महर्षि वाल्मीकि और महर्षि वेदव्यास से लेकर कालिदास, पतंजलि, भास, भवभूति और अन्य कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय समाज के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को प्रस्तुत किया। आदिकाव्य और अन्य ग्रंथों के योगदान से भारतीय साहित्य को एक नई दिशा मिली और यह आज भी भारतीय संस्कृति की पहचान बन चुका है।

1. तत्सम शब्द ..... कहते हैं ।

2. रीतिकालीन कवि..... हैं ।

13.7 सारांश

नाथ साहित्य, जैन साहित्य और वीरगाथात्मक साहित्य भारतीय संस्कृति और धर्म के विभिन्न पहलुओं को उजागर करते हैं। इनकी विशेषताएँ, रचनाएँ और प्रमुख रचनाकार भारतीय साहित्य की धारा को समृद्ध करती हैं।

13.8 मुख्य शब्द

- **नाथ साहित्य**:-

यह नाथ संप्रदाय के साधुओं द्वारा रचित साहित्य है, जिसमें आध्यात्मिक साधना, योग, और तांत्रिक परंपराओं का वर्णन मिलता है।

- **वीरगाथात्मक साहित्य**:-

यह साहित्य राजपूतों की वीरता और शौर्य को वर्णित करता है। इसमें प्रमुख काव्य रचनाएँ पृथ्वीराज रासो (चंदबरदाई) और खुमाण रासो जैसी हैं।

- **जैन साहित्य**:-

जैन धर्म के सिद्धांतों, तीर्थंकरों के जीवन चरित, और अहिंसा के महत्व पर आधारित साहित्य। इसमें प्रसिद्ध ग्रंथ **आचारांग सूत्र** और **कल्पसूत्र** हैं।

- **योग**:-

शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक साधना की प्रणाली। योग पर प्रमुख ग्रंथ **पतंजलि का योगसूत्र** और हठयोग से संबंधित ग्रंथ **हठयोग प्रदीपिका** हैं।

- **अहिंसा**:-

यह जैन और बौद्ध धर्म का प्रमुख सिद्धांत है। अहिंसा का अर्थ है किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना। इसे महावीर स्वामी और महात्मा गांधी ने विशेष रूप से प्रचारित किया।

- **पराक्रम**:-

यह वीरता, शौर्य, और साहस को दर्शाने वाला गुण है। वीरगाथात्मक साहित्य में पराक्रम का वर्णन व्यापक रूप से किया गया है।

- **तीर्थंकर**:-

जैन धर्म में तीर्थंकर वे महापुरुष हैं जिन्होंने धर्म की स्थापना की। कुल 24 तीर्थंकर हैं, जिनमें ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, और महावीर स्वामी प्रमुख हैं।

- **साधना**:-

आत्मा की शुद्धि और मोक्ष प्राप्ति के लिए की जाने वाली आध्यात्मिक प्रक्रिया। यह ध्यान, योग, और तपस्या के माध्यम से की जाती है।

13.9 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

तत्सम शब्द **वे शब्द होते हैं जो संस्कृत से सीधे लिए गए होते हैं और जिनमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया होता है।**

रीतिकालीन कवि भूषण, केशवदास,• बिहारी हैं **।**

13.10 संदर्भ ग्रंथ

- शर्मा, र. (2022). भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास और संरचना. नई दिल्ली: राष्ट्रीय प्रकाशन गृह।
- मिश्रा, बी., & सिंह, R. (2021). भारत में आर्थिक नीतियाँ और उनका प्रभाव. लखनऊ: महात्मा गांधी विश्वविद्यालय प्रेस।
- यादव, S. (2020). भारतीय अर्थव्यवस्था में बदलाव: एक समग्र दृष्टिकोण. दिल्ली: प्रकाशन विभाग।
- पटेल, P. (2019). भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और विकास. मुंबई: एसएआर प्रकाशन।
- कुमार, A. (2018). आर्थिक स्थिरता और विकास की दिशा. दिल्ली: पीएचआई लेर्निंग।

13.11 अभ्यास प्रश्न

1. नाथ साहित्य की विशेषताएँ क्या हैं?
2. जैन साहित्य के प्रमुख ग्रंथों के नाम लिखिए।
3. वीरगाथात्मक साहित्य का महत्व बताइए।
4. आदिकाल के प्रमुख रचनाकारों की सूची बनाइए।

इकाई - 14

छायावाद

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 छायावाद साहित्य का विकास

14.4 छायावाद युगीन गद्य साहित्य

14.5 सारांश

14.6 मुख्य शब्द

14.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

14.8 संदर्भ ग्रन्थ

14.9 अभ्यास प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

छायावाद हिंदी साहित्य का वह युग है जिसने भक्ति और रीतिकाल के परंपरागत ढाँचे को तोड़ते हुए साहित्य को नए भाव, विचार, और दृष्टिकोण प्रदान किए। यह युग हिंदी साहित्य के इतिहास में एक क्रांतिकारी परिवर्तन का प्रतीक है।

सामाजिक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: छायावाद का उदय 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में हुआ, जब भारत में स्वतंत्रता आंदोलन जोर पकड़ रहा था। इस दौर में:

राजनीतिक और सामाजिक आंदोलनों ने लोगों के मन में नई चेतना और आकांक्षाएँ उत्पन्न कीं।

पाश्चात्य विचारधारा और भारतीय संस्कृति के समन्वय ने साहित्यकारों को नई दिशा दी।

व्यक्तिवादी सोच और रोमांटिक प्रवृत्तियों ने साहित्य को आंतरिक अनुभवों की ओर मोड़ा।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
3. आर्थिक स्थिरता और वृद्धि के लिए आवश्यक उपायों की पहचान कर सकें।
4. भारतीय अर्थव्यवस्था में वैश्विक प्रतिस्पर्धा बढ़ाने के उपायों का विश्लेषण कर सकें।
5. सामाजिक और आर्थिक समानता सुनिश्चित करने के उपायों को समझ सकें।
6. रोजगार सृजन के लिए आवश्यक रणनीतियों का विश्लेषण कर सकें।
7. कृषि, उद्योग और सेवा क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता की पहचान कर सकें।
8. भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न घटकों के बीच संतुलन बनाए रखने के उपायों का विश्लेषण कर सकें।
9. भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिरता और विकास दर में वृद्धि के लिए प्रभावी नीतियों का सुझाव दे सकें।

14.3 छायावाद साहित्य का विकास

छायावाद साहित्य का विकास भारतीय साहित्य के महत्वपूर्ण और प्रभावशाली आंदोलनों में से एक है, जो मुख्य रूप से बंगाली साहित्य में उभरकर हिंदी साहित्य

में भी प्रभावी हुआ। इस आंदोलन की शुरुआत 20वीं सदी की शुरुआत में हुई, जब भारतीय साहित्य में नवजागरण के प्रभाव में नया मोड़ आया।

छायावाद साहित्य का समयकाल और विकास:-

संदर्भ और काल:-

छायावाद की शुरुआत 1910 के दशक में हुई, जब हिंदी साहित्य में नए विचारों और शैलियों की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। इसे मुख्य रूप से "रचनात्मक" और "नवीन" साहित्य आंदोलन माना जाता है, जो प्रकृति, प्रेम, जीवन, और आत्मा की गहराइयों को व्यक्त करने का एक तरीका था।

प्रमुख कवि और रचनाएँ:-

सुमित्रानंदन पंत:-

छायावाद के प्रमुख कवि सुमित्रानंदन पंत को इस आंदोलन का अग्रदूत माना जाता है। उनकी कविताओं में प्रकृति के प्रति प्रेम, रहस्यवाद और आदर्शवाद की प्रधानता रही। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं - "प्रकाश" और "चायादर्श"।

जयशंकर प्रसाद:-

जयशंकर प्रसाद ने भी छायावाद को अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया। उनके काव्य में प्रेम, वीरता, और आध्यात्मिकता का मिश्रण था। "कंकाल", "आंसू", और "कामायनी" उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

महादेवी वर्मा:-

महादेवी वर्मा का योगदान छायावाद में बहुत महत्वपूर्ण था। उनकी कविताओं में शोक, प्रेम, और नारीत्व की विशिष्ट अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। उनकी प्रमुख काव्य रचनाएँ "यामा" और "नीरजा" हैं।

मुख्य विशेषताएँ:-

प्रकृति का चित्रण:-

छायावाद में प्रकृति को प्रेम और संवेदनाओं का माध्यम बना कर चित्रित किया गया। कवियों ने अपनी भावनाओं और अनुभवों को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया।

आध्यात्मिकता और रहस्यवाद:-

छायावादी कवि जीवन और ब्रह्मा के रहस्यों को समझने की कोशिश करते थे। उनके काव्य में अदृश्य शक्ति और आध्यात्मिकता की झलक मिलती है।

नैतिक आदर्श और संवेदनशीलता:-

छायावाद के कवि व्यक्तिगत और सामाजिक नैतिकता, संवेदनशीलता और आत्मा की शुद्धता को महत्त्व देते थे।

समाप्ति और प्रभाव:-

1930 के दशक में छायावाद साहित्य के प्रभाव में थोड़ी कमी आई, क्योंकि इसके स्थान पर प्रगति और यथार्थवाद के विचारों ने दस्तक दी। लेकिन छायावाद ने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा और गहरी संवेदनशीलता दी, जो आज भी साहित्य में प्रभावी है।

इस प्रकार, छायावाद साहित्य ने न केवल भारतीय साहित्य में एक नया मोड़ दिया, बल्कि भारतीय समाज और संस्कृति के अंदरूनी पहलुओं को भी उजागर किया।

14.4 छायावाद युगीन गद्य साहित्य

परिचय:-

छायावाद भारतीय काव्य के एक महत्त्वपूर्ण और विशेष युग का नाम है, जो 20वीं सदी के प्रारंभिक दशकों में आकार लिया। हालांकि यह विशेष रूप से काव्य क्षेत्र में प्रकट हुआ, लेकिन इसका प्रभाव गद्य साहित्य पर भी पड़ा। छायावाद की विशेषताएँ - चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता, शृंगारी संवेदनाएँ, आत्मनिवेदन और

स्वच्छंदता - गद्य साहित्य में भी गहरी छाप छोड़ने वाली थीं। गद्य में छायावाद का प्रभाव न केवल काव्यात्मक शैली में था, बल्कि इस युग के गद्यकारों ने सामाजिक और राजनीतिक बदलावों की संदर्भ में भी इसे अपनाया। इस लेख में हम छायावाद युगीन गद्य साहित्य की विशेषताओं, प्रमुख गद्यकारों, उनके योगदान और इसके प्रभावों का विश्लेषण करेंगे।

छायावाद का साहित्यिक संदर्भ:-

छायावाद का साहित्यिक विकास 1910-1940 के बीच हुआ। यह युग भारतीय साहित्य के लिए एक महत्वपूर्ण संक्रमणकाल था, जहाँ पुराने काव्य रूपों और विचारधाराओं के स्थान पर नए विचार और रूप सामने आ रहे थे। छायावाद ने एक नये दृष्टिकोण को जन्म दिया, जो विशेष रूप से काव्य में व्यक्तिपरकता और नीरस जीवन से बचने के लिए नए रंगों और बिम्बों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति थी। इस युग में काव्य और गद्य दोनों में संवेदनाओं की गहरी अभिव्यक्ति देखी गई।

छायावाद के गद्य साहित्य की विशेषताएँ:-

छायावाद का गद्य साहित्य भी काव्य की तरह ही अधिकतर आत्मानुभूति, संवेदनाओं और चित्रात्मकता पर आधारित था। इसके कुछ प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं:

प्रकृति का चित्रण:-

गद्यकारों ने भी अपनी रचनाओं में प्रकृति का अत्यधिक चित्रण किया। इसकी विशेषता यह थी कि इसमें प्रकृति केवल एक दृश्य या परिप्रेक्ष्य नहीं, बल्कि लेखक की मानसिकता और भावनाओं के साथ जुड़ी होती थी।

आत्मविश्लेषण:-

छायावाद के गद्यकारों ने आत्मविश्लेषण और आत्मनिवेदन की प्रवृत्ति को अपनाया। वे न केवल बाहरी दुनिया को, बल्कि अपनी भीतरी दुनिया को भी समझने का प्रयास करते थे। इस समय की गद्य रचनाओं में गहरी मानसिक द्वंद्व और जीवन के प्रति निराशा या आशा की अभिव्यक्ति होती थी।

प्रतीकात्मकता और रूपक:-

जैसे काव्य में प्रतीकात्मकता का महत्व था, वैसे ही गद्य में भी गहरे प्रतीकों और रूपकों का उपयोग किया गया। गद्यकारों ने जीवन की जटिलताओं को समझने के लिए प्रतीकों और रूपकों का सहारा लिया।

स्वच्छंदता और व्यक्तिवाद:-

छायावाद में स्वच्छंदता और व्यक्तिवाद की भावना बहुत प्रबल थी। गद्यकार अपनी स्वतंत्रता का अहसास करते हुए समाज के स्थापित ढाँचों और मान्यताओं के खिलाफ लिखते थे।

नैतिक और धार्मिक विमर्श:-

इस युग में गद्य साहित्य में विशेष रूप से नैतिक और धार्मिक विमर्श भी हुआ। गद्यकारों ने जीवन की जटिलताओं, धार्मिक असहमति और नैतिक संकटों पर विचार किया।

प्रमुख गद्यकार:-

छायावाद के गद्य साहित्य में कुछ महत्वपूर्ण गद्यकारों का योगदान रहा, जिनमें से प्रमुख हैं:

शिवप्रसाद 'सुमन':-

सुमन की रचनाएँ छायावाद के गद्य साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। उनका लेखन आत्मदृष्टि और प्रकृति के प्रतीकों से परिपूर्ण था। उन्होंने अपनी

कहानियों और निबंधों में गहरे मानसिक द्वंद्वों और जीवन के गंभीर प्रश्नों को छुआ।

विभूति नारायण राय:-

विभूति नारायण राय के गद्य साहित्य में समाज और व्यक्ति के रिश्तों पर गहरी टिप्पणी थी। उनके लेखन में समाज की बुराइयों और उन पर उठाए गए सवालों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

प्रेमचंद:-

प्रेमचंद का लेखन छायावाद और यथार्थवाद दोनों से प्रभावित था। उनकी गद्य रचनाएँ समाज के विकृत पहलुओं को उजागर करती थीं, लेकिन उनके भीतर छायावाद की प्रवृत्तियाँ भी थीं, जैसे प्रकृति का चित्रण और व्यक्ति के आंतरिक संघर्ष की गहरी छानबीन।

यशपाल:-

यशपाल ने अपनी कहानियों में छायावाद के प्रभाव को व्यक्त किया। उनकी कहानियों में मानव के आंतरिक द्वंद्व और सामाजिक आलोचना की भावना दिखाई देती है। यशपाल के लेखन में रचनात्मकता और प्रतीकात्मकता का अद्भुत सम्मिलन था।

छायावाद युगीन गद्य साहित्य का सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव:-

छायावाद युग का गद्य साहित्य न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था, बल्कि इसने भारतीय समाज और संस्कृति पर भी गहरा प्रभाव डाला। इस समय की गद्य रचनाओं में विशेष रूप से निम्नलिखित सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव देखे गए:

समाज सुधार की आवश्यकता:-

गद्यकारों ने अपनी रचनाओं में समाज में व्याप्त असमानता, भेदभाव, और अन्याय पर गहरी टिप्पणी की। छायावाद युग में समाज सुधारकों का भी प्रभाव था, और यह गद्यकारों द्वारा अपने लेखन में व्यक्त किया गया।

नारी विमर्श:-

इस समय के गद्य साहित्य में नारी के अधिकारों और स्थिति पर भी विचार किया गया। नारी के प्रति समाज की रूढ़ियों और धारणाओं को चुनौती दी गई।

राजनीतिक विचारधारा:-

छायावाद युग का गद्य साहित्य स्वतंत्रता संग्राम से भी जुड़ा हुआ था। गद्यकारों ने अंग्रेजी शासन की आलोचना की और भारतीय समाज की राजनीतिक समस्याओं को सामने रखा।

छायावाद युग का गद्य साहित्य भारतीय साहित्य की एक महत्वपूर्ण धारा है। इस युग में गद्यकारों ने न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से अपनी रचनाओं को समृद्ध किया, बल्कि समाज, संस्कृति और राजनीति पर भी गहरी छाप छोड़ी। यह युग आत्मदृष्टि, संवेदनाओं और प्रकृति के चित्रण के रूप में समृद्ध था। छायावाद के गद्य साहित्य ने भारतीय समाज और साहित्य में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, जो आज भी प्रभावी है।

1. छायावादी युग के कवि ..... है।
2. छायावाद का प्रमुख विषय..... है।

14.5 सारांश

छायावाद साहित्य का उद्देश्य जीवन और मनुष्य की गहरी भावनाओं को व्यक्त करना था। इस आंदोलन ने भारतीय साहित्य में नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, जिसमें प्रकृति, आत्मा, और व्यक्तिवाद को प्रमुख स्थान दिया गया। छायावादी कविता में समकालीन समाज के परंपरागत बंधनों से मुक्ति और व्यक्तिगत भावनाओं को प्राथमिकता दी गई।

14.6 मुख्य शब्द

- **छायावाद :-**

  यह हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण युग (1918-1936) है, जिसमें कविता में भावुकता, कल्पना, और व्यक्तिवाद का उदय हुआ।

- **प्रतीकवाद:-**

  छायावादी कवियों ने भावों और विचारों को प्रकट करने के लिए प्रतीकों का उपयोग किया।

- **व्यक्तिवाद:-**

  छायावाद के केंद्र में व्यक्ति की भावनाएँ और उसका आंतरिक संसार रहा। कविताओं में व्यक्तिगत अनुभूतियों और आत्मा के संघर्ष का चित्रण हुआ।

- **मानसिक द्वंद्व :-**

  छायावादी कविताएँ अक्सर मनुष्य के आंतरिक संघर्षों को उजागर करती हैं– जैसे कि भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के बीच द्वंद्व, या प्रेम और कर्तव्य के बीच संघर्ष।

- **आत्मा :-**

  इस युग में आत्मा और उसकी शुद्धता को अत्यंत महत्व दिया गया। आत्मा की खोज, आध्यात्मिक उन्नति और मोक्ष जैसे विचारों को कविता में व्यक्त किया गया।

- **प्रकृति:-**

  छायावादी कवियों ने प्रकृति को केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि एक सजीव पात्र के रूप में प्रस्तुत किया। प्रकृति की सुंदरता, कोमलता और उसके रहस्यमय रूपों का वर्णन कविताओं में अद्‌वितीय तरीके से किया गया।

14.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

छायावादी युग के प्रमुख कवि **जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा** और **सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'** हैं।

छायावाद का प्रमुख विषय **व्यक्तिवाद** है।

14.8 संदर्भ ग्रंथ

- शर्मा, ए. (2022). *भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और विकास*. नई दिल्ली: रौटलेज प्रकाशन।
- कुमार, पी. (2019). *भारतीय अर्थव्यवस्था: एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण*. मुम्बई: हार्पर कॉलिंस।
- सिंह, राज, और यादव, एस. (2021). *आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था और वैश्विक प्रतिस्पर्धा*. जयपुर: भारतीय प्रकाशन गृह।
- वर्मा, र. (2020). *आर्थिक स्थिरता और विकास के उपाय*. दिल्ली: ओक्सफोर्ड विश्वविद्‌यालय प्रेस।
- जोशी, ल. (2018). *भारतीय अर्थव्यवस्था: संरचना और नीतियां*. पुणे: सागर पुस्तकालय।

14.9 अभ्यास प्रश्न

1. छायावाद का साहित्यिक उद्देश्य क्या था?
2. छायावाद और हिंदी कविता में इसके प्रभाव पर चर्चा करें।
3. छायावाद के प्रमुख कवियों के नाम बताएं और उनके योगदान को समझाएं।
4. छायावाद आंदोलन के विकास के प्रमुख कारण क्या थे?

ब्लॉक - IV

इकाई - 15

रस, छन्द और अलंकार

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 रस के अंग

15.4 छन्द के भेद

15.5 अलंकार के उदाहरण और स्पष्टीकरण

15.6 सारांश

15.7 मुख्य शब्द

15.8 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

15.9 संदर्भ ग्रन्थ

15.10 अभ्यास प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

भारतीय काव्यशास्त्र में **रस**, **छन्द**, और **अलंकार** को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है, क्योंकि ये तीनों तत्व काव्य की आत्मा माने जाते हैं। इनका काव्य पर प्रभाव गहरा और अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। प्रत्येक काव्य रचना में इनका सही प्रयोग उसकी सुंदरता, प्रभाव, और भावनात्मक गहराई को बढ़ाता है।

रस: रस का उद्देश्य काव्य में भावनाओं का संचार करना है। यह कविता के प्रमुख भावों को व्यक्त करता है, जैसे प्रेम, करुणा, वीरता, आदि। रस को काव्य का प्राण माना जाता है, क्योंकि यह काव्य को जीवित और सजीव बनाता है।

छन्द: छन्द काव्य का रूप और लय निर्धारित करता है। यह कविता की संरचना और उसके संगीतात्मक गुणों को विशेष रूप से प्रभावित करता है। छन्द के विभिन्न प्रकार काव्य के विभिन्न प्रकार और उद्देश्यों के अनुसार होते हैं।

अलंकार: अलंकार काव्य में शब्दों के सजावट का काम करता है। यह कविता की सुंदरता को बढ़ाता है और काव्य के अर्थ को गहरा और प्रभावशाली बनाता है। अलंकार का प्रयोग काव्य को अधिक आकर्षक और रसपूर्ण बनाता है।

इस प्रस्तावना के माध्यम से हम इन तीनों प्रमुख तत्वों को समझने का प्रयास करेंगे और देखेंगे कि ये काव्य में किस प्रकार से योगदान करते हैं। इनका प्रभाव न केवल काव्य की सुंदरता पर पड़ता है, बल्कि यह पाठकों पर गहरे मानसिक और भावनात्मक प्रभाव भी डालता है।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. **रस, छन्द और अलंकार** के सिद्धांतों और उनके प्रकारों को समझ सकें।
2. इन तत्वों के साहित्यिक कार्यों में प्रयोग को पहचान सकें।
3. **रस** की विभिन्न अवस्थाओं और उनके प्रभाव को समझ सकें।
4. **छन्द** के विविध रूपों को पहचान सकें और उनका सही तरीके से उपयोग कर सकें।
5. **अलंकार** के विभिन्न प्रकारों (जैसे रूपक, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा) का विश्लेषण कर सकें।
6. भारतीय काव्यशास्त्र के मूल तत्वों को जान सकें।
7. इन सिद्धांतों को साहित्यिक कृतियों पर लागू कर सकें।
8. रस, छन्द और अलंकार के आपसी संबंध को समझ सकें।

9. इन तीनों को समग्र रूप से साहित्यिक आलोचना में प्रयोग कर सकें।

15.3 रस के अंग

रस:-

काव्य में भावनाओं का संचार करने वाले तत्व को रस कहा जाता है। यह एक मानसिक और भावनात्मक अनुभव है, जो पाठक या श्रोता को काव्य के माध्यम से महसूस होता है।

छन्द: -

छन्द काव्य की लय और ध्वनि का निर्धारण करता है। यह काव्य की संरचना का एक महत्वपूर्ण अंग है।

अलंकार:-

अलंकार काव्य के सौंदर्य को बढ़ाने के लिए उपयोग में लाए गए बिंब, रूपक, अतिशयोक्ति आदि होते हैं। यह काव्य में नयापन और आकर्षण लाता है।

रस के अंग

किसी भी रस के चार अंग होते हैं। जो इस प्रकार हैं-

(1) स्थायी भाव,

(2) विभाव,

(3) अनुभाव,

(4) संचारी भाव

(1) स्थायी भाव

स्थायी भाव वे हैं जो चिरकाल तक चित्त में स्थिर रहते हैं। इनकी कुल संख्या नौ मानी गयी है। इसका संक्षिप्त वर्णन इस तरह है-

रति- पुरुष का स्त्री पर तथा स्त्री का पुरुष पर पैदा होने वाला अपूर्व प्रेम ही रति कहलाता

है।

ह्रास- विचित्र वचनों अथवा वेश-भूषा से हृदय में जो एक विचित्र तरह का आनन्द उत्पन्न होता है तथा उसमें हँसी उत्पन्न होती है उसे ही 'ह्रास' कहते हैं।

3. शोक- इष्ट के नाश से हृदय में जो व्याकुलता पैदा होती है वह ही 'शोक' कहलाता

है।

4. उत्साह- शूरता, दान, दया या बहादुरी से पैदा तथा क्रमानुसार बढ़ते हुए चित्त के भाव का नाम ही 'उत्साह' है।

5. क्रोध- अपमान आदि से हृदय में हर्ष के प्रतिकूल जो मनोविकार पैदा होता है उसे क्रोध कहते हैं।

6. भय- विकृत चेष्टा, विकृत जीव अथवा अपराध आदि से उत्पन्न व्याकुलता का नाम ही

भय' है। '

7. जुगुप्सा- किसी दोषपूर्ण वस्तु के दर्शन, श्रवण या स्पर्श आदि से हृदय में घृणा का जो भाव पैदा होता है उसे 'जुगुप्सा' कहते हैं।

8. विस्मय या आश्चर्य- किसी ऐसी वस्तु को जो समझ में न आने वाली है उसे देखने या स्पर्श करने से जो विस्मय होता है उसे 'आश्चर्य' कहते हैं।

9. निर्वेद या शम- विशेष तरह का ज्ञान प्राप्त करने के बाद सांसारिक विषयों से जो एक प्रकार की निर्लिप्ति हो जाती है वही 'निर्वेद' या 'शम' है।

कुछ विद्वानों ने 'भक्ति' को भी स्थायीभाव माना है। इसी तरह कुछ विद्वानों ने वत्सलता को स्थायीभाव के रूप में स्वीकार किया है। कविराज विश्वनाथ ने भी

लिखा है कि 'स्थायी वत्सलता स्नेह' इस तरह 'भक्ति' तथा 'वत्सलता' को सम्मिलित कर लेने से स्थायी भावों की संख्या बारह हो जाती है।

नोट- हर एक रस का एक स्थायीभाव है। इसलिए अगर रसों की संख्या नौ मानी जाये तो स्थायीभाव नौ हैं और अगर रसों की संख्या ग्यारह मानी जाये तो स्थायीभाव भी ग्यारह माने जायेंगे। सम्प्रति विद्वान दस रसों को ही मान्यता देते हैं। रसों के स्थायीभाव क्रमानुसार इस तरह

रस

स्थायी भाव

1. श्रृंगार रस

रति

2. हास्य रस

हास

3. वीर रस

उत्साह

4. रौद्र रस

क्रोध

भय

5. भयानक रस

शोक

6. करुण रस

जुगुप्सा

7. वीभत्स रस

आश्चर्य

8. अद्भुत रस

निर्वेद

वत्सलता

५. शान्त रस

10. वात्सल्य रस

(2) विभाव:-

स्थायी भाव का उद्बुद्ध करके विभावन के योग्य बनाने वाले कारणो को ही विभाव कहते है। कविराज विश्वनाथ के अनुसार 'रत्याद्यबोधका लोके विभावा काव्य नाट्ययोः' अर्थात् लोक में रति आदि स्थायी भावों के जो उद्बोधक हैं वे ही काव्य नाटक में विभाव कहे जाते हैं। विभाव को अनुपस्थिति में रसावस्था का आना असम्भव है।

विभाव दो तरह के होते है-

1. आलम्बन विभाव, 2. उद्दीपन विभाव।

आलम्बन विभाव- जिसके प्रति भाव उत्पन्न होते हैं वह आलम्बन विभाव होता है। उदाहरण के लिए श्रृंगार रस में जैसे श्रेष्ठ गुणों तथा रूप से युक्त नायक एवं नायिका आलम्बन विभाव हैं।

उद्दीपन विभाव- उद्दीपन विभाव उन सभी वस्तुओं, कारण तथा क्रियाओं को कहते हैं जिनसे स्थायीभाव और अधिक तीव्र एवं उद्दीप्त होता है। उदाहरणार्थ- जैसे-श्रृंगार रस में नायक एवं नायिका की चेष्टाएं वेश-भूषा, एकान्त, चाँदनी रात्, नदी का किनारा, वसन्त ऋतु तथा वाटिका आदि उद्दीपन विभाव ही हैं।

विशेष- यहाँ यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि हर रस के उद्दीपन प्रायः पृथक पृथक होते हैं। उदाहरण के लिए वीर रस को लीजिये। इसमें वोरों की हुँकार, शब्दों की झंकार एवं रण वाद्यों की ध्वनि उद्दीपन विभाव के ही उपकरण हैं।

विभाव को समझने के लिए एक उदाहरण अपेक्षित है। नीचे का उदाहरण मेघनाद और लक्ष्मण के युद्ध के प्रसंग पर आधारित है। इस उदाहरण में वीर रस के स्थायी भाव उत्साह का उद्दीप्त रूप विद्यमान है। इस निम्न पद्यांश में मेघनाद आलम्बन विभाव है। इसका गर्जन एवं रण-वाद्यों का प्रबल घोष ही उद्दीपन विभाव है। इन्हीं दोनों विभावों से वीर रस उद्दीप्त हुआ है। देखिए-

हिन्दी भाषा साहित्य का इतिहास और काव्यांग विवेचन

सौमित्र को घननाद का रव अल्प भी न सहा गया। निज शत्रु को देखे बिना उनसे तनिक न रह गया ।। रघुवीर से आदेश ले युद्धार्थ वे सजने लगे। रण वाद्य भी निर्घोष करके धूम से बचने लगे ।। सानन्द लड़ने के लिए तैयार जल्दी हो गये। उठने लगे उनके हृदय में युद्ध भाव नए-नए ॥

(3) अनुभाव

जिन क्रियाओं से किसी के हृदय में स्थित भाव का ज्ञान हो उसे अनुभाव कहा जाता है अर्थात् वे चेष्टाएं जो किसी भाव का बोध कराती हैं, अनुभाव हैं। अनुभाव के विषय में आचार्य विश्वनाथ का कथन अग्र है-

उद्बुद्धं करणः स्वैः स्वैर्वहिर्भाव प्रकाशयन् । लोके सः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः ।।

अर्थात् आलम्बन-उद्दीपन आदि कारणों से उत्पन्न काव्य तथा नाटक के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के भावों को बाहर प्रकाशित करने वाले कार्य 'अनुभाव' कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में आश्रय की वे समस्त चेष्टाएं जो आलम्बन तथा उद्दीपन विभावों से प्रेरित रहती हैं अनुभाव कहलाती हैं। प्रत्येक रस के अनुभाव भी प्रायः पृथक-पृथक होते हैं। अनुभावों को किसी निश्चित संख्या में नहीं बाँधा जा सकता है। रस निष्पत्ति के प्रसंग के विभाव के अनन्तर अनुभाव का ही नाम आता है। अनुभावों की उपस्थिति में रसावस्था शीघ्र आ जाती है। रंग-मंच आदि के ऊपर जो कार्य पात्रों के अभिनय द्वारा होता है कविता में वही कार्य अनुभावों के द्वारा होता है। भावों के दो पक्ष होते हैं। प्रथम वह जिसके कारण भाव जाग्रत हुआ अर्थात्

आलम्बन, द्वितीय वह जिसके हृदय में भाव जाग्रत हुआ अर्थात् आश्रय । भाव के जाग्रत होने के समय आलम्बन की चेष्टाएं उद्दीपन कहलाती है तथा आश्रम की चेष्टाएं अनुभाव कहलाती है। उदाहरण के लिए 'रामचरित मानस' का 'लक्ष्मण परशुराम संवाद' लिया जा सकता है। वहाँ लक्ष्मण की कटुक्तियाँ सुनकर परशुराम क्रोधावेश में आ जाते हैं, यह उद्दीपन कही जायेगी एवं क्रोधावेश में परशुराम की आँखों का रक्तिम होना, नथुनों का फड़कना और लक्ष्मण पर प्रहार करने के बारम्बार परशु आदि उठाने की क्रियाएं अनुभाव कहलायेंगी।

यद्यपि अनुभावों की संख्या निश्चित नहीं है फिर भी विद्वानों ने उन्हें कुछ वगों में विभाजित किया है। ये वर्ग इस तरह हैं-

1. कायिक अनुभाव- वे शारीरिक प्रतिक्रियाएं जो अन्तःकरण में स्थित भावों की सूचना देती है, कायिक अनुभाव कहलाती है।

2. वाचिक अनुभाव- भावों को संकेतित करने वाले वचनोद्गार को वाचिक अनुभाव कहा जाता है।

3. मानसिक अनुभाव- आन्तरिक भाव के अनुकूल मन में हर्ष तथा विषाद का जो प्रसार होता है वह मानसिक अनुभाव है।

4. आहार्य अनुभाव- मानसिक भावना के अनुसार कृत्रिम वेश-भूषा धारण करने का विचार आहार्य अनुभाव के अन्तर्गत आता है।

सात्त्वक अनुभाव-

आश्रय की स्वाभाविक क्रिया के कारण व्यक्त होने वाले अनुभावों को सात्त्वक अनुभाव कहा जाता है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि आश्रय के द्वारा इन अनुभावों को न तो रोका जा सकता है तथा न इनका हठात् प्रादुर्भाव ही हो सकता है। सात्त्वक अनुभाव आठ तरह के होते हैं, जो निम्नांकित

1. स्तम्भ- भय, हर्ष तथा रुग्णता के कारण हाथ-पैर की गति रुक जाना स्तम्भ कहलाता

है।

2. स्वेद- परिश्रम, ताप या संभोग के कारण शरीर के रोम छिद्रों से निकलने वाले जल को स्वेद कहते हैं।

3. रोमाँच भय, हर्ष तथा आश्वर्य के कारण रोंगटे खड़े होने की क्रिया को रोभाँच कहते

हैं।

4. स्वरभंग- नशा, हर्ष तथा व्यथा के कारण गला भर जाने से गद्‌गद्‌ वचन को स्वर भंग कहा जाता है।

5. वेपथु- राग-द्‌वेष एवं परिश्रम आदि से शरीर में उत्पन्न कम्प को वेपथु कहते हैं।

6. वैवर्ण्य- विषाद तथा क्रोधादि से उत्पन्न वर्ण-विकार को वैवर्ण्य कहते हैं।

7. अश्रु- हर्ष, दुःख तथा क्रोध से पैदा नेत्र-जल को अश्रु कहते हैं।

8. प्रलय- सुख-दुःख की अधिकता से उत्पन्न विस्मृति को जिसके कारण ज्ञानादि कष्ट हो जाते हैं प्रलय कहा जाता है।

(4) संचारी भाव

स्थायी भावों को पुष्ट करने में सहायता पहुँचाने वाले स्थायी भावों को संचारी भाव कहा जाता है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार, जो भाव रस के उपकारक होकर पानी के बुलबुलों एवं तरंगों की भाँति उठते तथा विलीन होते रहते हैं उन्हें संचारी अथवा व्यभिचारी भाव कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि ये भाव क्षणिक होते हैं तथा स्थायी भाव में ही लुप्त हो जाते हैं। रस निष्पत्ति में ये भी सहायक होते हैं। पर यहाँ उल्लेखनीय है कि संचारी भाव किसी भी एक स्थायी भाव में दृढ़ता के साथ स्थिर नहीं रहते। वे कभी किसी भाव के साथ प्रकट होते हैं तो कभी दूसरे के साथ। इनका विश्लेषण करते हुए आचार्य मिश्र ने लिखा है कि विशेष रीति से मुख्य रस के लिए स्थायी भावों की तरफ संचरण करने से ये संचारी अथवा

व्यभिचारी भाव कहे जाते हैं। संचारी भावों की संख्या तैतीस मानी गयी है ये निम्न हैं-

निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, श्रम, आवेग, मन्द, जड़ता, दैन्य, मोह, उग्रता, विबोध, स्वप्न, अपस्मार, आलस्य, अमर्ष, निद्रा, गर्व, मरण, औत्सुक्य, उन्माद, औहित्य, स्मृति, व्याधि, मति, बोड़ा, त्रास, हर्ष, विषाद, चपलता, धृत, विर्तक तथा चिन्ता ।

छंद :-

छन्द का आशय :-

छन्द का शाब्दिक अर्थ होता है बाँधना। काव्य में उस पद रचना को छन्द या वृत्त कहा जाता है, जो विशेष वर्ण योजना, मात्रा अथवा लय से बंधी हुई होती है। छन्द अक्षरों की संख्या, मात्राओं की गणना अथवा लय में बंधे हुए होते हैं।

छन्द के अंग या तत्व

छन्द के निम्न चार अंग या तत्व होते हैं चरण, भात्रा, गति, तुक।

1. चरण छन्द को जिस ढंग से लिखा जाता है, वे पंक्तियाँ चरण या पद कहलाती हैं। साधारणतः प्रत्येक छन्द में चार चरण होते हैं, किन्तु कहीं कहीं छः चरण भी होते हैं। कुछ छन्द जैसे दोहा, सोरठा, बरवै आदि में चार चरण होते हुए भी वे दो ही चरणो में लिखे जाते हैं। ऐसे छन्दों की प्रत्येक पंक्ति को दल कहते हैं।

2. मात्रा किसी स्वर का उच्चारण करने में जो समय लगता है उसे मात्रा कहते हैं। मात्रा दो प्रकार की होती हैं हस्व और दीर्घ । कुछ मात्राओं के उच्चारण में कम समय लगता है - ऐसी मात्राएं ह्रास्व या लघु कहलाती हैं, कुछ मात्राओं के उच्चारण में अधिक समय लगता है, उन्हें दीर्घ कहते हैं -

लघु वर्षों के लिए 'ल'तथा गुरु वर्गों के लिए 'ग' का प्रयोग होता है। इन दोनों का संकेत चिन्ह क्रमशः (१) और (5) है।

3. गति छन्द में लय प्रभाव से जो संगीतात्मकता उत्पन्न होती है उसे गति कहते हैं।

4. तुक छन्द के चरणों के अन्त में एक ही अक्षर आने को तुक कहते हैं। इस दृष्टि

से छंदों के दो भेद होते हैं। तुकान्त छन्द, अत्तकान्त। अन्तिम अक्षर के समान होने पर तुकान्त छन्द और असमान होने पर अतुकान्त छन्द होते हैं।

5. गण तीन अक्षरों के समूह को गण कहते हैं। वर्गों में लघु और गुरु के विचार से गणों की संख्या आठ मानी गयी है-

यगुण (155) मगज, (555), तगण (551), रगण, (151), भगण (51), नगण (10 सगण (15)

15.4 छन्द के भेद

वर्ण और मात्रा की गणना के आधार पर छन्द दो प्रकार के होते हैं-

(1) मात्रिक छन्द:-

जिन छन्दों में मात्राओं की निश्चित संख्या होती है, उन्हें मात्रिक छंद कहते हैं। जैसे- चौपाई, दोहा, सोरठा आदि। इसके मुख्य प्रकार निम्न है-

(i) दोहा- दोहा अर्द्ध सम मात्रिक छन्द है। इसके पहले और तीसरे चरणों में तेरह तथा दूसरे और चौथे चरणों में ग्यारह मात्राएं होती हैं। दोहे के अन्त में लघु आना चाहिए।

इसका एक छोटा सा काव्यबद्ध लक्षण इस प्रकार है

"तेरह विष मन जादि में सम ग्यारह कल लांत ।"

अर्थात् इसके विषम चरणों में तेरह तथा सम चरणों में ग्यारह मात्राएं होती हैं। आरम्भ में जगण (151) नहीं आना चाहिए। जबकि अन्त में लघु वर्ण आता है।

कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय

वह खाये बौराय नर इहि पाये बौराय।

उदाहरण-

(ii) चौपाई - (कल सोलह जत तजि चौपाई) अर्थात् यह एक सम मात्रिक छन्द है अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में एक समान 16 मात्राएं होती है। इसके अन्त में चरण में समान 16 मात्राएं

होती हैं। इसके अन्त में जगण और तगण नहीं आने चाहिए अर्थात् अंत में सामान्यतः गुरु वर्ग आना चाहिए। उदाहरण-

आगे चले बहुरि रघुराया, रिश्यमूक पर्वत नियराया तेहि वन निकट दसानन गयऊ, तब मारीच कपट मृग भयऊ

(iii) रोला- रोला छन्द के प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएं होती हैं। इसमे 11 और 13 मात्राओं पर विराम होता है। प्रत्येक चरण के अन्त में दो गुरु या दो लघु होता है।

उदा- नव उज्जवल जलधार द्वार हीरक सी सोहति । बिच-बिच छहरति बूंद, मध्य मुक्ता मनि पोहति । लोल-लहर बहि पवन, एक पै एक इनि आवत । जिमि नर गन विविध मनोरथ करत मिटावत ।

(iv) हरिगीतिका - (हरिगीतिका श्रृंगार रवि यदि, सकल अट्ठाइस कला) अर्थात् इस हरिगीतिका) छंद के प्रत्येक चरण में 28 मात्राएं होती हैं तथा 16 और 11 मात्राओं पर विराम होता (है। चरण के अन्त में लघु और गुरु आने चाहिए।

उदाहरण -

श्रृंगार दिनकर यदि चरम लग गाइए हरिगीतिका।

(v) सोरठा - सोरठा दोहे का उल्टा होता है। इसके प्रथम और तृतीय चरणों में 11 तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों में 13 मात्राएं होती हैं।

उदाहरण-

मूक होई बाचाल पंगु चढ़ई गिरिवर गहन। जासु कृपासु दयाल, द्रवहु सकल कलिमल दलन ।।

(2) वर्णिक छन्द-

जिन छन्दों में वर्षों की संख्या अनिश्चित होती है, उन्हें वार्णिक छन्द कहते हैं। जैसे- इन्द्रजा, उपन्द्रवजा आदि। इसके प्रमुख प्रकार निम्न है

(i) कवित्त- यह समवृत्त (जिसके चरणों में वर्षों की समान संख्या हो) वार्णिक छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में 31 वर्ण होते हैं तथा 16-15 अथवा 8-8-8-0 वर्षों पर यति होती है। इसका अन्तिम वर्ण गुरु होता है।

(ii) सवैया - यह भी एक समवृत वार्णिक छन्द है। इसके चरण में 22 से लेकर 22 तक वर्ण होते हैं, जिससे इसके कई भेद हैं। इसका एक मत्तगयंद सवैये का है जिसके प्रत्येक चरण में 7 भगण (ऽ । ।) और अन्त में दो गुरुवर्ण होते हैं जैसे-

लकुटि अरु कामरिया पर राज तिहुं पुर को तजि डारौ। कटिन वे कलघौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं।

इस उद्धरण के प्रत्येक चरण में सात भगण है तथा अन्य में दो गुरु वर्ण हैं, अतः यह मत्तगयंद सवैया का उदाहरण है।

मात्रिक और वार्णिक छन्द में अन्तर मात्रिक छन्द में मात्राओं की गणना होती है, जबकि वार्णिक छन्द में वर्ण गिने जाते हैं। मात्रिक छन्द मात्राओं की गणना पर आधारित होता है और वर्णिक छन्द वर्णों की समता पर आधारित होते हैं।

(iii) मन्दाक्रान्ति- यह एक समवर्ण छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में सत्रह वर्ण होते हैं। इसका प्रत्येक चरण एक मगण, एक भगण, एक नगण, दो तगण तथा दो गुरुओं के योग से बनता है। इसमें दसवें और सत्रहवें वर्ण पर यति होती है इसका उदाहरण है- जाते-जाते अगर पथ में क्लान्त में कोई दिखावे,

तो जाके सन्निकट उसकी क्लान्तियों को मिटाना। धीरे-धीरे परस करके गात उताप खाना, सद्गन्धों से श्रमित उनकी हर्षितों सा बनाना ।।

(iv) कुण्डलिया- कुण्डलिया 6 पंक्तियों का छन्द है। इसका निर्माण दोहा तथा रोला छन्दों के योग से होता है। इसके प्रथम दो दल दोहे के होते हैं तथा अन्तिम चार दल रोला के। दोहे के चौथे पाद को रोला के प्रथम पाद में दोहराया जाता है तथा दोहे का प्रथम पाद जिस शब्द से प्रारम्भ होता है, वही शब्द रोला के चतुर्थ पाद के अन्त में दोहराया जाता है। कुण्डलिया के प्रत्येक चरण में 24 मात्राएं होती हैं। उदाहरण-

लाठी में गुन बहुत है सदा राखिए संग, जहाँ गहरो नाला पड़े तहाँ बचावै अंग, तहाँ बचावै अंग झपटि कुत्ता को मारै, दुसमन हों दावागीर लपकि तिनहूँ को झारै, कह गिरधर कविराय तिनहुँ को झारै, सब हथियारन छोड़ि हाथ में लीजै लाठी ।।

15.5 अलंकार के उदाहरण और स्पष्टीकरण

परिभाषा:-

अलंकार का अर्थ है 'आभूषण' शोभा या सुन्दरता बढ़ाने वाले चमत्कार पैदा करने वाले । काव्य की शोभा वाले धर्मों (विशेषताओं) को अलंकार कहा जाता है। अलंकार के तीन भेद माने गये हैं-

(1) शब्दालंकार:-

परिभाषा जहाँ किसी शब्द के रहने पर काव्य की शोभा बढ़ जाती है और उसको हटा दिये जाने पर वह नष्ट हो जाती है उसे शब्दालंकार कहते हैं। जैसे- "चारू चन्द्र की चंचल किरणें खेल रही थीं जल- थल में।"

इस पद में चारू, चन्द्र और चंचल शब्दों के प्रयोग से कविता में विशेष सौन्दर्य आ गया है। शब्दालंकार मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं-

1. अनुप्रास- यहाँ एक या अनेक वर्षों की आवृत्ति बार- बार हो, वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। जैसे -

"तरनि तनूजा तट तमाल करुवर बहु छाये।"

यहाँ 'त' वर्ण की बार- बार आवृत्ति होने से अनुप्रास अलंकार है। अनुप्रास के लिये यह आवश्यक नहीं कि उसमें प्रयुक्त वर्णों के स्वरों में भी समानता हो। स्वरों की भिन्नता होते हुए भी अनुप्रास अलंकार होता है। जैसे-

'कूलनि में, केलि में, कारन में, कुर्जनि में, क्यारिन में कलिन कलीन किलकेत है।"

यहाँ 'कू'क', 'क्या' क की वर्षों में स्वरों की भिन्नता होते हुए भी अनुप्रास अलंकार है।

अनुप्रास अलंकार के निम्नलिखित भेद है

(1) छेकानुप्रास (2) वृत्यानुप्रास (3) लाटानुप्रास (4) अन्यानुप्रास (5) श्रुत्यानुप्रास ।

2. यमक -जहाँ एक ही शब्द अनेक बार प्रयुक्त हो और प्रत्येक बार उसका अर्थ भिन्न हो वहाँ यमक अलंकार होता है जैसे-

कनक कनक तैं सौ गुनी, मादकता अधिकाय। वह खाये बौराय नर, यह पाये बौराय ॥

यहाँ पहले कनक का अर्थ सोना और दूसरे कनक का अर्थ धतूरा है।

3. श्लेष - जहाँ एक ही शब्द के अनेक अर्थ हों श्लेष अलंकार होता है। श्लेष का अर्थ चिपका हुआ। श्लेष में एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, जैसे- "रहिमन पानी राखिए बिनु पानी सब सून। पानी गये न ऊबरें, मोती मानुष चुन ।।"

पानी का अर्थ

(i)यमक, (ii) सम्मान,(iii) जल ।

4. वक्रोक्ति- जब श्रोता वक्ता के कहे वचनों का उसके आशय से भिन्न अपनी रुचि या

परिस्थिति के अनुकूल अर्थ लगावे तब वक्रोक्ति अलंकार होता है। इसके दो भेद होते हैं- (क) श्लेष

वक्रोक्ति तथा (ख) काकु वक्रोक्ति ।

(क) श्लेष वक्रोक्ति- जहाँ वक्ता ने जो बात जिस आशय से कही हो, सुनने वाला श्लेष से उसका भिन्न अर्थ करे वहाँ श्लेष वक्रोक्ति होती है। इसके भी दो भेद है-

1. भंग पद श्लेष वक्रोक्ति ।

2. अभंग पद-श्लेष वक्रोक्ति ।

भंग पद श्लेष वक्रोक्ति- इसमें वक्ता के कहे हुए शब्दों के टुकड़े करके अन्यार्थ किया जाता है। इसी कारण इसे भंग पद श्लेष वक्रोक्ति कहते हैं। यथा-

'मान तजो गहि सुमति वर, पुनि पुनि होत न देह।

मानत जोगी जोग को, हम नहिं करत सनेह।'

नायक अपनी रूठी नायिका से कहता है-हे वर (श्रेष्ठ), सुमत्ति गहि (सुन्दर बुद्धि धारण करके) मान तजो (रूठना छोड़ दो)। नायक (वक्ता) के इन वचनों को सुनकर नायिका इसका अन्यर्थ इस प्रकार करती है-'मानत जोगहि सुमति वर' (सुन्दर मति वाले लोग योग को मानते हैं)। वह भंग पद करके उत्तर देती है, योगी लोग योग को मानते हैं, हम योग (प्रेम) नहीं करेंगे (रूठे ही रहेंगे)। इस प्रकार यहाँ भंग पद श्लेष वक्रोक्ति हुई ।

अभंग पद श्लेष वक्रोक्ति- इसमें वक्ता द्वारा कहे हुए शब्दों का खण्डन नहीं होता है। पूरे पद का दूसरा अर्थ कल्पित किया जाता है, जैसे-

"कौ तुम ? हरि प्यारी ! कहा बानर को पुर काम।

'स्याम' सलोने स्याम कपि ? क्यों न डरै तब बाम ।।"

यहाँ 'हरि' का अर्थ कृष्ण है, किन्तु श्रोता ने 'हरि' का अर्थ बन्दर मान लिया है। इसी प्रकार 'स्याम' का अर्थ कृष्ण और काला है।

(ख) काकु वक्रोक्ति- काकु शब्द का अर्थ कण्ठ की ध्वनि का विकार है अर्थात् जहाँ पर वक्ता के कहे हुए वाक्य का श्रोता कण्ठ ध्वनि विकार से भिन्न अर्थ कर दे वहाँ काकु वक्रोक्ति होती है, यथा-

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुमहिं उचित तम मो कहँ भोगू ।।

वनगमन के अवसर पर जब सीताजी ने साथ चलने का हठ किया तो राम ने कहा- तुम कोमलांगी हो, वन में तुम्हें कष्ट होंगे, तुम यहीं रहो। इस पर सीताजी कहती है-"मैं सुकुमारी हूँ और नाथ वन जाने योग्य हैं। आपके लिए तप तथा मेरे लिए भोग उपयुक्त है।" यह शाब्दिक अर्थ है। वस्तुतः सीता यह नहीं कहना चाहतीं। उनका आशय है कि यदि आप वन में जा सकते हैं तो मैं भी वन में जा सकती हूँ। यह कदापि सम्भव नहीं कि आप वन में तपस्या करते रहें और मैं महलों में ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बिताऊँ ।

(II) अर्थालंकार

परिभाषा अर्थ को चमत्कृत करने वाले अर्थाश्रित अलंकार अर्थालंकार कहलाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वह चमत्कार निकालकर यदि उस वाक्य का केवल तात्पर्य कहा जाय तो वाक्य बिल्कुल सादा और अरोचक हो जायेगा।

अर्थालंकार के भेद अर्थालंकार के निम्नलिखित प्रमुख भेद हैं-

1. उपमा- जब दो वस्तुओं में पृथकता रहते हुए भी समता वर्जित की जाय तब उपमालंकार

होता है। समता आकृति, रंग और गुण की होती है।

वर्णन करने में जिसकी मुख्यता हो अथवा जिसकी तुलना की जाती है उसे 'उपमेय 'कहते है, जिससे समता दें उसे 'उपमान' कहते हैं, जिस हेतु समता दें उसे उर धर्म कहते हैं, और जिस शब्द के आश्रय से समता प्रकट करें उसे 'वाचक' कहते हैं। ज्यौ, जैसे, जिमि, सौ, तुल्य, तुल, सम, सदृश, सरिम आदि उपमावाचक शब्द हैं।

उदाहरण -

बन्दी कोमल कमल से जग जननी के पांय।

इसमें मुख्य तात्पर्य 'जन जननी' (पार्वती) के चरणों के वर्णन से है। इसलिये पांय शब्द उपमेय है, कमल उपमान है, कोमल धर्म है, और से वाचक है। उपमा के दो भेद है (1) पूर्णोपमा

लुप्तोपमा ।

2. रूपक - जहाँ उपमेय और उपमान दोनों में एकरूपता हो जाय, रूपक अलंकार है। दूसरे शब्दों में, उपमेय में उपमान के निषेध रहित आरोप को रूपक अलंकार कहते हैं।

उदाहरण -

"श्री गुर चरण- सरोज रज, निज मन मुकुट सुधारि

बरनुहु रघुबर विमल जो दायक फल चारि ।।"

स्पष्टीकरण अलंकार है। यहाँ पर 'चरण- सरोज' और मन मुकुट में एक रूपता हो जाने से रूपक

रूपक के तीन भेद हैं (1) सांग रूपक (2) निरंग रूपक (3) परम्परित रूपक ।

प्रयोग होता है।

3.उत्प्रेक्षा- जहाँ पर कल्पना के माध्यम से उपमेय का कोई उपमान कल्पित कर लिया जाय वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। इसमें मन, मानी, जनु, जाजो, माहुं और जनहुं वाचक शब्द का

उदाहरण -

सोहत श्रीडे पीर पद, श्याम सलोने गात। मनहुं नीलमणि मेल पर, आयो परयौ प्रभात।

स्पष्टीकरण यहाँ पर श्रीकृष्ण के पीताम्बर ओढ़कर सोने में नीलगणी पर्वत पर प्रभाव सूर्य की किरणें पढ़ने की कल्पना की गई है। अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

उत्प्रेक्षा के तीन भेद हैं 1 वस्तुप्रेक्षा 2 हेतुत्प्रेक्षा 3 फलोत्प्रेक्षा 4. सन्देह जहाँ पर वस्तुओं की समानता के कारण सन्देह बना रह वहाँ सन्देह अलंकार होता है। सन्देह में अनिश्चय की अवस्था होती है।

उदाहरण -

सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है, कि सारी ही की नारी है कि नारी ही कि सारी है। यहाँ पर नारी और सारी के मध्य सन्देह बना हुआ है कि, की धौ या अथवा कि, धौ आदि। स्पष्टीकरण वाचक शब्द

5. अतिश्योक्ति अतिश्योक्ति अलंकार होता है। जहाँ किसी वस्तु का अधिक बढ़ चढ़ कर वर्णन किया जाय, वहाँ

हनुमान की पूंछ में, लग न पाई जाये।

उदाहरण -

लंका सिगरी जर गई गये निशाचर भाग ।।

"हनुमान की पूंछ में आग न लगने पर लंका जल गई। यह वर्णन बढ़ा चढ़ा कर किया गया है। अतः यहाँ अतिश्योक्ति अलंकार है।

स्पष्टीकरण

6. दृष्टान्त जहाँ उपमेय और उपमान के पृथकृ-पृथक धर्म हो लेकिन उनमें बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव हो, दृष्टान्त अलंकार होता है। इसमें वाचक शब्द व्यक्त नहीं होता है।

उदाहरण -

पगी प्रेम नंदलाल के, हमें न भावत जोग।

मधुष ! राजपद, पायकै, भीख न मोगत लोग ।।

स्पष्टीकरण इसमें उपमेय (गोपियां) और उपमान (लोग) के अलग- अलग धर्म हैं तथा उनमें बिम्ब- प्रतिबिम्ब भाव है। वाचत शब्द लुप्त है। अतः यहाँ दृष्टान्त अलंकार है।

7. समासोक्ति जहाँ विशेषण के आधार पर उपमेय (दूसरे अर्थ) रूप ध्वनित होता है और दोनों अर्थों की परिणति उपमा में होती है वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण चंद्रमा ने रात्रि का रजनी मुख इस प्रकार चुम्बित किया कि उसके अंधकार रूपी वस्त्र अति अनुराग के कारण कब गल गये उसे पता भी न चला।

इस उदाहरण में अति अनुराग के कारण विशेषण है।

8. अन्योक्ति जहाँ पर अप्रस्तुत (उपस्थित न रहने वालो) के द्वारा (उपस्थित रहने वाली) वस्तु की प्रशंसा की जाय वहाँ पर प्रस्तुत प्रशंसा या अन्योक्ति अलंकार होता है। अर्थात् बात जब ठीक प्रकार से न कहकर, अन्य विधि से कही जाय लेकिन बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाय वहाँ

अन्योक्ति अलंकार होता है।

माली आवत देखिकर कलियन करी पुकार ।

उदाहरण -

फूले- फूले चुन लिए काल्हि हमारी बार ।।

स्पष्टीकरण यहाँ माली, कलियाँ और काल का प्रस्तुत अर्थ है काल युवा पुरुष और

वृद्ध जन ।

9. विरोधाभास जहाँ वास्तविक विरोध न होते हुए भी विरोध का आभास हो वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है जैसे -

"या अनुरागी चित्त की गति समड़ौ नहिं कोय। ज्यों- ज्यों बूड़े स्याम रंग त्यों- त्यों उज्जवल होय ।।"

स्पष्टीकरण श्याम रंग में डूबने पर 'उज्जवल होना' इस कथन में विरोध सा प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में विरोध नहीं है क्योंकि श्रीकृष्ण के प्रेम में डूबने पर मन का उज्जवल होना स्वाभाविक ही है। अतः यहाँ विरोधाभास अलंकार है।

10. भ्रान्तिमान अलंकार या भ्रमालंकार जहाँ पर सादृश्य के कारण भम से एक वस्तु को दूसरी वस्तु समझ लिया जाता है तो वहाँ पर भ्रम या श्रान्तिमान अलंकार होता है। उदाहरण देखिए- बिल विचार कर नाक, घुसने लगा विषैला सौंप। काली ईख समझ गज ने, उठा लिया झट आप ।।

यहाँ पर भ्रम से सूंड को बिल और सर्प को काली ईख समझा गया है, इसलिए यहाँ भ्रान्तिमान है।

(III) अभयालंकार

जहाँ शब्दों और अर्थ दोनों का ही चमत्कारपूर्ण मिश्रण हो वह अभयालंकार होते हैं।

1. रस के प्रमुख अंगों की संख्या .....है।

2. एक ही शब्द का पुनर्रावृति हो पर अर्थ अलग-अलग हो .....अलंकार है।

15.6 सारांश

इस अध्याय में रस, छन्द, और अलंकार के महत्व और उनके काव्यशास्त्र में योगदान को समझाया गया है।

रस:-

काव्य में व्यक्त भावनाओं और उनके प्रभाव को समझाने के लिए रस का अध्ययन किया जाता है। रस के मुख्य अंगों में विभाव, अनुभाव, संवाहक, व्योतकर्ष और संज्ञा शामिल हैं। ये अंग मिलकर पाठक या श्रोता में किसी विशेष भावना की अनुभूति उत्पन्न करते हैं।

छन्द:-

काव्य में लय और मीटर को नियंत्रित करने के लिए छन्द का महत्व है। विभिन्न प्रकार के छन्द जैसे द्रुत, मंद, विलम्बित, और मुक्तक काव्य की ध्वनि और गति को निर्धारित करते हैं। प्रत्येक छन्द की अपनी विशेषता होती है, जो काव्य के भाव और विचारों को और अधिक प्रभावशाली बनाती है।

अलंकार: यह काव्य में शब्दों की सुंदरता और भावनाओं की अभिव्यक्ति को बढ़ाने के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं। अनुप्रास, रूपक, उपमेय, उपमान, श्लेष आदि प्रमुख अलंकार हैं। इनका प्रयोग काव्य को और अधिक आकर्षक और प्रभावशाली बनाने के लिए किया जाता है।

इस अध्याय में इन तीनों तत्वों की गहरी समझ प्रदान की गई है और यह दिखाया गया है कि ये तत्व काव्य के सौंदर्य और प्रभाव को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मुख्य बिंदु:

रस, छन्द, और अलंकार काव्य की संरचना और प्रभाव को निर्धारित करते हैं।

रस के अंगों से भावनाओं की अनुभूति होती है।

छन्द कविता की लय और ताल को नियंत्रित करता है।

अलंकार कविता की शाब्दिक सुंदरता को बढ़ाता है।

इस प्रकार, रस, छन्द, और अलंकार तीनों काव्य के अभिन्न अंग हैं, जो काव्य रचनाओं को सौंदर्यपूर्ण और भावनात्मक रूप से समृद्ध बनाते हैं।

15.7 मुख्य शब्द

- रस:-

  यह काव्य या साहित्य का वह प्रभाव है, जो पाठक या श्रोता के मन में

आनंद की अनुभूति कराता है। रस के आठ प्रकार (श्रृंगार, वीर, करुण आदि) और नाट्यशास्त्र में नौ (नवम शांत रस) माने गए हैं।

- छंद:-
  कविता की लयबद्धता और संरचना को छंद कहते हैं। यह शब्दों की गणना और उनके संयोजन पर आधारित होता है। हिंदी में दो प्रमुख प्रकार हैं: मात्रिक और वार्णिक छंद।
- अलंकार:-
  काव्य की शोभा बढ़ाने वाले भाषा-शैली के सौंदर्ययुक्त उपकरण। ये मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं:
- शब्दालंकार: अनुप्रास, यमक आदि।
- अर्थालंकार: उपमा, रूपक आदि।
- गेयता:-
  कविता की वह विशेषता, जो उसे गायन योग्य बनाती है। यह काव्य की लय और माधुर्य से जुड़ी होती है।
- भावनाएँ:-
  काव्य का मूल आधार। कवि अपनी रचनाओं में विभिन्न भावनाओं (प्रेम, करुणा, क्रोध आदि) के माध्यम से पाठकों या श्रोताओं के मन पर प्रभाव डालता है।
- लय:-
  यह काव्य की ध्वनि और ताल का सामंजस्य है, जो उसे सुगम और मधुर बनाता है। लय का प्रभाव कविता की रचनात्मकता और प्रभावशीलता को बढ़ाता है।

15.8 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

रस के प्रमुख अंगों की संख्या **चार** होती है।

एक ही शब्द की पुनरावृत्ति हो, लेकिन उसका अर्थ अलग-अलग हो, तो वह **श्लेष अलंकार** कहलाता है।

15.9 संदर्भ ग्रन्थ

- गुप्ता, संजय. (2020). *भारतीय काव्यशास्त्र* (2nd ed.). दिल्ली: भारतीय विद्या प्रकाशन।
- शर्मा, राधेश्याम. (2019). *रस और अलंकार: काव्यशास्त्र का अध्ययन*. इलाहाबाद: काव्य प्रकाशन।
- वर्मा, सुधा. (2021). *छन्द और अलंकार का साहित्य में स्थान*. जयपुर: साहित्य धारा।
- सिंह, सुरेश. (2018). *भारतीय काव्यशास्त्र और रस सिद्धांत*. लखनऊ: साहित्य परिषद।
- चौहान, मुहम्मद. (2022). *रस, छन्द और अलंकार: एक आलोचनात्मक अध्ययन*. पटना: ज्ञानवर्धन प्रकाशन।

15.10 अभ्यास प्रश्न

1. रस के कौन-कौन से प्रकार होते हैं? प्रत्येक का उदाहरण दें।
2. छन्द और अलंकार में अंतर स्पष्ट करें।
3. अनुप्रास अलंकार का उदाहरण दें।
4. किस प्रकार के काव्य में छन्द का प्रयोग किया जाता है?

इकाई - 16

भारतीय संविधान में हिन्दी

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 भारतीय संविधान में हिन्दी की स्थिति

16. सारांश

16.5 मुख्य शब्द

16.6 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

16.7 संदर्भ ग्रन्थ

16.8 अभ्यास प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

भारतीय संविधान की प्रस्तावना देश के आदर्शों, उद्देश्यों और नीतियों का परिचायक है। इसमें भारतीय समाज की विविधता, समानता और राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने के उद्देश्य से विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और धर्मों को सम्मान देने की बात की गई है। हिन्दी, जो भारत की एक प्रमुख भाषा है, भारतीय संविधान में एकता की भाषा के रूप में स्वीकार की गई है।

संविधान की प्रस्तावना में किसी विशेष भाषा का उल्लेख नहीं किया गया है, लेकिन भारतीय संघ की एकता को बनाए रखने के लिए विभिन्न भाषाओं का सम्मान किया गया है। हिन्दी को राष्ट्रीय एकता का प्रतीक मानते हुए, इसे संविधान के तहत एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

इसके अलावा, प्रस्तावना में भारतीय राज्य की भूमिका, नागरिकों के अधिकार और उनके कर्तव्यों का भी उल्लेख किया गया है, जिनमें भाषा का विषय भी शामिल है। संविधान में हिन्दी को राजभाषा के रूप में अपनाने का उद्देश्य यह था कि एक साझा भाषा के माध्यम से भारतीय जनता के बीच बेहतर संवाद और समझ बनाई जा सके। यह भारतीय समाज की सांस्कृतिक विविधता को एकसूत्र में पिरोने का एक प्रयास था।

इस प्रकार, संविधान की प्रस्तावना भारतीय भाषा नीति के प्रति संविधान के दृष्टिकोण और हिन्दी की भूमिका को परिभाषित करती है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
3. आर्थिक स्थिरता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के उपायों का विश्लेषण कर सकें।
4. सामाजिक और आर्थिक समानता की दिशा में उठाए गए कदमों का मूल्यांकन कर सकें।
5. रोजगार सृजन की योजनाओं और नीतियों का विश्लेषण कर सकें।
6. विकास दर में वृद्धि के लिए किए गए प्रयासों को समझ सकें।
7. आर्थिक वृद्धि के संतुलित वितरण को सुनिश्चित करने के उपायों का विश्लेषण कर सकें।
8. विभिन्न क्षेत्रों में निवेश बढ़ाने के लिए रणनीतियाँ तैयार कर सकें।
9. भारतीय अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए विभिन्न आर्थिक नीतियों की समझ विकसित कर सकें।

16.3 भारतीय संविधान में हिन्दी की स्थिति

भारतीय संविधान का भाग 17 हिन्दी के पक्ष में लिखा गया है। संविधान के अनुच्छेद 343 (i) के अनुसार हिन्दी संघ की राजभाषा है। यह प्रतिष्ठा हिन्दी को 26 जनवरी, 1950 में ही प्राप्त हो गयी। अनुच्छेद 346 के आधार पर यह भी व्यवस्था की गयी कि संघ की राजभाषा होने से हिन्दी संध एवं विभिन्न राज्यों के पारस्परिक संपर्क तथा पत्र-व्यवहार की भी भाषा के रूप में मान्य होगी। अनुच्छेद 343 के अंतर्गत राज्य विधान मण्डलों को यह भी अधिकार दिया गया कि वे हिन्दी को अपने-अपने राज्यों की राजभाषा के रूप में अपनायें तथा अनुच्छेद 351 के अंतर्गत हिन्दी भाषा के प्रचार एवं विकास का दायित्व संघ को सौंपा गया।

उपबंध-

इन सैद्धांतिक मान्यताओं के क्रियान्वयन के लिए कुछ उपबंधों की भी व्यवस्था -

विधि निर्माण तथा संसदीय कार्य यह विधि निर्माण भारतीय संविधान के अंतर्गत दो स्तरों पर होता है-(1) संघ द्वारा, (2) राज्य द्वारा।

संघ द्वारा -

संघ की संसद अधिनियम पारित करती है। राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश निकाले जाते हैं। इसके साथ हो संविधान एवं विभिन्न केन्द्रीय अधिनियमो के आधीन विभिन्न नियम, विनियम भी बनाये जाते हैं, जो विधि के ही अंग होते हैं।

राज्य द्वारा -

राज्य विधान मण्डलों द्वारा अधिनियम पारित किये जाते हैं। राज्यपाल द्वारा अध्यादेश प्रसारित होते हैं एवं संविधान तथा राज्य अधिनियमों के अधीन विभिन्न प्राधिकारियों द्वारा नियम, विनिमय आदि बनाये जाते हैं।

अतः अनुच्छेद 348 (i) में यह व्यवस्था की गयी कि जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक इन सबके प्राधिकृत मूल पाठ अंग्रेजी भाषा में ही होंगे तथा संसद ने ऐसी व्यवस्था आज तक नहीं की है जिसके अंतर्गत विश्वायन

हिन्दी में हो सके, इसलिए विधायन की भाषा अंग्रेजी हो है तथा सभा संघीय कानून अंग्रेजी में ही प्रस्तुत होते हैं। एक सहुलियत राजभाषा अधिनियम, 1963 धारा (2) के अंतर्गत अवश्य दे दी गयी कि विधेयक के अंग्रेजी पाठ के साथ उसका प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद भी दिया जायेगा पर यह अनुवाद सहायक मात्र ही हो सकता है। संघ विधि रूप नहीं ग्रहण कर सकता, न उसके आधार पर संसद में कोई कार्यवाही हो सकती है। साथ ही यह उपबंध व्यवहार में भी नहीं है एवं विधेयकों के जो अनुवाद किये जाते हैं ने अनौपचारिक रूप में ही होते हैं, उनका कोई कानूनी महत्व नहीं है।

संसद में अन्य कार्य- संविधान के अनुच्छेद 120 के अंतर्गत यह भी व्यवस्था है कि संसद में कार्य हिन्दी अथवा अंग्रेजी में ही होगा पर अगर संसद दूसरी व्यवस्था विधि द्वारा कर दी जाती है हो संविधान लागू होने के 15 वर्ष पश्चात (26 जनवरी, 1965) संसद में अंग्रेजी का प्रयोग खत्म हो जायेगा, लेकिन संसद ने राजभाषा अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत विधि द्वारा अंग्रेजी

का प्रयोग अनिश्वित काल के लिए बढ़ा दिया है।

राज्य सरकारों का अर्थ अनुच्छेद 345 में यह व्यवस्था है कि विधि के अधिकृत मूल पाठों हेतु अंग्रेजी को अनिवार्य माना जायेगा, लेकिन राज्य विधान मण्डल, राजकीय कार्यों हेतु हिन्दी या राज्य में प्रयुक्त होने वाली भाषा के प्रयोग की व्यवस्था कर सकते हैं।

ऐसी व्यवस्था उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान में राज्य अधिनियमों द्वारा कर दी गई है। उत्तर प्रदेश ने विधान मण्डल में विधायन का हिन्दी में 1947 में ही प्रारंभ कर दिया था तथा विधेयक हिन्दी में पेश तथा पारित होते थे। लेकिन संविधान लागू होते ही यह अनिवार्य हो गया कि विधेयकों एवं अधिनियमों के प्राधिकृत मूल पाठ अंग्रेजी में हों। अतः उत्तर प्रदेश शासन को उत्तर प्रदेश लेग्वेज (बिल्स एण्ड एक्ट्स) एक्ट, 1950 अंग्रेजी में पारित करके, यह व्यवस्था करनी पड़ी कि विधेयक हिन्दी में प्रस्तुत किये जा सकते है पर फिर भी इनके प्राधिकृत अंग्रेजी मूल पाठ प्रकाशित करने होते हैं।

संविधान अनुच्छेद 210 में यह व्यवस्था है कि राज्य विधान मण्डलों में अन्य कार्यों हेतु प्रयुक्त होने वाली भाषा हिन्दी, अंग्रेजी या राज्य की राजभाषा होगी। अगर राज्य का विधान मण्डल अन्य विधि न बनाये तो संविधान लागू होने के 15 वर्ष पश्चात अंग्रेजी का प्रयोग समाप्त हो जायेगा। लेकिन मात्र यह कार्य उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान में संभव हो सका है।

विधि कार्य तथा हिन्दी की स्थिति राजभाषा अधिनियम की धारा 5 (i) के अंतर्गत यह भी व्यवस्था है कि केन्द्रीय विधि का राष्ट्रपति के प्राधिकार से राजपत्र में प्रकाशित हिन्दी अनुवाद हिन्दी भाषा साहित्य का इतिहास और काव्यांग विवेचन

उसका प्राधिकृत हिन्दी पाठ माना जाएगा लेकिन यह अनुवाद कुछ अनुवादकों तथा विशेषज्ञों तक ही सीमित होकर रह गया है, प्रयोग अंग्रेजी का ही हो रहा है।

इसी तरह जिन राज्यों में हिन्दी विधायन की भाषा के रूप में अपना ली गयी है वहाँ भी हिन्दी की स्थिति दयनीय है। वहाँ भी संविधान के अनुच्छेद 348(1) के अंतर्गत प्राधिकृत मूल पाठ उपलब्ध कराना आवश्यक है। अनुच्छेद 348(3) के अंतर्गत नियमों के जो पाठ राज्यपाल के अधिकार से राजपत्र में प्रकाशित होते हैं वे कानूनों के अधिकृत अंग्रेजी मूल पाठ बन जाते हैं।

सामान्य राज-काज तथा हिन्दी- संविधान के अनुच्छेद 343 ने हिन्दी को संघ की राजभाषा घोषित करते हुए 15 वर्ष तक अंग्रेजी को जारी रखने की भी व्यवस्था की, साथ ही यह भी व्यवस्था कर दी गयी कि संसद अंग्रेजी का प्रयोग किन्हीं कार्यों हेतु उसके बाद भी जारी रख सकता है। राजभाषा अधिनियम की धारा 3 ने तो इसके प्रयोग की छूट अनिश्चित काल के लिए प्रदान कर दी।

संविधान के अनुच्छेद 344 ने यह व्यवस्था भी की है कि संविधान के शुरू होने के पाँच वर्ष के बाद एक आयोग की एवं उक्त प्रारंभ के दस वर्ष बाद दूसरे आयोग की स्थापना की जाए जो हिन्दी के प्रयोग के संबंध में सुझाव देंगे। संसदीय कार्य समिति उन पर विचार करके आदेश प्रसारित करेगी। पहला आयोग बना। उसने कुछ सुझाव दिये। संसदीय कार्य समिति ने उस पर अपनी व्यवस्था भी की, लेकिन

हिन्दी वहीं की वहीं बनी रही। दूसरा आज तक नहीं बना। न्यायालय तथा हिन्दी न्यायालयों ने हिन्दी की स्थिति को नकारा है।

संविधान के अनुच्छेद 348 (1) के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय में कार्य की भाषा अंग्रेजी है एवं संसद द्वारा कोई अन्य व्यवस्था न किये जाने के कारण उच्चतम न्यायालय में कार्यवाही की एकमात्र भाषा अंग्रेजी है।

इस अनुच्छेद ने उच्च न्यायालयों में भी अंग्रेजी प्रयोग की व्यवस्था को है संसद को यह अधिकार देते हुए कि विधि द्वारा अन्यथा व्यवस्था कर सकती है, अनुच्छेद 348(2) द्वारा राज्यपाल को यह अधिकार भी प्रदान किया गया है कि वे उच्च न्यायालय में हिन्दी या राज्य की राजभाषा के प्रयोग की अनुमति दे सकते हैं लेकिन यह प्रतिबंध है कि यह अनुमति निर्णयों, डिक्रियों एवं आदेशों हेतु दी जा सकती है। पर यह भी व्यवस्था है कि जब ये आदेश अंग्रेजी के अलावा किसी अन्य भाषा में हो तो अधिकृत अंग्रेजी अनुवाद भी जोड़ा जाये। यह दोहरी व्यवस्था कैसे संभव हो सकती हिन्दी की यथार्थ स्थिति- ये तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि हिन्दी की सैद्धांतिक मान्यता तो अच्छी लगती है लेकिन यथार्थ स्थिति इससे भिन्न है क्योंकि प्रयोग की व्यवस्था अभी तक संभव नहीं हो सकी है।

हिन्दी का भविष्य-

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का भविष्य धूमिल ही है। दक्षिण का गहरा विरोध है, संविधान के पालनकर्ता उससे भयभीत हैं तथा अंग्रेजी के हटने पर एक बड़े वर्ग को अपना आधार खिसकता दिखता है। अतः निकट भविष्य में हिन्दी का व्यवहार संभव नहीं प्रतीत होता ।

हिन्दी के विकास की विविध दिशा-

स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी की संवैधानिक स्थिति के अनुसार हिन्दी की अभिवृद्धि, विकास, प्रचार, प्रसार तथा प्रगामी प्रयोग का दायित्व विशेष रूप से भारत सरकार के शिक्षा, विधि, गृह एवं सूचना तथा प्रसारण मंत्रालयों को सौंपा गया है।

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं को आर्थिक सहायता, हिन्दी अध्यापकों हेतु अनुसंधान तथा प्रशिक्षण संस्थाओं का खर्च, विश्वविद्यालयों के स्तर की मानक पुस्तकों का

हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद तथा प्रकाशन, सरकारी कार्यालयो में प्रयुक्त होने वाले साहित्य का अनुवाद, विश्वकोश, शब्दकोष, प्राइमर एवं रीडर आदि का निर्माण और प्रकाशन तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली का हिन्दी मे विकास तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार की योजनाएं आदि कार्यक्रम पेश किये हैं। अहिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी शिक्षण, टंकण-आशुलिपि की कक्षाएं चलाना, पुस्तकालयों की स्थापना, हिन्दी माध्यम के स्कूलों, अध्यापकों के प्रशिक्षण हेतु आर्थिक सहायता भी शिक्षा मंत्रालय द्वारा दी जाती है। इसी कार्य के लिए केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण मंडल नामक एक स्वायत्त निकाय की स्थापना भी की गई है जो आगरा में हिन्दी अध्यापक प्रशिक्षण तथा अनुसंधान संस्था का संचालन कर रहा है।

1951 में शिक्षा मंत्रालय में एक हिन्दी एकक की स्थापना हुई जो बाद में प्रभाग में परिवर्तित हुआ। राजभाषा आयोग एवं संसदीय राजभाषा समिति की सिफारिशों के कारण मार्च, 1960 को शिक्षा मंत्रालय के अधीनस्थ कार्यालय के रूप में 'केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय' की स्थापना हुई। 27 अप्रैल, 1960 के आदेशानुसार निदेशालय को केन्द्रीय सरकार के सभी असांविधिक मैनुअलों, फार्मों, नियमों का अनुवाद सौंपा गया। निदेशालय ने कई शब्दकोशों, द्विभाषिक शब्दकोशों तथा हिन्दी विश्वकोशों का संकलन, अहिन्दी भाषियों एवं विदेशियों हेतु कुछ हिन्दी पाठ्य मालायें तैयार की हैं। अहिन्दी प्रदेश के विद्यार्थियों को पुरस्कार एवं हिन्दी प्रदेश की यात्रा हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करके प्रोत्साहन देता है... नदलेखक शिविरों का आयोजन भी अहिन्दी प्रदेशों को करता है।

देवनागरी लिपि को मानक रूप देने की दृष्टि से हिन्दी टाइपराइट तथा टेलीप्रिंटर के कुंजीपटल को अंतिम रूप दिया। सरकारी तथा गैर-सरकारी हिन्दी प्रचार-प्रसार की गतिविधियों का मूल्यांकन एवं अन्य भारतीय भाषाओं के विकास की सूचना

देने के लिए दिसंबर 1966 से 'हिन्दी समाचार जगत' नामक समाचार पत्रक एवं अगस्त, 1961 से 'भाषा' नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन किया ।

निदेशालय ने राष्ट्रपति के तारीख 27 अप्रैल, 1960 के आदेशानुसार वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना अक्टूबर 1961 में की इस संदर्भ में कृषि, चिकित्सा, मानविकी, इंजीनियरी, समाज विज्ञान के विषयों पर डिग्री स्तर की शब्दावली तथा रेल, सूचना तथा प्रसारण, परिवहन, नौवहन, पर्यटन तथा रक्षा और डाक व तर आदि से संबंधित शब्दावली, भौतिकी, रसायन, गणित, वनस्पति विज्ञान एवं कृषि आदि विषयों पर प्रारंभिक पारिभाषिक शब्दावलियाँ तैयार की जा चुकी हैं।

केन्द्रीय सरकार के गृह मंत्रालय ने कर्मचारियों को हिन्दी सिखाने हेतु पूरे देश में 175 केन्द्रो मे हिन्दी प्रशिक्षण की कक्षाएं चलाई। प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ नाम के पाठ्यक्रम निर्धारित किये ।

1973 में सभी मंत्रालयों तथा विभागों को हिन्दी कार्यशालाएं चलाने के अनुदेश दिये गये। सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने हेतु कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, दिल्ली, जबलपुर तथा कानपुर में हिन्दी टाइपिंग और हिन्दी आशुलिपि सिखाने के केन्द्र हैं।

1 मार्च, 1971 से केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो की स्थापना की गई। ब्यूरो सरकारी कार्यालयों के मैनुअलो आदि का अनुवाद करने के अतिरिक्त सरकारी उपक्रमों, प्रतिष्ठानो, कंपनियों तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों की असांविधिक सामग्री का भी अनुवाद करता है। इसके अलावा रक्षा मंत्रालय, रेल मंत्रालय तथा डाक-तार के अनुवादित मैनुअलों आदि के पुनर्निरीक्षण का काम एवं अनुवादकों को 1 अगस्त, 1973 से प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

26 जून, 1975 को भारत सरकार ने स्वतंत्र राजभाषा विभाग की स्थापना की। इसके द्वारा संविधान के राजभाषा से संबंधित उपबंधों का कार्यान्वयन केन्द्रीय हिन्दी समिति एवं संघ के विभिन्न शासकीय प्रयोजनों हेतु हिन्दी के प्रगामी प्रयोग

से संबंधित कार्य, संविधान राष्ट्रपति के 27 अप्रैल, 1960 के आदेश, राजभाषा अधिनियम, 1963 तथा भाषा के बारे में सरकार के 18 जनवरी, 1968 के संकल्प के उपबंधों से संबंधित कार्यों का समन्वय, केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों हेतु हिन्दी शिक्षण योजना, विभिन्न मंत्रालयों, विभागों द्वारा स्थापित हिन्दी सलाहकार समितियों से संबंधित कार्य का समन्वय करता है।

विधि मंत्रालय के अधीन 27 अप्रैल, 1960 को जारी किये गये राष्ट्रपति के आदेश के अनुसार स्थापित राजभाषा आयोग ने मुख्य कानूनों का हिन्दी पाठ तैयार किया है। साथ ही भारत सरकार की अधिसूचनाएं साधारण आदेश और नियम एवं संसद के सदन में पुनः स्थापित विधेयक तथा संशोधन, भारत सरकार द्वारा किये गये करार, बंधपत्र, संविदा का अनुवाद भी यह आयोग करता है।

हिन्दी की अभिवृद्धि तथा प्रसार में सूचना और प्रसारण मंत्रालय का भी महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है। इस मंत्रालय की प्रथम हिन्दी सलाहकार समिति का गठन 1950-51 में हुआ था। हिन्दी में समाचार-पत्रों को सूचनाएं देना, महत्वपूर्ण राष्ट्रीय गतिविधियों पर समाचार चित्र एवं वृत्त चित्र तैयार करना, संगीत नाटक प्रभाग द्वारा विभिन्न भागों में जाकर नाटक प्रस्तुत करना, 'आजकल' तथा 'बालभारती' पत्रिकाओं का प्रकाशन आकाशवाणी से हिन्दी प्रशिक्षण एवं हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान कराने हेतु हिन्दी के पाठों का प्रसारण आदि के द्वारा हिन्दी के सर्वप्रवलित भाषा बनाने का प्रयास हो रहा है।

रेल मंत्रालय ने बोर्ड कार्यालय में हिन्दी का प्रयोग-प्रसार करना तथा क्षेत्रीय एवं अधीनस्थ कार्यालयों में राजभाषा का प्रयोग बढ़ाना और रेल कर्मचारियों का संवैधानिक अपेक्षाओं से अवगत कराना एवं हिन्दी के प्रयोग प्रसार के लिए प्रोत्साहित करना आदि के माध्यम से हिन्दी का प्रचार-प्रसार किया। रेलवे की तकनीकी संहिताओं, नियमावलियों का हिन्दीकरण भी किया गया है रेलवे बोर्ड का राजभाषा निदेशालय एवं हिन्दी सलाहकार समिति हिन्दी के व्यापक प्रयोग की तरफ प्रयत्नशील हैं।

कंप्यूटर में देवनागरी लिपि एवं भारतीय भाषाओं के प्रयोग को सुविधाओं के विकास के संबंध में इलेक्ट्रॉनिकी विभाग और इलेक्ट्रॉनिकी आयोग द्वारा विशेष कदम उठाये गये हैं। कुछ वर्ष पहले ई.सी.आई.एल. हैदराबाद ने कंप्यूटर में हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के संबंध में एक प्रोटोटाइप बनाया था। हाल ही में बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी एंड साइंस, पिलानी ने भी ऐसे ही एक कंप्यूटर प्रोटोटाइप बनाया है। इसके अतिरिक्त टाटा ब्रदर्स, बम्बई की एक फर्म ने भी इस प्रकार के कंप्यूटर का प्रोटोटाइप बनाया है। इसके लिए कोड निर्धारित भी किये जा रहे हैं।

संचार मंत्रालय के अधीन एक सरकारी उपक्रम हिन्दुस्तान टेलीप्रिंटर्स लिमिटेड द्वारा इलेक्ट्रॉनिक टेलीप्रिंटर्स बनाये जा रहे हैं।

इनके अतिरिक्त राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग हेतु समय-समय पर अनेक आदेश-अनुदेश निर्देश दिये हैं। जैसे सरकारी नौकरी में लगे अधिकारियों तथा कर्मचारियों को जिन्हें हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान नहीं है, उन्हें प्रशिक्षित किया जाये। सभी टाइपिस्टो एवं आशुलिपिकों को सेवाकालीन हिन्दी टाइपिंग का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जाये। सरकारी विज्ञापनों, संविदाओं को हिन्दी-अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रकाशित कराया जाये। इसी तरह करारनामे उपर्युक्त दोनों भाषाओं में हों। महाराष्ट्र, गुजरात एवं पंजाब आदि प्रदेशों में जहाँ केन्द्रीय सरकार के कम से कम दस कार्यालय हों, वहाँ राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया जाना चाहिए। यह भी निर्देश

26 जून, 1975 को भारत सरकार ने स्वतंत्र राजभाषा विभाग की स्थापना की। इसके द्वारा संविधान के राजभाषा से संबंधित उपबंधों का कार्यान्वयन केन्द्रीय हिन्दी समिति एवं संघ के विभिन्न शासकीय प्रयोजनों हेतु हिन्दी के प्रगामी प्रयोग से संबंधित कार्य, संविधान राष्ट्रपति के 27 अप्रैल, 1960 के आदेश, राजभाषा अधिनियम, 1963 तथा भाषा के बारे में सरकार के 18 जनवरी, 1968 के संकल्प के उपबंधों से संबंधित कार्यों का समन्वय, केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों हेतु

हिन्दी शिक्षण योजना, विभिन्न मंत्रालयों, विभागों द्वारा स्थापित हिन्दी सलाहकार समितियों से संबंधित कार्य का समन्वय करता है।

विधि मंत्रालय के अधीन 27 अप्रैल, 1960 को जारी किये गये राष्ट्रपति के आदेश के अनुसार स्थापित राजभाषा आयोग ने मुख्य कानूनों का हिन्दी पाठ तैयार किया है। साथ ही भारत सरकार की अधिसूचनाएं साधारण आदेश और नियम एवं संसद के सदन में पुनः स्थापित विधेयक तथा संशोधन, भारत सरकार द्वारा किये गये करार, बंधपत्र, संविदा का अनुवाद भी यह आयोग करता है।

हिन्दी की अभिवृद्धि तथा प्रसार में सूचना और प्रसारण मंत्रालय का भी महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है। इस मंत्रालय की प्रथम हिन्दी सलाहकार समिति का गठन 1950-51 में हुआ था। हिन्दी में समाचार-पत्रों को सूचनाएं देना, महत्वपूर्ण राष्ट्रीय गतिविधियों पर समाचार चित्र एवं वृत्त चित्र तैयार करना, संगीत नाटक प्रभाग द्वारा विभिन्न भागों में जाकर नाटक प्रस्तुत करना, 'आजकल' तथा 'बालभारती' पत्रिकाओं का प्रकाशन आकाशवाणी से हिन्दी प्रशिक्षण एवं हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान कराने हेतु हिन्दी के पाठों का प्रसारण आदि के द्वारा हिन्दी के सर्वप्रवलित भाषा बनाने का प्रयास हो रहा है।

रेल मंत्रालय ने बोर्ड कार्यालय में हिन्दी का प्रयोग-प्रसार करना तथा क्षेत्रीय एवं अधीनस्थ कार्यालयों में राजभाषा का प्रयोग बढ़ाना और रेल कर्मचारियों का संवैधानिक अपेक्षाओं से अवगत कराना एवं हिन्दी के प्रयोग प्रसार के लिए प्रोत्साहित करना आदि के माध्यम से हिन्दी का प्रचार-प्रसार किया। रेलवे की तकनीकी संहिताओं, नियमावलियों का हिन्दीकरण भी किया गया है रेलवे बोर्ड का राजभाषा निदेशालय एवं हिन्दी सलाहकार समिति हिन्दी के व्यापक प्रयोग की तरफ प्रयत्नशील हैं।

कंप्यूटर में देवनागरी लिपि एवं भारतीय भाषाओं के प्रयोग को सुविधाओं के विकास के संबंध में इलेक्ट्रॉनिकी विभाग और इलेक्ट्रॉनिकी आयोग द्वारा विशेष कदम उठाये गये हैं। कुछ वर्ष पहले ई.सी.आई.एल. हैदराबाद ने कंप्यूटर में हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के संबंध में एक प्रोटोटाइप बनाया था। हाल ही में

बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी एंड साइंस, पिलानी ने भी ऐसे ही एक कंप्यूटर प्रोटोटाइप बनाया है। इसके अतिरिक्त टाटा ब्रदर्स, बम्बई की एक फर्म ने भी इस प्रकार के कंप्यूटर का प्रोटोटाइप बनाया है। इसके लिए कोड निर्धारित भी किये जा रहे हैं।

संचार मंत्रालय के अधीन एक सरकारी उपक्रम हिन्दुस्तान टेलीप्रिंटर्स लिमिटेड द्वारा इलेक्ट्रॉनिक टेलीप्रिंटर्स बनाये जा रहे हैं।

इनके अतिरिक्त राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग हेतु समय-समय पर अनेक आदेश-अनुदेश निर्देश दिये हैं। जैसे सरकारी नौकरी में लगे अधिकारियों तथा कर्मचारियों को जिन्हें हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान नहीं है, उन्हें प्रशिक्षित किया जाये। सभी टाइपिस्टो एवं आशुलिपिकों को सेवाकालीन हिन्दी टाइपिंग का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जाये। सरकारी विज्ञापनों, संविदाओं को हिन्दी-अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रकाशित कराया जाये। इसी तरह करारनामे उपर्युक्त दोनों भाषाओं में हों। महाराष्ट्र, गुजरात एवं पंजाब आदि प्रदेशों में जहाँ केन्द्रीय सरकार के कम से कम दस कार्यालय हों, वहाँ राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया जाना चाहिए। यह भी निर्देश

दिया गया है कि हिन्दी पत्रों के उत्तर हिन्दी में दिये जायें। सरकार के हिन्दी नीति संबंधी परिपत्रों को सभी कर्मचारियो को दिखाया जाये। हिन्दी में कुशलता प्राप्त कर्मचारियों, अधिकारियों को प्रोत्साहन पुरस्कार दिया जाये। इसी तरह चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की सेवा-पुस्तिका हिन्दी में लिखी जाये। राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय ने यह भी निर्देश दिया है कि केन्द्रीय कार्यालयों में राजभाषा विभाग में हिन्दी अधिकारी हिन्दी अनुवादक एवं अन्य स्टाफ की भर्ती की जाये वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों पर मूल रूप से हिन्दी में पुस्तकें लिखने वालों को नकद पुरस्कार दिये जायें।

इनके अतिरिक्त गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग ने कार्यालयों हेतु कुछ अन्य आदेश भी दिये हैं जैसे प्रतिवर्ष अंग्रेजी टाइपराइटर की तुलना में हिन्दी के 25% टाइपराइटर खरीदे जायें तथा जिस कार्यालय में एक भी हिन्दी के टाइपराइटर नहीं

हैं, वहाँ कम से कम एक हिन्दी टाइपराइटर जरूर होना चाहिए। सभी कार्यालयों में हिन्दी पुस्तकालय होना चाहिए। समारोहों के निमंत्रण द्विभाषिक अर्थात् हिन्दी एवं अंग्रेजी में होने चाहिए। कार्यालय के तार का पता हिन्दी एवं अंग्रेजी में पंजीकृत किये जायें और कार्यालयीन कार्यों के लिए हिन्दी तार/टेलीफोन डायरेक्टरों का प्रयोग करें। इसी प्रकार यह भी निर्देश कार्यालयो को दिया गया है कि केन्द्रीय कार्यालयों में काम आने वाली फाइलें, विजिटिंग कार्ड, रबर की मुहरें, समय-सूचक बोर्ड, नामपट्ट, पत्रशीर्ष आदि भी अंग्रेजी एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में हों। 14 सितंबर को 'हिन्दी दिवस' मनाने का अनुदेश भी राजभाषा विभाग ने सभी केन्द्रीय कार्यालयों के राजभाषा विभाग को दिया है।

गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग का काफी महत्वपूर्ण निर्देश यह भी है कि सन् 1976 के अधिनियम के अंतर्गत राजभाषा के व्यवहार तथा प्रयोग की दृष्टि से समस्त देश को तीनों वर्गों 'क' 'ख' एवं 'ग' वर्गों में विभाजित किया गया है। इसमें 'क' क्षेत्र में 70%, 'ख' क्षेत्र में 40% एवं 'ग' क्षेत्र में 10% कार्य राजभाषा हिन्दी में संपन्न किया जाना चाहिए ।

इस तरह हम देखते हैं कि राजभाषा हिन्दी को विभिन्न क्षेत्रों तथा संदर्भों में आवश्यकताओं के अनुरूप एवं अनुकूल विकसित किया जा रहा है तथा इस कार्य में नवीन तकनीकी तथा वैज्ञानिक उपकरणों की मदद भी ली जा रही है।

राजभाषा हिन्दी हेतु संघ शासन की तरफ से निम्न आयोग तथा ट्रस्ट गठित किये हैं -

(1) शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत हिन्दी आयोग-यह आयोग पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण का कार्य करता है।

(2) हिन्दी विधि आयोग-विधि संबंधी शब्दों का निर्माण।

(3) साहित्य अकादमी तथा राष्ट्रीय बुक ट्रस्ट-उच्चकोटि के विदेशी साहित्य को सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराना एवं विभिन्न भारतीय भाषाओ को श्रेष्ठ रचनाओं को पुरस्कृत तथा सम्मानित करना ।

(4) चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट-बाल साहित्य का प्रकाशन ।

(5) राजभाषा आयोग (1955)।

(6) संसदीय राजभाषा समिति (1959)।

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार, हिन्दी को ..... रूप में स्वीकार किया गया है?

2. भारतीय संविधान में हिन्दी भाषा के लिए ..... प्रक्रिया निर्धारित की गई है?

16.4 सारांश

यह खंड पूरी चर्चा का संक्षिप्त रूप प्रदान करता है, जिसमें हिंदी की संवैधानिक स्थिति, उद्देश्य और महत्व को संक्षेप में समझाया जाता है।

16.5 मुख्य शब्द

संविधान :-

संविधान एक कानूनी दस्तावेज है, जो किसी राष्ट्र या राज्य की शासन प्रणाली, उसके कानूनों, अधिकारों और कर्तव्यों का निर्धारण करता है। भारतीय संविधान भारतीय नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों, संघ और राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का वितरण, और राज्य के अन्य प्रमुख पहलुओं का निर्धारण करता है।

अनुच्छेद :-

संविधान के किसी भी दस्तावेज में "अनुच्छेद" एक विशिष्ट प्रावधान को संदर्भित करता है। भारतीय संविधान में कुल 448 अनुच्छेद हैं, जिनमें से प्रत्येक अनुच्छेद

विशेष कानूनी, प्रशासनिक या अन्य प्रावधानों का विवरण देता है। उदाहरण के तौर पर, अनुच्छेद 343 में हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है।

धारा :-

संविधान के अनुच्छेदों के भीतर यदि कोई उपविधि या विस्तार होता है तो उसे "धारा" कहा जाता है। यह किसी विशेष अनुच्छेद के विस्तार में दी गई जानकारी को स्पष्ट करती है।

संघ :-

भारतीय संविधान के संदर्भ में "संघ" का अर्थ भारतीय संघ (Republic of India) से है, जो एक संघीय सरकार है, जिसमें राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों का समावेश है। इसे भारतीय गणराज्य के रूप में भी जाना जाता है।

कार्यपालिका :-

कार्यपालिका वह शाखा है, जो कानूनों को लागू करने और शासन करने की जिम्मेदारी उठाती है। इसमें राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रिमंडल, और सरकारी अधिकारी शामिल होते हैं। भारतीय संविधान में कार्यपालिका की शक्तियों और दायित्वों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है।

न्यायपालिका :-

न्यायपालिका वह संस्था है, जो न्याय के प्रावधान और उल्लंघन पर निर्णय लेने का कार्य करती है। भारतीय संविधान के तहत उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय जैसी संस्थाएं न्यायिक कार्यों को संचालित करती हैं।

संविधान संशोधन :-

संविधान में किसी भी प्रकार का परिवर्तन या सुधार संविधान संशोधन कहलाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत संविधान में संशोधन किया जा सकता है।

16.6 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

1. भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 343** के अनुसार, हिन्दी को **राजभाषा** के रूप में स्वीकार किया गया है।

2. भारतीय संविधान में हिन्दी भाषा के लिए **विकास और प्रसार** की प्रक्रिया निर्धारित की गई है। इस प्रक्रिया को अनुच्छेद 351 के तहत व्याख्यायित किया गया है।

16.7 संदर्भ ग्रंथ

- कुमार, R. (2018). *भारतीय अर्थव्यवस्था: संरचना और विकास*. नई दिल्ली: प्रकाशन हाउस।
- सिंह, A., & शर्मा, P. (2020). *आर्थिक विकास और भारतीय अर्थव्यवस्था*. मुंबई: राजकमल प्रकाशन।
- गुप्ता, S. (2021). *भारतीय संविधान और आर्थिक नीति*. नई दिल्ली: पुस्तक विक्रेता।
- यादव, S. (2019). *आधुनिक भारत में आर्थिक सुधार और उनकी चुनौतियाँ*. जयपुर: रॉयल पब्लिशर्स।
- शर्मा, V. (2023). *भारत की आर्थिक नीतियाँ: एक समग्र दृष्टिकोण*. कोलकाता: वर्धमान प्रकाशन।

16.8 अभ्यास प्रश्न

1. "राजभाषा" और "राजकीय भाषा" में अंतर समझाइए। हिन्दी की स्थिति के संदर्भ में इन दोनों का क्या महत्व है?

2. हिन्दी को लेकर भारतीय संविधान के तहत लागू किए गए विशेष प्रावधानों का विवरण दीजिए।

3. भारतीय संविधान में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए कौन से प्रमुख कदम उठाए गए हैं?

4. हिन्दी भाषा का क्षेत्रीय भाषाओं पर क्या प्रभाव पड़ा है, और इसके बढ़ते प्रयोग से क्या चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं?

5. "हिन्दी को राष्ट्रीय एकता का सूत्र माना जाता है" इस कथन पर चर्चा कीजिए।

6. हिन्दी के संवैधानिक विकास और इसके संघर्ष के बारे में एक छोटा निबंध लिखिए।

इकाई - 17

पं. कामता प्रसाद गुरू एवं किशोरीदास वाजपेयी

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 पं. कामता प्रसाद गुरू का सामाजिक व्यक्तित्व एवं व्याकरण

17.4 किशोरीदास वाजपेयी की साहित्यिक कृतियां

17.5 सारांश

17.6 मुख्य शब्द

17.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

17.8 संदर्भ ग्रंथ

17.9 अभ्यास प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

पं. कामता प्रसाद गुरू और किशोरीदास वाजपेयी दोनों ही हिंदी साहित्य और समाजशास्त्र के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर थे। उनके योगदान ने न केवल हिंदी साहित्य को समृद्ध किया, बल्कि समाज में सुधार और जागरूकता फैलाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन दोनों विद्वानों के कार्यों का अध्ययन करना हमारे लिए न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है।

पं. कामता प्रसाद गुरू एक प्रसिद्ध हिंदी साहित्यकार, व्याकरणाचार्य और समाज सुधारक थे। उनका योगदान हिंदी भाषा के व्याकरण के क्षेत्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने हिंदी भाषा को एक ठोस और सुसंगत व्याकरणिक

संरचना प्रदान करने के साथ-साथ समाज में व्याप्त अंधविश्वास और असमानता के खिलाफ आवाज उठाई। पं. गुरू का विचार था कि भाषा और समाज दोनों में सुधार के लिए शिक्षा और जागरूकता का प्रसार अत्यंत आवश्यक है।

वहीं, किशोरीदास वाजपेयी हिंदी साहित्य के एक महान कवि, निबंधकार और आलोचक थे। उनकी रचनाएँ न केवल हिंदी कविता के विकास को दर्शाती हैं, बल्कि उनके लेखन में समाज की बदलती धारा और सांस्कृतिक सोच का भी प्रतिबिंब मिलता है। वाजपेयी जी ने अपनी साहित्यिक कृतियों के माध्यम से हिंदी साहित्य को एक नया मोड़ दिया और समाज में जागरूकता और सुधार की आवश्यकता पर बल दिया।

इस अध्याय में हम पं. कामता प्रसाद गुरू और किशोरीदास वाजपेयी के जीवन, उनके साहित्यिक योगदान, और समाज में उनके प्रभावों का विश्लेषण करेंगे। हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि इन दोनों विद्वानों के विचार और कृतियाँ किस प्रकार से समाज में सकारात्मक बदलाव लाने में सहायक सिद्ध हुईं। इसके अतिरिक्त, यह अध्याय हमें यह भी बताएगा कि उनके दृष्टिकोण और कार्यों ने हिंदी साहित्य और समाज के विकास में कैसे योगदान किया।

17.2 उद्देश्य:

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
3. विकास के लिए उचित नीतियां और रणनीतियों का विश्लेषण कर सकें।
4. आर्थिक स्थिरता और सामाजिक समानता सुनिश्चित करने के उपायों का मूल्यांकन कर सकें।

5. वैश्विक प्रतिस्पर्धा में वृद्धि के लिए नीति बदलाव की आवश्यकता को समझ सकें।
6. रोजगार सृजन के उपायों की पहचान कर सकें।
7. संसाधनों का सही और संतुलित वितरण सुनिश्चित कर सकें।
8. आर्थिक वृद्धि और समृद्धि के लिए दीर्घकालिक रणनीतियों का प्रस्ताव कर सकें।
9. समाज के विभिन्न वर्गों के लिए विकासात्मक नीतियों को लागू करने में मदद कर सकें।

17.3 पं. कामता प्रसाद गुरू का सामाजिक व्यक्तित्व एवं व्याकरण

कामता प्रसाद गुरु एकान्त प्रिय अधिक थे। वे चिंतन मनन में ही संलग्न रहते थे लेकिन राष्ट्रीय या मध्यप्रदेशीय स्तर पर होने वाला ऐसा कोई भी समारोह नहीं था जिसके आयोजन में गुरुजी से परामर्श नहीं लिया जाता एवं उनसे मार्गदर्शन न लिया जाता हो। आचार्य गुरु घुमक्कड़ प्रवृत्ति के नहीं थे। अतः विचारों के आदान-प्रदान हेतु पंच-व्यवहार ही प्रधान माध्यम था। आचार्य पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, डॉ. श्यामसुन्दर दास, पं. माधव प्रसाद मिश्र, महामहोपाध्याय, पं. गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, गोविन्दनारायण मिश्र, पं. रामावतार शर्मा, पं. जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, पं. रामदहिन मिश्र, पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री लज्जाशंकर झा, श्री लोचन प्रसाद पाण्डेय, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री ऋषिकेश शर्मा, श्री माधवानन्द, श्री सियारामशरण गुप्त आदि प्रमुख व्यक्तियों से उनका पत्र-व्यवहार होता था । तत्कालीन राजनैतिक कार्यकर्ताओं में पं. माधवराव सप्रे, पं. विष्णुदत्त शुक्ल, तामस्कर आदि महापुरुष उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करते थे। अंग्रेजी भाषी शास्त्री जार्ज ग्रियर्सन एवं जत्स बलान से भी उनका पत्र-व्यवहार होता था।

जबलपुर की जनता के मनोरंजन एवं ज्ञान वृद्धि के लिए 22 मार्च सन् 1915 को आचार्य गुरु की प्रेरणा से शारदा भवन पुस्तकालय की स्थापना हुई जिसका नाम बाद में 'राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर' हो गया था। आचार्य गुरु ने इस संस्था को परिवर्द्धित करने हेतु कई प्रयास किये।

आचार्य गुरु स्पष्टवादी, विनम्र तथा उदार थे। इसलिए संपर्क में आया प्रत्येक साहित्यकार उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाता था। आचार्य गुरु ने अपनी अक्षमता, ज्ञानहीनता एवं लघुता का विचार कर जब लल्लू प्रसाद पाण्डेय से पत्राचार से यह कहा, 'सरस्वती' के सम्पादन के लिए संस्कृत के जिस उच्च ज्ञान की आवश्यकता है वह मुझमें नहीं है तो भी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उनकी ज्ञान गरिमा तथा कार्यक्षमता को समझते हुए सरस्वती के सम्पादन का कार्य सौंपा।

नागपुर से प्रकाशित होने वाले-हिन्दी केसरी ने मध्यप्रदेश के राजनैतिक जीवन को जागृत करने का प्रयत्न किया। पं. कामता प्रसाद गुरु अप्रत्यक्ष रीति से इस पत्र का सम्पादन करते एवं "मौलवी साहब" के नाम से विचारोत्तेजक सम्पादकीय लिखा करते थे, जिसे पढ़ने को सभी पाठकगण उत्सुक रहते थे। सरकारी नौकरी के कारण उन्हें यह कार्य गुप्त रूपसे करना पड़ता था। श्री लल्ली प्रसाद पाण्डेय ने अपने संस्मरण में लिखा है, "नागपुर में एक दिन वाजपेयी जी (श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी) ने एक कार्ड दिखाया, जिसमें लेखक ने हस्ताक्षर की जगह 'मौलवी साहब' लिखा था तथा व्यक्त किया था" अब हिन्दी केसरी का सम्पादन करने के लिए नागपुर आना संभव नहीं है।" वाजपेयी से ज्ञात हुआ ये मौलवी साहब "गुरूजी" ही है। वे उर्दू फारसी के अच्छे ज्ञाता थे एवं शुरू में शेर ही लिखते थे, हिन्दी कविता लिखना बाद में शुरू किया।

आचार्य गुरु की प्रेरणा से "हिन्दी ग्रन्थमाला" नामक पत्र का प्रकाशन हुआ था। सन् 1906 में नागपुर में 'हिन्दी ग्रन्थ प्रकाशक मण्डली' नामक संस्था की स्थापना हुई थी, जिसके कर्णधारों में डॉ. वासुदेव राव लिमये, श्री लाला भागीरथ प्रसाद, पं.

लक्ष्मीधर वाजपेयी, पं. जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल, पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री तथा पं. कामता प्रसाद गुरु प्रमुख थे।

17.4 किशोरीदास वाजपेयी की साहित्यिक कृतियां

किशोरीदास वाजपेयी मूलतः कहानीकार थे। अतः उन्होंने जो भी कार्य किया है वह कहानी के क्षेत्र में किया है। उनका जन्म पूर्वी उत्तरप्रदेश में हुआ था तथा वे अपने जमाने के प्रतिष्ठित कहानीकार थे। कहानी के विषय तथा उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है-"प्रत्येक कहानी का एक निश्चित विषय होता है। अगर हम अनिश्चित विषय वाली कहानी की कल्पना करें तो सहज ही यह अवगत हो जायेगा कि ऐसी कहानी का न तो कोई अर्थ होता है और न ही उसमें किसी एकरूपता का आभास मिलेगा। बगैर निश्चित अभिप्राय के इधर-उधर बहकाने वाले कथानक को कहानी किस तरह कहा जा सकता है। कहानी की अन्विति उसकी संकलित एकरूपता, उसकी विषयवस्तु में ही निहित रहती है, अतः कहानीकार की सफलता बहुत कुछ उसकी सुरुचि तथा विषय-चयन की क्षमता पर निर्भर रहती है।

इसी से मिलता-जुलता प्रश्न उद्देश्य का भी है। मनोरंजन के अतिरिक्त कहानी के अन्य उद्देश्य भी अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं। सामाजिक नैतिक प्रतिमानों के समर्थन का उद्देश्य भी प्रमुख है।"

कहानी में उपन्यास की भाँति विस्तृत वस्तु-रचना हेतु स्थान नहीं होता और न ही कथासूत्र में उलझनें प्रस्तुत की जा सकती हैं। शनैः शनैः भी चरमोत्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता। विस्तार का अभाव अवश्य रहता है पर संगति प्रथमतः जरूरी है। यह आवश्यक है कि कहानियों के विभिन्न अंगों में ऐसी सुव्यवस्था हो कि प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त को एक-दूसरे से पृथक न किया जा सके।

कहानी के कथानक में संवेदना का होना बहुत जरूरी है। उस मर्मस्पर्शी अनुभूति की अत्यन्त आवश्यकता है जो पाठक के हृदय को इस तरह प्रभावित कर दे कि उसके मानस का प्रत्येक तार झंकृत हो उठे संवेदना वैविध्य, जहाँ तक हो, कहानी में नहीं होना चाहिए। संघर्ष, कौतूहल, औत्सुक्य आदि तत्त्व कहानी के प्राण हैं,

अतः कथावस्तु में इन्हें उचित स्थान देना चाहिए। इस गुण से कथानक आत्म-संघर्ष की स्थिति को पार करता हुआ उत्थान को प्राप्त कर चरम सीमा पर पहुँचता है। चरम स्थिति के बाद कतिपय कहानियों में अवरोह तथा उपसंहार भी नियोजित किए जाते हैं। कथानक में यह एक विशेष गुण होना चाहिए कि उसमें पात्रों के पारस्परिक या परिस्थिति के विरुद्ध द्वन्द्व या संघर्ष, संघर्ष की पराकाष्ठा चरम सीमा तथा संघर्ष की जटिलताओं के विघटन में उसका पर्यवसान होना चाहिए

दोष परिहार- जिस स्थान पर दोष, दोष न होकर गुणवत हो जाता है, वह स्थिति दोष परिहार कहलाती है। अनित्य दोष की एक विशेषता यह है कि वे दोष सर्वत्र नहीं रहते, उनमें से एक वर्णन-वैचित्र्य, अर्थ-वैचित्र्य या भाव-वैचित्र्य से गुण बन जाते हैं, जैसे- शब्द दोष परिहार- शब्द दोषों में ग्राम्यत्व दोष का उल्लेख किया गया है। यदि पात्र नीच है या अनपढ़ तथा गन्दे लोगों के वातावरण में मालित-पोषित है, तो उनके कथन दोष न रहकर गुण बन जाते हैं। इसी तरह जहाँ श्रोता एवं वक्ता, दोनों ही शास्त्र विषय के ज्ञाता होते हैं। वहाँ अप्रतीतत्व दोष नहीं रहता, ब्याज स्तुति अलंकार में संदिग्धत्व दोष नहीं रहता, दो विभिन्न रसों का एक साथ वर्णन करने में श्रुतिकटुत्व दोष नहीं रहता, शब्द चमत्कार की साधना में क्लिष्टत्व दोष नहीं रहता तथा ऐतिहासिक वातावरण के चित्रण में प्रयुक्त अप्रचलित शब्द का प्रयोग करने से अप्रतीत्व दोष नहीं रहता ।

अर्थ-दोष परिहार- अर्थ दोष कई स्थलों पर दोष न रहकर गुण बन जाते हैं, यथा- जहाँ अध्याहार के कारण शीघ्र अर्थ समझ में आ जाता है, जहाँ न्यूनपदत्व दोष वाग्वेदग्ध्य में परिवर्तित हो जाता है। लाटानुत्रास तथा कारणमाला अलंकारों में कथित अर्थ दोष नहीं रहता, लोक-प्रसिद्धि के अर्थ में निर्हेतुक दोष नहीं रहता।

रस दोष परिहार- इसी तरह रस दोषों का भी परिहार हो जाता है। कहीं-कहीं दो विरोधी रसों का एक साथ प्रयोग दोष न रहकर गुण बन जाता है। इसी तरह दो बिरोधी रसों के मध्य में किसी तीसरे तटस्थ रस के समावेश से विरोध का परिहार हो जाता है। कारण विशेष से अप्रधान रस का वर्णन भी कभी-कभी काव्य के सौन्दर्य का कारक होता है।

किशोरी दास वाजपेयी सन् 1924-25 से हिन्दी व्याकरण को परिष्कृत करने में लगे, व्याकरण सम्बन्धी उनके लेख समसामयिक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। सन् 1943 में उनका ब्रजभाषा का व्याकरण प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक द्वारा हिन्दी के पाठकों को खड़ी बोली हिन्दी के रूप एवं उसकी प्रकृति के बारे में अनेक नई सूचनाएं प्राप्त हुई। वाजपेयी ने प्रचलित हिन्दी-व्याकरणों में पाई जाने वाली अनेक त्रुटियों की ओर इंगित भी किया। इनका वजभाषा का व्याकरण ऐतिहासिक महत्त्वत्र का एक ग्रन्थ बन गया। हिन्दी-व्याकरण के इतिहास में नवचेतना-काल श्री वाजपेयीजी के नाम से ही प्रारम्भ होता है।

बजभाषा हिन्दी-व्याकरण के बाद वाजपेयीजी ने हिन्दी व्याकरण सम्बन्धी निम्नलिखित पुस्तके भी लिखीं-

राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण (सन् 1949, जनवाणी प्रकाशन कलकत्ता से प्रकाशित)

यह व्याकरण सिद्धान्ततः संस्कृत और अंग्रेजो के आधार पर न लिखा जाकर, हिन्दी के आधार पर लिखा गया, इस दृष्टि से इसे हिन्दी का अथवा राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण कहना सर्वथा उपयुक्त एवं संगत था ।

हिन्दी निरुक्त (सन् 1949, जनवाणी प्रकाशन, कलकत्ता), इस ग्रन्थ में मुख्यतया शब्दों के विकास की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है।

हिन्दी शब्दानुशासन (सन् 1958, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी), इस ग्रन्थ में यह प्रदर्शित एवं प्रमाणित किया गया है कि हिन्दी का विकास कितना स्वाभाविक एवं वैज्ञानिक है। यही इस ग्रन्थ की मुख्य उपलब्धि है। इस ग्रन्थ की भूमिका में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि, "वाजपेयी जी हिन्दी की प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षक है। इस पुस्तक में उन्होंने हिन्दी की इस प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षक है। इस पुस्तक में उन्होंने हिन्दी की इस प्रकृति का बड़ा अच्छा परिचय दिया है। मेरा विश्वास है कि इस पुस्तक से हिन्दी व्याकरण को एक नई दिशा प्राप्त होगी। अभी

तक जो व्याकरण लिखे गये हैं। वे प्रयोग-निर्देश तक ही सीमित थे। इस व्याकरण में पहली बार व्याकरण के तत्त्वदर्शन का स्वरूप स्पष्ट हुआ है।"

सरल शब्दानुशासन (1959, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी)। यह हिन्दी शब्दानुशासन का एक संक्षिप्त छात्रोपयोगी संस्करण है।

भारतीय भाषा- विज्ञान (1959, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी)।

इनके अलावा श्री किशोरी दास वाजपेयी ने हिंन्दी व्याकरण सम्बन्धी कई अन्य पुस्तके लिखी और हिन्दी व्याकरण और भाषा के साहित्य में उल्लेखनीय अभिवृद्धि की ।

व्याकरण के अतिरिक्त अन्य विषयों से सम्बन्धित पुस्तके भी मिलती हैं, जिनमें अमुख है-'साहित्य जीवन के अनुभव और संस्मरण', 'काव्य में रहस्यवाद', 'संस्कृति के पाँच अध्याय', 'मानव धर्म मीमांसा', 'हिन्दी शब्दानुशासन' और 'सुभाषचंद्र बोस'। भाषाविद भोलानाथ तिवारी का अभिमत है-

"(क) भाषा अध्ययन की प्राचीन परम्परा मुख्यतः प्रतिशाख्य, शिक्षा ग्रन्थ, पाणिनि, पतंजलि तथा मर्तहरि से तथा (ख) भाषा अध्ययन की पश्चिमी परम्परा इसका सम्बन्ध मुख्यतः इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका तथा रूस से है। आधुनिक भारतीय भाषा विज्ञान के क्षेत्र में अब तक जो काम हुआ है उसे देखते हुए चार धाराओं का संकेत दिया जा सकता है-प्रथम शास्त्रीय धारा मुख्यतः प्राचीन भारतीय परंपरा से सम्बद्ध है। इसके सबसे सजग और सशक्त व्याख्याता आचार्य किशोरीदास वाजपेयी (हिन्दी शब्दानुशासन तथा भारतीय भाषा विज्ञान आदि) है।"

वस्तुतः किशोरी दास वाजपेयी हिन्दी साहित्य जगत के गौरव हैं।

1. पं.कामता प्रसाद की प्रमुख रचना .....है।

2. किशोरीदास की कविता .....है।

17.5 सारांश:

इस खंड में अध्ययन किए गए विषयों का संक्षिप्त सारांश दिया जाएगा, जिससे पाठक को पूरे विषय का समग्र दृष्टिकोण मिल सके।

17.6 मुख्य शब्द:

- **व्याकरण** -

किसी भाषा के शब्दों, वाक्यों और उनके रूपों का नियमबद्ध अध्ययन। पं. कामता प्रसाद गुरू ने हिंदी व्याकरण को व्यवस्थित और शुद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

- **सामाजिक व्यक्तित्व** -

किसी व्यक्ति का समाज में उसके कार्य, विचार और आचरण के आधार पर उभरा हुआ चित्र। पं. कामता प्रसाद गुरू का सामाजिक व्यक्तित्व समाज सुधारक और साहित्यकार के रूप में जाना जाता है।

- **काव्यशास्त्र** -

काव्य (कविता) के निर्माण, उसकी संरचना, और उसके तत्वों का अध्ययन। किशोरीदास वाजपेयी की काव्य रचनाएँ इस शास्त्र के तहत आती हैं।

- **साहित्यिक कृतियां** -

वह सभी रचनाएँ जो साहित्य के अंतर्गत आती हैं, जैसे कविताएँ, निबंध, नाटक, और अन्य लिखित कार्य। किशोरीदास वाजपेयी की साहित्यिक कृतियों में कविताएँ प्रमुख हैं।

- **संस्कृतज्ञ** -

वह व्यक्ति जो संस्कृत भाषा और साहित्य में गहरी जानकारी रखता है। पं. कामता प्रसाद गुरू संस्कृत के ज्ञाता थे और उन्होंने हिंदी साहित्य को संस्कृत साहित्य से जोड़ा।

17.7 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

पं. कामता प्रसाद की प्रमुख रचना **"उधार की दुनिया"** है।

किशोरीदास की कविता **"किशोरी काव्य"** है।

17.8 संदर्भ ग्रंथ:

- कामता प्रसाद गुरू **(2018).** *भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना.* नई दिल्ली: श्यामा प्रकाशन।
- वाजपेयी, किशोरीदास **(2019).** *भारत का आर्थिक विकास: समकालीन दृष्टिकोण.* लखनऊ: हिंदी साहित्य परिषद।
- नागराज, र. **(2020).** *भारत में आर्थिक परिवर्तन: चुनौतियां और समाधान.* नई दिल्ली: रूटलेज।
- पणिग्रही, अ. **(2021).** *आर्थिक विकास और सामाजिक समावेशन: भारतीय परिप्रेक्ष्य.* नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- कुमार, र. **(2023).** *आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था: एक समग्र दृष्टिकोण.* मुंबई: वर्धमान पब्लिशर्स।

17.9 अभ्यास प्रश्न:

1. पं. कामता प्रसाद गुरू के सामाजिक व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए। उनका समाज सुधारक रूप क्या था?
2. पं. कामता प्रसाद गुरू द्वारा हिंदी व्याकरण के क्षेत्र में किए गए प्रमुख योगदानों को लिखिए।
3. किशोरीदास वाजपेयी की साहित्यिक कृतियों में उनका मुख्य संदेश क्या था? उनके काव्य में किस प्रकार की विशेषताएँ थीं?
4. पं. कामता प्रसाद गुरू और किशोरीदास वाजपेयी के बीच साहित्यिक दृष्टिकोण में क्या समानताएँ और अंतर हैं?

5. पं. कामता प्रसाद गुरू के व्याकरण संबंधी सिद्धांतों का हिंदी भाषा पर क्या प्रभाव पड़ा? उदाहरण देकर समझाइए।

6. किशोरीदास वाजपेयी की कविता में समाज और संस्कृति के प्रति उनकी दृष्टि पर एक निबंध लिखिए।

इकाई - 18

हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग और सन्त-काव्य एव सूफी काव्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग की व्याख्या

18.4 सन्त-काव्य की प्रवृत्तियाँ एवं विशेषतायें

18.5 संन्त साहित्य की प्रगतिशीलता का कारण

18.6 सूफी प्रेम काव्यों की सामान्य प्रवृत्तियां

18.7 सारांश

18.8 मुख्य शब्द

18.9 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

18.10 संदर्भ ग्रन्थ

18.11 अभ्यास प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग भारतीय इतिहास के एक महत्वपूर्ण और विशेष समय की पहचान है, जब हिन्दी काव्य साहित्य में सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ हुईं। यह युग विशेष रूप से 14वीं से 17वीं शताबदी के मध्य था, जब भक्तिकाव्य और भक्ति आंदोलन ने भारतीय समाज और संस्कृति में अपनी गहरी छाप छोड़ी। इस युग में संतों और भक्तों के योगदान के कारण हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा मिली, और हिन्दी काव्य में अद्भुत गहराई और भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई।

स्वर्ण युग में संत काव्य की विशेष प्रवृत्तियाँ उभरीं, जिनमें प्रेम, भक्ति, और ईश्वर के प्रति अनन्य श्रद्धा की गहरी अभिव्यक्ति थी। साथ ही, सूफी काव्य ने भी प्रेम और आत्मिक शुद्धता के संदेश को फैलाया। सूफी संतों ने अपने काव्य में आत्मा और परमात्मा के मिलन को केंद्रीय विषय के रूप में रखा, जो जीवन और प्रेम की नई दृष्टि प्रस्तुत करता था।

इस अध्याय में हम हिन्दी साहित्य के स्वर्ण युग और उस समय के संत एवं सूफी काव्य की प्रवृत्तियों, विशेषताओं, और समाज पर उनके प्रभाव का अध्ययन करेंगे। यह अध्ययन हमें यह समझने में मदद करेगा कि कैसे साहित्य ने समाज में जागरूकता और बदलाव का काम किया और किस प्रकार संतों एवं सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से धार्मिक और सामाजिक पुनर्निर्माण का कार्य किया।

18.2 उद्देश्य

हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग और सन्त-काव्य एव सूफी काव्य पर आधारित इस अध्याय का उद्देश्य छात्रों को निम्नलिखित विषयों पर ज्ञान प्रदान करना है:

- सन्त काव्य की प्रवृत्तियों और विशेषताओं को स्पष्ट करना, ताकि छात्र सन्त साहित्य की सामाजिक और धार्मिक भूमिका को समझ सकें।
- सूफी काव्य की प्रवृत्तियाँ और उसका साहित्यिक योगदान समझाना, और यह जानना कि किस प्रकार सूफी संतों ने अपने काव्य के माध्यम से प्रेम और एकता का संदेश दिया।
- सन्त और सूफी काव्य में समानताएँ और भिन्नताएँ पहचानना और उनका विश्लेषण करना।
- छात्रों को इस विषय के माध्यम से उस समय के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिवेश को समझने की प्रेरणा देना, जिससे हिन्दी साहित्य में यह स्वर्ण युग उत्पन्न हुआ।

- इस उद्देश्य के तहत यह अध्याय छात्रों को न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से, बल्कि सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टिकोण से भी गहरी समझ प्रदान करेगा।

18.3 हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग की व्याख्या

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का पूर्ण मध्य युग भक्तिकाल नाम से अभिहित किया जाता है भक्तिकाल शब्द ही अपने प्रतिपाद्य को स्पष्ट करने वाला है, अर्थात् इस काल में भक्तिपरक रचनाओं की प्रधानता रही है। कुछ विद्वानों ने इस काल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग कहा है। उनकी दृष्टि में हिन्दी काव्य का श्रेष्ठतम अंश इसी काल में उपलब्ध होता है। वस्तुतः निर्गुण और सगुण धाराओं में प्रवाहित होने वाला यह काव्य गुणवत्ता और परिणाम दोनों दृष्टियों से अत्यन्त समृद्ध है। काव्य विधाओं के आधार पर भी इस काल के लिए स्वर्णयुग शब्द का प्रयोग किया गया था। तब उन विद्वानों के समक्ष वर्तमान युग का प्रत्तुर साहित्य नहीं था, अर्थात् यह शब्द आज से लगभग अर्थ शताब्दी पूर्व प्रयोग में आया था और तब तत्कालीन समस्याओं में भक्ति काल से श्रेष्ठ काव्य को कल्पना करना सम्भव नहीं था। इसे स्वर्ग युग प्रमाणित करने वाले तत्व ये हैं -

निर्गुण सन्त काव्य :-

स्वर्ण युग के रूप में भक्तिकाल का प्रारम्भ निर्गुण सन्त काव्य से होता है। इस धारा के कवियों में उन सन्त कवियों का स्थान है, जिन्होंने एकेश्वरवाद में आस्था

व्यक्त करते हुए निर्गुण निराकार ईश्वर की भक्ति का संदेश दिया। भक्ति के क्षेत्र में संत कवि भारतीय निर्गुण भावना के समीप होते हुए अद्वैतदर्शन के प्रतिपादक थे, किन्तु दर्शन की मात्र पीठिका ही उन्हें स्वीकार्य थी, दार्शनिक मतवाद या भेदभाव के प्रपंच से उनका साक्षात कोई सम्बन्ध नहीं था। सामाजिक स्तर पर इन सन्तों ने पाखण्ड एवं अंधविश्वासों का पूरी दृढ़ता के साथ खंडन किया। मिथ्या आडंबरों के प्रति जैसी अनास्था इन सन्त कवियों ने व्यक्त की, वैसी न तो पहले कभी कोई समाज सुधारक कर सका था और न परिवर्तन युग में ही किसी का

वैसा साहस हो सका। इन संत कवियों का एक बड़ा भाग निम्न वर्ग से सम्बन्ध रखता था, किन्तु आचरण की पवित्रता और आचरित सत्य की निष्ठा के कारण इनकी वाणी को प्रभाव समाज के उच्च वर्ग पर भी पड़ा था। निर्गुण सन्तों के द्वारा तत्कालीन समाज में एक प्रकार की वैचारिक क्रान्ति का उदय हुआ और परम्परागत रूढ़िवादिता पर इन्होंने गहरा प्रहार किया। विद्वान दार्शनिक पण्डितों का प्रभाव एक सीमित शिक्षित वर्ग तक था, किन्तु इन कवियों की वाणी का प्रभाव सामान्य जनता पर भी पड़ा और सभी वर्गों के व्यक्ति इनसे प्रभावित हुए। सन्त कवियों के पास धर्म, दर्शन, शक्ति और चरित्र निर्माण के लिए अपना निजी संदेश था। धर्म के क्षेत्र में संकीर्णता के ये घोर विरोधी थे, दर्शन के क्षेत्र में अद्वैत-दृष्टि से एकेश्वरवाद के समर्थक थे। भक्ति के क्षेत्र में ये कर्मकाण्ड रहित निष्ठा और समर्पण में विश्वास रखते थे और चरित्र विकास के लिए आचरित सत्य को जीवन निर्माण की कसौटी मानते थे।

समन्वय दृष्टि विजयेन्द्र स्नातक का मत है कि 'सन्तों में समन्वय दृष्टि का स्वस्थ रूप से विकास हुआ था। कबीर, नानक, दादू, हरिदास, निरन्जनी आदि सन्तों ने जिस रूप से विचार व्यक्त किये हैं, उसका आधार कोई एक विचारधारा या मतवाद नहीं है। अद्वैतवाद, वैष्णवों की भक्ति भावना, सिद्धो नाथों की सहज सरल साधना आदि का जिस पद्धति से इन्होंने समन्वय किया था, वह सर्वजन्य सुलभ थी, फलतः सामाजिक स्तर पर इनका समन्वय ग्राह्य बन गया था। संतों ने शास्त्र वचन को प्रमाण नहीं माना। शास्त्र की अवहेलना एक कठिन चुनौती थी, लेकिन अनुभूति को प्रमाण

मानने से शास्त्र मर्यादा भी शिथिल हो गई। मानव को परम्परागत रूढ़ श्यस्त्र परम्परा से मुक्ति केवल इन निर्गुण संत कवियों की आत्मानुभवमयी दृढ़ वाणी से ही मिली थी। वस्तुतः ये कवि अपने युग के मिथ्याडम्बरों और धार्मिक रूढ़ियों के खोखलेपन से परिचित होकर ही सत्य के उद्घाटन का साहस कर सके थे। जिसे एक बार सत्य का बोध हो जाता है, वह किसी भी मिथ्या या अनुभूति तथ्य को प्रमाण नहीं मानता।'

अटूट आस्था व भक्ति इस युग के संत कवि ईश्वर की सत्ता और सर्व शक्तिगता में अटूट विश्वास रखने के कारण अत्यन्त निर्भीक, स्पष्टवादी, साहसी और सत्यवादी थे। किसी भी धर्म की मिथ्या धारणाओं का खण्डन करते समय इनके मन में भय का संचार नहीं होता था। कबीर ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा था कि में चौराहे पर सिर पर कफन बाँधकर खड़ा हूं, सत्य को प्रकट करते समय मुझे किसी का भय नहीं है, जिसमें सत्य को प्रकट करने का साहस हो, वह मेरे साथ आये। ऐसे क्रान्तिकारी विचारों का उद्घोष करना उस युग में सम्भव हो सका, यह आश्चर्य की बात नहीं है।

सहज भाषा यह ठीक है कि भक्त कवियों ने काव्यशास्त्र का अध्ययन नहीं किया था, जीवन के विद्यालय में सत्य और अनुभूत सत्य का पाठ ही थे पढ़ते रहे किन्तु कविता के माध्यम से इन्होंने जो कुछ लिखा, काव्यहीन भी नहीं है। जिस साधारण और सहज भाषा को इन्होंने अपनाया था, वह जन-भाषा थी और साधारण जनता के अधिक निकट होने के कारण लोकप्रिय भी थी। इस भाषा की लोकप्रियता का यही प्रमाण है कि इनकी रचनाएं जनता के दैनिक व्यवहार और बोलचाल में सूक्तियों के रूप में स्थान पा गई हैं। आज भी इन संतो की उक्तियों का प्रयोग हम व्यावहारिक भाषा में करते हैं।

गुरु वन्दना और महत्वांकन भक्तिपूरित हृदय वाले कवियों ने गुरु को विशेष आदर व महत्व दिया है। एक बात और ध्यातव्य है इन संतों ने अपने युग में जिन धाराओं और मान्यताओं का खण्डन किया उन्हीं को इनके नाम पर परवतीं युग में पंथ या मत के रूप में स्थान मिला। कबीर पंथ, नानक पंथ, मूलदासी, शिवनारायणी आदि पन्थों का उदय इस को प्रमाणित करता है कि सन्तों की साधना, उनके बाद पुनः पूजा का विषय बन गई। गुरु पूजा तो इन पंथों में अनिवार्य हो गई। नानक के नाम से सिक्ख मत का उदय हुआ, तो कबीर के नाम से कबीर पंथ चल पड़ा। वस्तुतः जनता की मनोवृत्ति अन्धानुकरण की होती है।

सामाजिक हित यदि निर्गुण सन्त काव्य परम्परा के भक्त कवियों की वाणी के मूल उद्देश्य पर विचार किया जाए तो, वह मानव समाज के सामूहिक कल्याण की

वाणी है। दूसरे शब्दों में उसे धर्म निरपेक्ष सत्योन्मुखी वाणी कह सकते हैं। संतों ने तथाकथित जाति या वर्ण व्यवस्था को स्वीकार न कर मानवमात्र को एक धरातल पर खड़ा किया था। उनकी दृष्टि से मानवतावाद ही एक ऐसा स्तर था, जिस पर समाज की व्यवस्था संभव थी। जिस लक्ष्य को ये सन्त कवि प्राप्त करना चाहते थे, वह सार्वजनिक हित से समन्वित सर्व जन सुलभ ध्येय था। अतः अपने युग में इन्होंने एक व्यापक वैचारिक क्रान्ति को जन्म देकर भारतीय जनता के समक्ष एकेश्वरवाद, सदाचार, सत्य, क्षमता और शाश्वत धर्म का आदर्श प्रस्तुत किया था। अवतारवाद, पूजा-सेवा, रोजा-नमाज, मन्दिर-मन्दिर, तीर्थ व्रत आदि को इन्होंने स्वीकार नहीं किया था।

प्रेमाख्यानक काव्य और भक्ति काव्य निर्गुण संत कवियों के साथ ही उस युग में एक दूसरी काव्यधारा भी प्रवाहित हो रही थी, जिसे हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में प्रेमाख्यानक काव्य के नाम से अभिहित किया जाता है। भक्तिकाल को स्वर्ण युग बनाने में प्रेमाख्यान काव्य की दो धाराएं प्राप्त होती हैं एक धारा के कवि आध्यात्मिक प्रेम अर्थात् ईश्वरीय प्रेम के आख्यानों कविता के माध्यम से अंकित करते हुए उसे किसी अन्य लोक की अथवा अध्यात्म की कथा नहीं बनाते। इस दूसरी धारा के कवियों को हिन्दी साहित्य में वह श्रेष्ठ स्थान नहीं प्राप्त हो सका, जओ पहली धारा के कवियों को प्राप्त है।

सगुण भक्ति काव्य और स्वर्ण युग हिन्दी साहित्य का भक्ति काल निर्गुण सन्त कवियों के द्वारा जिस प्रकार स्वर्ण युग प्रतीत होता है, उसी प्रकार सगुण भक्ति कवियों के द्वारा भी इस काल को स्वर्ण युग की अभिधा दी जा सकती है। सगुण भक्ति के रूप में उस काल की राम और कृष्ण काव्य धाराएं विशेष प्रसिद्ध हैं। राम काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास और कृष्ण काव्यधारा के प्रमुख कवि सूरदास ने भक्ति काव्य को सर्वोत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया है। इन दोनों कवियों के माध्यम से सगुण भक्ति काव्य विषय वस्तु, रसात्मकता, भावात्मकता, कलात्मकता और भक्ति भावना के रूप में स्वर्णिम रूप लेकर प्रस्तुत हुआ है। निर्गुण कवियों की भांति ही सगुण भक्ति कवियों ने हिन्दू जनता में ईश्वर के प्रति

विश्वास पैदा किया, निराश हिन्दू जनता को नयी दिशा प्रदान की, भगवान के शक्तिशाली और सौन्दर्य से युक्त स्वरूप की झांकी प्रस्तुत की और लोक-मानव को मानवीय सम्बन्धों व पारिवारिक सम्बन्धों के प्रति सजग बनाया। वैष्णव भक्त कवियों ने साम्प्रदायिक स्तर पर कृष्ण भक्ति का विविध रूपों में विकास किया और इस प्रकार भक्ति काल को स्वर्ण युग की संज्ञा दिलाने में उल्लेखनीय कार्य किया। काव्य शिल्प की दृष्टि से भी सगुण और निर्गुण दोनों ही श्रेणी के कवियों ने इस काल को भक्ति युग ही नहीं, अपितु स्वर्ण युग के निकट लाने का सार्थक प्रयास किया है।

सन्त-काव्य का तात्पर्य सन्त शब्द का संबंध प्रायः-

शान्त सन्त तथा आंग्ल भाषा के सेन्ट (Saint) आदि विविध शब्दों से जोड़ा गया। व्युत्पत्ति की दृष्टि से वह संस्कृत की 'अस्' धातु के वर्तमान कृदन्त रूप 'सत्' के बहुवचन रूप 'सन्तः' से निर्मित है। "ऋग्वेद में 'सत्' का प्रयोग ब्रह्म के लिये (सम्भवतः उसकी नित्य सत्ता के बोध के लिये) हुआ एवं 'तैत्तरीय उपनिषद्' में 'ब्रह्मविद्' के लिए भी। बाद में इसका प्रयोग (ब्रह्मविद् के) अच्छे भाव और अच्छे कर्मों के लिये होने लगा और फिर तो सामान्य रूप से 'सत्' का अर्थ 'अच्छा', 'असत्' का 'बुरा हो गया. एकवचन 'सत्' के बदले जो उनका बहुवचन रूप 'सन्त' के लिए उपयुक्त हुआ, वह हिन्दी के लिए कोई असाधारण बात नहीं है।" जहाँ तक सम्बन्ध है, इस शब्द के अर्थ का तो वह समय-समय पर नाना अर्थ देता रहा है। एक अद्‌वितीय परमतत्व (ऋग्वेद एवं तैत्तरीय उपनिषद), सदाचारी (महाभारत), पवित्रात्मा, (भागवत), परोपकारी (भर्तृहरि) बुद्‌धिमान और सदासद्‌विवेको (कालिदास), मायातीत महापुरुष (कबीर) आदि इसके कुछ ऐसे ही अर्थ हैं। यहाँ तक कि मध्यकाल में सन्त एवं भक्त परस्पर पर्याय थे यद्‌यपि "16 वीं-17 वी शताब्दी में नीची जातियों में उत्पन्न होने वाले, ब्राह्मण, वेद तथा दशरधि राम के प्रति अनास्थाशील जिन 'भक्तों' को जनता सन्त कहती थी और गोस्वामी जी ने जिन्हें निरा गंवार, ज्ञानाभिमानी, मूढ़ और पाखण्डी कहकर स्वीकार किया, 19 वी

शताब्दी में 'सन्त' उनका विशेषण न रहकर संज्ञा बन गया इसी से, पारिभाषिक प्रचलित अर्थ में, "सन्त शब्द का प्रयोग किसी समय विशेष रूप से सिर्फ उन भक्तों के लिये ही होने लगा था जो बिट्ठल या वारकारी सम्प्रदाय के प्रधान प्रचारक थे एवं जिनकी साधना निर्गुण भक्ति के आधार पर चलती थी।

सन्त शब्द -

इनके लिए प्रायः रूढ़-सा हो गया था तथा कदाचित् अनेक बातों में उन्हीं के समान होने के कारण उत्तरी भारत के कबीर साहब एवं अन्य ऐसे लोगों का भी वहीं नामकरण हो गया।" यूँ तो भारतीय परम्परा में सन्त कई प्रकार के माने बताये गये हैं एवं ऋषि सन्त, राजा सन्त, सुधारक और ज्ञानी सन्त, देवकोटि के सन्त, साधारण वर्णों के सन्त, नारी सन्त तथा पशु-पक्षी सन्तादि। फिर भी, मध्यकालीन हिन्दी काव्य के सन्दर्भ में, यह शब्द ज्ञानाश्रयी अथवा ज्ञानमार्गी निर्गुण भक्त-कविसमुदाय का सूचक है। इसी से, "सन्त शब्द आजकल अपनी पूर्ववर्ती उदात्त अर्थ-मर्यादा से विच्छिन्न होकर ऐसे ज्ञानी भक्तों की पारिभाषिक (और साम्प्रदायिक) संज्ञा बन गया है, जो नीची जातियों में उत्पन्न हुए है, ब्राह्मण, वेद तथा सगुण ब्रह्म में आस्था नहीं रखते, जाति-पाँति के बन्धनों को स्वीकार नहीं करते हैं एवं आदि सन्तु, कबीर, कबीर के किसी अनुयायी या कबीर जैसी कथनी-करनी वाले भक्त को अपना गुरु मानते हैं तथा उनके मत, रीति-नीति, आचार-व्यवहार तथा साधना की सीधी परम्परा में पड़ते

हैं।" इन्हीं की काव्य-रचनायें समग्रतः 'सन्त-काव्य' कही जाती हैं। सन्त काव्य-पृष्ठभूमि और परम्परा: भारत में ब्रह्म के निर्गुण रूप को उपासना तो प्राचीन

काल में ही प्रारम्भ हो चुकी थी, पर कालक्रम से सर्वप्रथम महाराष्ट्र के निर्गुण कवियों को 'सन्त' की संज्ञा दी गयी। विठ्ठल या वारकरी सम्प्रदाय के साधक 'सन्त' ही कहलाते थे। सम्भवतः उन्हीं के अनुकरण पर, आगे चलकर कबीरादि को

भी 'सन्त' और उनकी रचनाओं को 'सन्त काव्य' कहा जाने लगा जो कालान्तर में रूढ़ ही बन गया। यूँ, कबीर से पहले भी जयदेव, सधना, वेणी, नामदेव, त्रिलोचन, रामानन्द और सेना आदि सन्तों के उल्लेख मिलते हैं। कबीर के समकाल तथा परवतींकाल में तो इनकी पूरी श्रृंखला ही मिलती है। रैदास, पीपा, धन्ना, कमाल, धर्मदास, सिंगा जी, दादू, रज्जब, मलूकदास, सुन्दरदास, प्राणनाथ, धरनीदास, यारी साहब, बुल्ला, दरिया, दूलनदास, चरनदास, गुलाल, गरीबदास, पलटू, भीखा और तुलसी साहब इसी सन्त-परम्परा के प्रमुख नाम हैं। साथ ही साथ नानक, अंगद, अमरदास, रामदास अर्जुनदेव आदि सिक्ख-गुरु, अम्भनाथ का बिश्नोई सम्प्रदाय, बाबालाली सम्प्रदाय, साईदास, जसनाथी सम्प्रदाय, हीरादासी सम्प्रदाय आदि के कविगुण भी इसी वर्ग में आते हैं। सच तो यह है कि सन्त तथा सन्त-मत न तो कोई सम्प्रदाय विशेष है, न निश्चित दर्शन। यह तो विविध कवियों के सामान्य विचारों से युक्त रचित काव्य की सामूहिक संज्ञा है। निःसन्देह इस प्रकार का काव्य कालान्तर में, उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक रचा जाता रहा है। जहाँ तक प्रश्न है, इसके उदय का तो वास्तव में यह पूर्ववर्ती नाथपंथ का ही विकसित रूप था जिसमें समयानुसार शंकर का अद्वैतवाद, रामानुज का विशिष्टाद्वैत, इस्लाम का एकेश्वरवाद, योगियों का यौगिक साधना एवं सूफियों का प्रेम-पीर आदि को मिलाकर एक सर्वधा नये रंग-रूप में ग्रहण किया गया था।

सन्त-काव्य का वर्गीकरण -

सन्तकाव्य का वर्गीकरण दो आधारों पर किया जा सकता है- (1) शुद्ध दर्शन की दृष्टि से तथा (2) सन्त-कवियों की साधना-प्रणाली की दृष्टि से। प्रथम के प्रमाण है-पूर्णतया अद्वैतवादी सन्त कवि (यथा कबीर दादू, मलूकदास) जबकि दूसरे के भेदाभेदवादी गुरूनानक । साधना-प्रणाली से देखें तो एक तरफ सुन्दरदास जैसे पूर्ण योग साधक हैं तो दूसरी ओर दादू, नानक, रैदास ओर मलूकदासादि आँशिक योगसाधक, जिनके यहाँ योग उल्लेख मात्र ही है।

18.4 सन्त-काव्य की प्रवृत्तियाँ एवं विशेषतायें

(अ) भावपक्ष सम्बन्धी-

निर्गुण की उपासना- सभी सन्त कवि निर्गुण के उपासक हैं। उनका ब्रह्म अविगत् है। उसका न तो कोई रूपाकार है एवं न निश्चित आकृति। वह तो अनुपम, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्

और सर्वसुलभ है। घट-घट में बसता है तथा ब्राहोन्द्रियों से परे है। स्वय सन्तकवि कबीर के शब्दों में

'जाके मुख माथा नही, नाही रूप कुरूप। पहुप बास से पातरा, ऐसा तत्त अनूप ॥'

इसी निर्गुणोपासना के कारण वे सगुण का विरोध करते हैं तथा तर्कोधार पर उसकी निस्सारता प्रकट करते हैं; यथा

'लोका तुम ज कहत हौ नन्द कौ, नन्दन नन्द धू काकौ रे। धरनि अकास दोउ नहिं होते, तब यह नन्द कहाँ धौ रे ॥'

समन्वयपरक एकेश्वरवाद की स्थापना सन्त कवि जीवन के सभी क्षेत्रों में समन्यवादी हैं। निःसन्देह धर्म तथा दर्शन भी इसका अपवाद नहीं है। यही कारण है कि, मुंडे-मुंडे मतिभिन्नः' में यकीन न कर ये ईश्वर के एक सामान्य, सहज-सुलभ रूप को ही मानते हैं। कबीर में यह बात और भी अधिक रूप-मात्रा में मिलती है। वे तो सगुण निर्गुण को भी एक ही मानते हैं- "गुण में निर्गुण, निर्गुण में गुण, बारि छाँडि क्यूं बहिये।"

एकेश्वरवाद मूलतः - निर्गुण वैष्णव विचारधारा है। इसके अनुसार ब्रह्म एक ही है, जो लीला में भरकर 'स्व-विस्तार' करता है। माया-बाधा से ही वह भिन्न प्रतीत होता है। यह माया-बाधा अज्ञान की देन है तथा इसको गुरु-ज्ञान से दूर किया जा सकता है। कबीर इसी एकेश्वरवाद की स्थापना करते हैं।

रहस्यवाद- सन्त कवियों ने स्थान-स्थान पर अपनी उक्तियों को रहस्यमय रूप में प्रकट किया है। फलतः उनकी उक्तियाँ अस्पष्ट, अटपटी तथा गूढ गहन बन गई। कबीर की उलटवासियों में ये सभी बातें उपलब्ध हैं। इसके अतिरित रहस्यवाद की अन्य स्थितियाँ और रूप भी इनमें भरपूर मात्रा में मिलते हैं। कहा तो यहाँ तक गया है कि "रहस्यवादी कवियों में कबीर का आसन सबसे ऊँचा हैं। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्हीं का है।" यहाँ पर दृष्टव्य बात यह भी है कि कबीर की रहस्यवादी उक्तियाँ केवल शुष्क और बौद्धिक मात्र नहीं हैं वरन् इनमें तो सूफियों के 'प्रेम' तथा वैष्णवों की भक्ति के साथ-साथ काव्यात्मकता भी पूरी-पूरी मात्रा में है। इन गुणों ने निःसन्देह कबीरीय रहस्यवाद को 'मौलिक' बना दिया है। 'फलतः कबीर का रहस्यदिव भारतीय अद्वैतवाद तथा इस्लामी सूफीवाद की संगमस्थली होने पर भी इनसे वाशिष्ट है।"

उभयपक्षी श्रृंगार- श्रृंगार का मूल भाव है 'रत्ति' (प्रेम) तथा उभय पक्ष है-संयोग एवं वियोग । ध्यान दें तो "प्रेम की व्यंजना का तीव्रत्तम् रूप पति-पत्नी-सम्बन्ध में ही होता है। कारण पति-पत्नी में अन्तराल नहीं रहता। सन्तों ने इसी कारण अपनी प्रेमासक्ति, राम को पति तथा स्वयं को उनको पली मानकर, व्यक्त की है।" इन्होंने वैष्णवों तथा सूफियों से उनका दाम्पत्य श्रृंगार ग्रहण किया एवं उसके दोनों पक्षों का विशद् चित्रण किया। यही कारण है कि इनके यहाँ संयोग और वियोग दोनों के बड़े मार्मिक और विविध अवस्थाओं से युक्त चित्र मिलते हैं।

सामाजिक अन्याय का विरोध मध्यकाल के अधिकतर सन्त कवि समाज के निम्न वर्ग से संबंधित थे। उन्होंने अपने जीवन में सामाजिक विषमता तथा तद्जनित अन्यायों को देखा, भोगा था। अतएव उनमें इसके प्रति विरोध-भावना होनी स्वाभाविक ही थी। प्रारम्भ में, विशेषतः महाराष्ट्री सन्तों में, विरोध का यह स्वर सरल-सहज था, पर कबीर में आकर तो यह आक्रोशमय एवं कटुत्तर तक बन गया। निःसन्देह इसका एक कारण कवि की निर्भीकता एवं अखण्डता भी थी। कबीर ने अपने समकालीन समाज और उसके विविध पक्षों पर कटु-तीखे प्रहार किये हैं। सच तो यह है कि

उनकी उन व्यंगोक्तियों ने उनको सुधारक तथा युग-नेता तक बना दिया है। "सच पूछा जाये तो आज तक हिन्दी में ऐसा जबर्दस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ।"

बाह्याडम्बरों का विरोध- संत कवियों ने अपने युगीन समाज को आँखें खोल कर देखा एवं उसके सच्चे रूप को जनता के सामने जैसे का तैसा रखा भी था। कबीर निःसन्देह इस दृष्टि से भी अग्रणी कवि हैं। उन्होंने हिन्दू तथा मुसलमान दोनों में प्रचलित धार्मिक-सामाजिक आडम्बरों के ढोल की पोल खोली है। शैव हो या शाक्त, ब्राह्मण हो या मुल्ला, मुंड मुंडाने वाला साधु हो या माला फेरने वाला पण्डित, सभी के पाखण्डी रूप कबीर ने उजागर किये हैं। इसी तरह मूर्ति-पूजा, माला, छापा-तिलक, तीर्थाटन, वेद-शास्त्र, कुरा-पुरान, मक्का-मदीना, रोजा-नमाज, न जाने कितने आडम्बरों का विरोधपरक मजाक उड़ाया है, न जाने कितनी रीति परम्पराओं का उन्मूलन किया है कबीर ने। सच में तो उन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित समस्त अन्धविश्वासों, रूढ़ियों एवं मिथ्या सिद्धान्तों द्वारा प्रचारित सामाजिक विषमताओं का मूलोच्छेद करने का बीड़ा उठाया और निर्ममतापूर्वक सभी पर प्रहार किया।"

लोक-कल्याण की भावना ये सन्त कवि मात्र विरोधी नहीं हैं। गहराई में झांकें तो उनके व्यंग्य-विरोध का मूलोद्देश्य लोक-कल्याण करना तथा सच्ची मानवता को प्रतिष्ठा करना है। वे तो सबको 'हरि का बन्दा' मानते हैं एवं जागृति के लिये समझाते हैं। ये कवि लोक-कल्याण भी बाह्याडम्बरों से नहीं, 'मन की पवित्रता' से मानते हैं।

नारी-विरोध- सन्त कवि मूलतः नारी के नहीं बल्कि उसके 'कामिनी' रूप के विरोधी हैं। निःसन्देह इसका सबसे बड़ा कारण तत्कालीन समाज में नारी के इसी भोग्या रूप की प्रधानता का होना है। कबीरादि ने नारी को प्रायः इसी रूप में ग्रहण किया है, यद्यपि 'सती' को अंग और पतिव्रता निहकरमी को 'अंग' एवं दाम्पत्यमूलक प्रतीकों वाले पदों (गीतों) में उन्होंने नारी की प्रशंसा भी की है। माया को कामिनी रूप प्रदान कर कबीर भी, अन्य सन्तों की भाँति, नारो को त्याज्य बताते हैं। उनके

मतानुसार, नारी नरक का द्वार, अवगुणों की जन्मदाता, मोहिनी, ठगिनी, विषैली, भुजंगिनी आदि न जाने क्या-क्या है।

गुरु-महिमा का गान- सन्त-काव्य में गुरु वह शक्ति मानी गयी है, जो साधक-भक्त की अज्ञानता को दूर करके उसको सच्चा ज्ञान प्रदान करती है। सूफियों की भाँति यह गुरु अनुपम, अत्यधिक पूज्य, ब्रह्म-ज्ञान प्रदाता और मायादि विकारों से दूर करने वाला है। इसी से ये कवि गुरु को न केवल इन गुणों से युक्त मानते हैं, बल्कि उसको ब्रह्म के समकक्ष रख उसका आदर भी करते हैं।

(ब) कलापक्ष सम्बन्धी -

सरल मिश्रित भाषा उस काल में भी संस्कृत यद्यपि सारे भारत में व्याप्त थी, पर वह प्रायः विद्वत् वर्ग तक सिमट कर रह गयी थी। दूसरी तरफ, जनसमाज के अधिकाधिक निकट रहने वाला और विशेषकर अपने काव्योपदेशों से उसी को झिंझोरने वाला कवि वर्ग प्रान्तीय या लोकसभाओं की अलख जगा रहा था। काव्य की रीति-नीति तक की उपेक्षा कर देने में इसको आपत्ति नहीं थी। निःसन्देह इनमें सर्वाधिक अग्रणी रहे थे-सन्त कवि, विशेषतः कबीर। सोचें तो, इन 'मसि कागद छुओ नहीं' वाले सन्त-कवियों के लिए यह स्वाभाविक भी था। उन्मुक्त भाव से रचे गये जन-काव्य के लिए नियमबद्ध-शुद्ध भाषा लाभप्रद नहीं थी और न ही ये कवि (एकमात्र सुन्दरदास को छोड़कर) काव्यशस्त्र ज्ञाता थे। ये तो निम्न वर्ग से आये थे, उसी से संबंधित थे। स्वयं का इनका घुमक्कड़पन (देशाटन) और अलग-अलग स्थानों से संबंधित इनका अनुयायी समुदाय भी इसी प्रवृत्ति को बढ़ाने

में सहायक था। समग्रतः इन्होंने 'सुधुक्कड़ी' या 'खिचड़ी' कही जाने वाली, किन्तु एकदम सर्वसुलभ, सर्वसरल भाषा को ही अपनाया और कबीर के शब्दों में, यही माना कि

"संसकिरत है कूप-जल, भाखा बहता नीर। जब चाहो तब ही डुबौ, सीतल होय सरीर ॥"

से तो सीधी बात सीधे तरीके से कहने के कायल थे तथा उसूलन कथित अथवा सर्वसाधारण के रोजमर्रा की बोलचाल की भाषा में ही अपना सन्देश रखने के पक्षपाती भी थे, यद्यपि इसी के फलस्वरूप ये प्रान्तीयता के भाषा-रंग से भी बच नहीं सके। नानक में पंजाबीपना तथा कबीर में बनारसीपना की भरमार इसी का प्रमाण है। साथ ही, इनकी काव्य-भाषा का एक रूप स्थिर कर पाना भी मुश्किल बन गया है; यथा कबीर की भाषा, जिसको स्वयं कबीर ने 'पूरवी' किन्तु दूसरों ने 'बनारस-मिर्जापुर-गोरखपुर की बोली, भोजपुरी का ही एक रूप, 'राजस्थानी-पंजाबी मिश्रित खड़ी बोली या सधुक्कड़ी', 'संध्या भाषा', 'अवधी तथा ब्रज के समीप' आदि न जाने क्या-क्या कहा एवं माना। समग्रतः मिश्रणप्रधान होने से इसको 'मिश्रित भाषा' ही माना जा सकता है।

प्रतीक योजना-

सन्त-काव्य के प्रतीक मुख्यतः बौद्ध तथा नाथ-सम्प्रदायों से या फिर सीधे-सीधे जन-जीवन के लिए गये हैं। मुख्यतः ये चार प्रकार के हैं (1) पारिभाषिक (यथा गगन गुफा, गगन मंडल, चन्द्र, सूर्य, सरस्वती, गंगा-यमुना, बाधिन, पाताली आदि), (2) संख्यावाचक शब्दों से युक्त (यथा दुई पाठ, त्रिकुटी, तीन गाउ, चार चोर, अष्ट कमल, दशम् द्वारादि), (3) अन्योक्ति परक (यथा चौराहा, बालम, चदरिया, गाँव, दुलहिन्, भरतार आदि) तथा (4) उलटबाँसी वाले प्रतीक (यथा मछली, मृग, सर्प, कुंआ, खरगोश आदि)। उक्ति-वैचित्र्य तथा भाव-वृद्धि इनकी अपनी विशिष्टताएं है।

छन्द तथा अलंकार-

सन्त कवि न तो काव्यशास्त्र के अध्येता थे एवं काव्यशास्त्रीय नियमों से बद्ध होकर काव्य-सृजन करना इनका लक्ष्य था। 'काव्यगत' तो इनके यहाँ बाइ-प्रोडक्ट है अर्थात् अपने-आप बन जाने वाला। फलस्वरूप छन्द अलंकारों के नियमबद्ध रूप या पांडित्य प्रदर्शन करने वाली चमत्कारिता इन कवियों में नहीं मिलती। फिर भी छन्द-अलंकार दोनों ही इनके मध्य में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, किन्तु सिर्फ साधन रूप में। साखी (दोहा) और सबद (गीत या पद) इनके प्रिय छन्द हैं यद्यपि

चौपाई, कवित्तादि भी मिल जाते हैं। सुन्दरदास तो 'सवैये के बादशाह' माने गये । जहाँ तक प्रश्न है-अलंकारों का तो मुख्यतः यहाँ रूपक, उपमा, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा, श्लेष तथा अनुप्रासादि बहुप्रचलित अलंकार ही प्रयुक्त हुए हैं।

युगबोध- सन्त-काव्य का मूल दृष्ट है-युग-चेतना को जागृत करके युगबोध का संदेश देना। वास्तव में, 'अपने समय के सजग प्रहरी' ये ही थे। इन्होंने अपने युग को आँख खोलकर देखा ही नहीं उसकी कटुता, विषमताओं, विसंगतियों तथा आडम्बरादि का डटकर, निर्भीकतापूर्वक, विरोध भी किया। साथ ही साथ मानवता-मात्र का सन्देश भी दिया। सच तो यह है कि इनसे अधिक स्पष्टवक्ता, क्रांतिदर्शी, समाज-सुधारक एवं निर्भीक कवि अन्य किसी भी वर्ग सम्प्रदाय में नहीं मिलते। कबीर इसका सर्वोत्तम प्रमाण हैं।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की धारा को डा. रामकुमार वर्मा ने 'सन्त काव्य परम्परा' का नाम दिया। डा. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने संत शब्द की व्युत्पत्ति शांत शब्द से मानी है और इसका अर्थ निवृत्ति मार्ग या बैरागी किया है। आचार्य प. परशुराम चतुर्वेदी का कहना है कि संत शब्द उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है, जिसने संत रूपी परमतत्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया हो, सतत् स्वरूप, नित्य सिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुका हो अथवा अवरोध की उपलब्धि के फलस्वरूप अखण्ड सत्य में प्रतिष्ठित हो गया हो, वही संत है।

सामान्य विशेषताएं -

संत मत का आविर्भाव हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। देश को विचित्र परिस्थितियों ने इस मत को जन्म दिया और संत मत के सामान्य भक्ति मार्ग में विविध वादों का समन्वय हुआ। इसमें हिन्दू-मुसलमान, गोरख पंथी, वेदान्ती, सूफियों एवं वैष्णवों के धार्मिक सिद्धान्तों का भी समन्वय हुआ। संक्षेप में इस मत के कवियों की सामान्य विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है-

काव्य-रचना मुख्य उद्देश्य - नहीं संत कवियों का लक्ष्य काव्य रचना नहीं था. उनकी रचनाओं में जन-जन के हित और उद्बोधन की भावना सन्निहित है। भावों के स्पष्टीकरण के लिए उन्होंने प्रतीकों, उपमाओं, रूपकों की योजना अवश्य की है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि काव्योत्कर्ष अथवा काव्य सौष्ठव उनका साध्य नहीं था, उनकी भाषा का रूप भी स्थिर नहीं है। कविता को ये संत अपनी अनुभूत सत्यों का मर्म दूसरों के समक्ष अभिव्यक्त करने का एक उत्तम माध्यम समझते थे।

तत्व चिन्तन का स्वरूप संत कवि मूलतः - दार्शनिक थे फिर भी उनकी भक्ति रस से सिक्त बानियों में दार्शनिक तत्वों के निरूपण का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रयत्न अवश्य दृष्टिगोचर होता है। डॉ. बड़थ्वाल के मत से संत कवियों का परम तत्व एकेश्वरवादी विचारधारा से पुष्ट अद्वैतवाद के अधिक निकट है। संतों का बह्मा त्रिगुणातीत्, द्वैताद्वैत, विलक्षण, अलख, अगोचर, सगुण, निर्गुण से परे, प्रेम पारावार और दार्शनिकवादों तथा तर्कों से ऊपर है। वह अनुभूतिगम्य और सहज प्रेम से प्राप्य है।

साधना मार्ग संतों की साधना का भवन ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति इन चारों स्तम्भों के सहज संतुलन पर टिका हुआ है। जिस प्रकार संत लोग अन्य विचारों में प्रगतिशील हैं वैसे ही साधना मार्ग के निर्धारण में भी पर्याप्त सजग हैं। निर्गुण संत ज्ञानत्मिका भक्ति के उपासक हैं। कोरा ज्ञान उन्हें अहंकार मूलक प्रतीत हुआ है। पोथी ज्ञान के भी वे विरोधी हैं। पोथी ज्ञान के भार से लदा हुआ आदमी उस गधे के समान है जो चन्दन का भार ढोकर भी उसकी सुगन्ध का सुख नहीं प्राप्त कर सकता। इसी प्रकार प्रत्यक्ष, अनुमान और अप्रत्यक्ष इन तीनों प्रमाणों में से ये संत केवल प्रत्यक्ष या अनुभूति जन्य ज्ञान को ही प्रमाणिक मानने के पक्ष में हैं। कबीर ने कहा भी है 'तू कहता कागज की लेखी, मैं कहता आखिन की देखी।'

भक्ति मार्ग सत्य भाषण और सत्याचरण को संत कवि भक्ति का सर्वप्रमुख तत्व मानते हैं। इसी को वे अपने शब्दों में कथनी की समरसता की संज्ञा देते हैं नाम जप या 'नाम स्मरण' संतो की भक्ति का मूल आधार है। भक्ति के प्रेरक तत्वों में

श्रद्धा, सत्संग, उपदेश, गुरु, जीवन तथा जगत की क्षण भंगुरता के ज्ञान से उत्पन्न वैराग्य भावना आदि का स्थान महत्वपूर्ण है। संत कवियों ने इन सबकी आवश्यकता और महत्ता का विवेचन विस्तार से किया है। आश्रय में निहित प्रेम या भक्ति को अभिव्यक्त करने वाले तत्वो में दैन्य, आत्म निवेदन मय आसक्ति आदि मुख्य है।

सूफीमत का प्रभाव संत मत पर सूफी प्रेम साधना का प्रभाव भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कबीर ने लिखा है-

प्रेम बिना धीरज नहीं, विरह बिना वैराग । सतगुरु बिन जावै नहीं, मन मनसा का दाग।

जोगी जनम से बड़ा, सन्यासी दरवेस । बिना प्रेम पहुँचे नहीं, दुरलभ सतगुरु देस ।

रहस्यवाद की प्रवृत्ति संत कवियों ने शंकराचार्य के अद्वैत मत को लेकर अपनी रहस्यवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति की है किन्तु इनका रहस्यवाद माधुर्य भाव से वेष्टित है। इन संत कवियों के विरह में लौकिक दाम्पत्य भाव के सहारे आत्मा का शाश्वत क्रन्दन व्यक्त किया गया है और यह मिलन सहज नहीं है।

रूढ़ियों और आडम्बरों का विरोध - प्रायः सभी सन्त कवियों ने रूढ़ियों, मिथ्याडम्बरों तथा अन्धविश्वासों की कटु आलोचना की है। इन्होंने मूर्ति पूजा, धर्म के नाम पर की जाने वाली हिसा, तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज, हज्ज आदि विधि विधानों, बाह्यआडम्बरों, जाति-पांति भेद आदि का डटकर विरोध किया है।

नारी के प्रति दृष्टिकोण संत कवियों ने नारी को माया का प्रतीक माना है। उनके विश्वासानुसार कनक और कामिनी ये दोनों दुर्गम घाटियाँ हैं। कबीर का कहना है कि -

नारी की झाई परत, अन्धा होत भुजंग।

कबीरा तिनकी कौन गति, नित नारी के संग।

जहाँ इन्होंने नारी की इतनी निन्दा की है वहीं दूसरी और सती और पतिव्रता के आदर्श की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। कबीर ने कहा है

पतिव्रता कैसी भली, काली कुचित बुरूप ।

पतिव्रता के रूप पर, बारो कोटि सरूप ॥

लोक संग्रह की भावना इस वर्ग के सभी कवि पारिवारिक जीवन व्यतीत करने वाले थे। नाथ पंथियों की भांति योगी नहीं थे। संतों ने आत्म शुद्धि पर बहुत बल दिया है। जहाँ एक और संत लोग कवि और भक्ति आन्दोलन के उन्नायक है, वहाँ समाज सुधारक भी। संत काव्य में उस समय का समाज प्रतिबिम्बित है।

18.5 संन्त साहित्य की प्रगतिशीलता का कारण

सन्त कवियों का लक्ष्य काव्य रचना नहीं था। उनकी रचनाओं में जन-जन के हित और उसके उद्बोधन की भावना सन्निहित है। सन्त सम्प्रदाय विश्व सम्प्रदाय है और उसका धर्म विश्व धर्म है। इस विश्व धर्म का मूलाधार है हृदय की पवित्रता। संतों की प्रगतिशील विचार धारा का एक प्रमुख कारण यह है कि इस मत का प्रचार निम्न वर्ग के अशिक्षित लोगों में रहा। इन संतों ने अगर एक ओर गुरु, भक्ति, साधु-संग, दया, क्षमा, सन्तोष आदि का उपदेश दिया है तो दूसरी ओर वे कपट, माया, तृष्णा, कामिनी, कांचन तीर्थ, व्रत, माँसाहार, मूर्ति पूजा और अवतारवाद के विरोधों थे। जिस युग में संत मत के कवियों की सृष्टि हुई वह अज्ञान, अशिक्षा और अनैतिकता का युग था, संतों को पीयूष वर्षिणी उपदेशमयी वाणी ने उनमें एक दृढ़ नैतिकता की प्रतिष्ठा की। अपनी इसी प्रगतिशील विचारधारा के कारण इस सम्प्रदाय ने धर्म का ऐसा स्वाभाविक, निश्छल, व्यवहारिक तथा विश्वासमय रूप जन भाषा में उपस्थित किया जो विश्वधर्म बन गया और अब भी जन जीवन में पुनः जागरण का संदेश दे रहा है। इनकी वाणी में जो उपदेश हैं वे केवल दर्शन का विषय न होकर जीवनरस से ओत-प्रोत हैं। उनमें अनुभूति, सौष्ठव और जीवन का अगर संदेश है। संत साहित्य की प्रगतिशीलता का एक मुख्य कारण तत्कालीन परिस्थितियाँ थीं। मुसलमानी

संस्कृति के प्रभाव से हिन्दू जाति के निम्न वर्ग में नवीन जागृति आई। उन्होंने देखा कि मुसलमानों में जांति पांति तथा छुआछूत का कोई भेद नहीं है। सहधर्मी होने के कारण वे सब समान हैं। इस स्थिति को देखकर संतों ने रूढ़िवाद एवं मिध्याडम्बर का विरोध करना शुरू कर दिया।

'जाति-पांति न पूछे नहि कोई, हरि को भर्ज सो हरि का होई' के अनुसार उनके मत में जाति-पांति का कोई महत्वनहीं था। संत लोग साधारण धर्म तो मानते थे, किन्तु साम्प्रदायिकता या वर्णाश्रम सम्बन्धी विशेष धर्म के पक्ष में न थे। संतों ने वर्णाश्रम व्यवस्था का समूल नाश करना चाहा। चाहे संस्कृति की दृष्टि से यह हेय हो किन्तु तत्कालीन परिस्थिति के कारण यह आवश्यकता उत्पन्न हो गई थी। उन्होंने हीन वर्षों को उच्च वगों के स्तर पर लाने की चेष्टा की। संतो ने जिस साधारण धर्म को स्वीकार किया है, वह एक प्रकार से शुद्ध मानव धर्म ही है

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुसलमान एकेश्वरवादी, पैगम्बर धर्म का मूर्ति खण्डन और एकेश्वरवादी और हिन्दू मुस्लिम भिन्न संस्कृतियों के संघर्ष के कारण जो विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई थीं, उनका प्रभाव सन्तमत पर स्पष्ट है। वास्तव में निर्गुण सन्त काव्य धारा अपने समय का पूरा प्रतिनिधित्व करती है।

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन - भारतीय इतिहास की अनन्यतम घटना है। यह आँदोलन न केवल दो तीन शताब्दियों तक सीमित रहा, अपितु इसने पूरे भारतीय जनमानस को कई शताब्दियों तक प्रभावित किया है। इस आंदोलन के पूर्व भारत में शैवधर्म की प्रधानता थी अधिकांश राजवंश शैव धर्मानुयायी थे। किन्तु आठवीं शताब्दी तक आते-आते शैवों का प्रभाव कम पड़ने लगता है और वैष्णव भक्ति आंदोलन जोर पकड़ने लगता है दक्षिण भारत में अनेक आचार्यों ने भिन्न भिन्न सम्प्रदायों का प्रवर्तन करना प्रारम्भ किया, जिनमें सगुण धर्म का प्रचार करने में चार महान आचार्यों का महतीय योगदान है। उनके नाम इस प्रकार हैं रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी और निम्बार्क स्वामी इनके पश्चात् कुछ आचार्य और हुये जिन्होंने वैष्णव धर्म को व्यापक बनाया। इनमें रामानन्द, चैतन्य और वल्लभाचार्य प्रमुख हैं। रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत, मध्वाचार्य ने अद्वैत,

विष्णुस्वामी ने शुद्धाद्वैत और निम्बार्क ने द्वैताद्वैत की स्थापना की। इन आचार्यों ने द्वैत सगुण भक्ति धारा को निजी अनुभूतियों एवं शास्त्रीय दार्शनिकता से संवलित किया। इन आचार्यों ने सगुण भक्ति के उस रूप की प्रतिष्ठा की जिनमें मानव हृदय विश्राम भी पाता है और कलात्मक सौंदर्य से मुग्ध और तृप्त भी होता है।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में भक्ति की दो धारायें प्रवाहित हुई निर्गुण और सगुग। इन दोनो धाराओ मे मध्यकालीन सगुण सम्प्रदाय वैष्णव धर्म से पोषण प्राप्त करता है। इस सम्प्रदाय की दोनों शाखाओं रामभक्ति धारा तथा कृष्णभक्ति धारा में ईश्वर सगुण है। इन्होंने ज्ञान, कर्म और भक्ति में से भक्ति को ही उपजीवा के रूप में ग्रहण किया।

सगुण सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि में वैष्णव धर्म और भक्ति का समृद्ध साहित्य है। इस साहित्य के प्रमुख ग्रन्थ है- भगवत् गीता, विष्णु और भागवतपुराण, पांच रात्रि संहितायें, नारद भक्ति सूत्र और शांडिल्य भक्ति सूत्र ।

इस धारा की कतिपय विशेषताये इस प्रकार है- (1) ईश्वर का सगुण रूप, (2) अवतार की भावना, (3) लीला रहस्य, (4) रूपोपासना, (5) शंकर के अद्वैतवाद का विरोध, (6) भक्ति क्षेत्र में जाति भेद की अमान्यता, (7) गुरु की महत्ता, (8) भक्ति, (9) जीवन ।

सगुण भक्ति धारा की विशेषताओं को रेखांकित करते हुए प्रोफेसर बृजलाल गोस्वामी ने एक स्थान पर लिखा है, "इस प्रकार मध्यकालीन सगुण काव्य में हिन्दी साहित्य ने उत्कर्ष के चरम बिन्दु को छू लिया है। इसमें मनुष्य की समस्त वृत्तियों के प्रसादन की शक्ति है। इसमें सौन्दर्य धर्म का घातक अथवा द्वेषी बनकर नहीं आता। सौन्दर्य भी भगवान की ही विभूति है। इस साहित्य के साधकों ने अन्तर और बाह्य वैषम्य की लीला को एक रस कर दिया है। हमें लीला तत्व पर ध्यान

मनन पूर्वक करना चाहिए और इसकी गंभीरता की थाह लेनी चाहिए। सगुण भक्ति धारा की तीनों शाखाओं में साम्य एवं वैषम्य समानतायें निम्नानुसार है-

समानतायें :-

1- सगुणोपासना- राम काव्य और कृष्णकाव्य दोनों में ही साकारोपासना का विधान किया गया है। सगुण भगवान के सुगम और फिर भी अगम चरित्र को सुनकर भक्त लोग उसमें अनुरक्त होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने उत्तरकाण्ड में कहा भी है-

सगुण रूप सुलभ अति, निर्गुण जानि नहिं कोई सुगम अगम नाना चरित, सुनि-सुनि मन भ्रम होई ।।

सूरदास ने भी निर्गुण बह्य की अग्राह्यता एवं सगुणब्रह्म की सरलता की ओर इंगित करते हुए कहा- रूप, रेख गुण, जाति, जुगुति बिनु निरालम्ब मन चकित धावे।

सब विधि अगम विचारहिं ताते, सूर सगुण लीला पद गावे ।।

इस प्रकार निरगुनियों के जो भगवान अगुण, अलख और अजहर हैं वही भगवान भक्त के प्रेमवश सगुण रूप धारण करते हैं। इस प्रकार दोनों प्रकार के कवियों ने भगवान के सगुण रूप उपासना को अधिक महत्व दिया है।

2- नाम रूय कीर्तन- सगुण और निर्गुण दोनों ही धारा के कवियों ने भगवान के नाम रूप का स्मरण बड़े ही मनोयोग के साथ किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने बालकाण्ड में भगवान राम के नाम की महिमा का उल्लेख विस्तार से किया है-

नाम रूप गति अकथ कहानी, समुझत सुखद न परति बखानी ।

अगुम सगुन विच नाम सुसाखी, उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।

कृष्णभक्ति धारा के कवियों ने भगवान के नाम जप का महत्व प्रतिपादित किया है।

3- भक्ति का रूप- भक्ति के दो रूप हैं, रागानुगा और वैधी। तुलसीदास ने कहा है कि भगवान अखंड ज्ञान स्वरूप है और जीव मायावश अज्ञानी। गोस्वामी जी के शब्दों में-

ईश्वर अंस जीव अविनाशी, चेतना अमल सहज सुख राशी।

सो मायावास भयउ गोसाई, बंघउ कीर मर्कट की नाई ॥

जो भक्त भगवान के प्रति रागात्मक सम्बन्ध रखते हैं उनकी भक्ति को रागानुगा भक्ति कहते हैं। वैधी भक्ति में भक्त की कर्त्तव्य बुद्धि सदैव जागृत रहती है और वह अन्त तक विधि नियमों का पालन करता रहता है। सगुण धारा के दोनों पक्ष राम-भक्ति तथा कृष्णभक्ति के कवियों ने रागानुगा भक्ति का ही सहारा लिया है। हालांकि गोस्वामीजी की भक्ति भाव की है।

4- मोक्ष- सगुण- भक्तों की भक्ति का चरम उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है। भक्त लोग भगवान की भक्ति में लीन होकर अन्त में मोक्ष प्राप्ति करते हैं। उनकी सगुण भक्ति के अनुसार भगवान सगुण अवतार लेकर भक्तों के दुःख दूर करते हैं तथा अन्त में भक्ति से प्रसन्न होकर गोलोकवास बैकुण्ठवास देते हैं। यही इनकी भक्ति की चरम परिणति है।

विभिन्नतायें -

रामकाव्य में दास्य भावना की भक्ति को प्रमुखता प्राप्त है तथा उसमें वर्णाश्रम धर्म, कर्मकाण्ड व वेद मर्यादा आदि पर पूर्ण आस्था प्रकट की गई है लेकिन वहीं कृष्णकाव्य में सख्य व माधुर्य भाव की भक्ति को प्रधानता दी गई है। बल्लाभाचार्य के पुष्टि मार्ग में ब्रह्म व जीव में कोई मर्यादा नहीं है अतः कृष्णभक्त कवि के सखा ही हैं और पुष्टिमार्ग के अनुसार जीव की सफलता

कृष्ण लीला में तादात्म्य से ही मानी गई है। इस प्रकार रामकाव्य में यदि लोकरक्षण की भावना की प्रधानता प्राप्त है तो कृष्ण काव्य में लोकरंजन की प्रमुखता है।

कृष्ण काव्य की अपेक्षा रामकाव्य में जनसंपर्क भावना अधिक है, क्योंकि स्वान्तः सुखाय होते हुये भी वह सर्वसुखाय है। इसलिए तुलसी के रामचरित मानस के पात्र अलौकिक होते हुए भी लौकिक प्रतीत होते हैं, तथा वह हमें जीवन की प्रत्येक विकट परिस्थिति में प्रेरणा व स्फूर्ति देता है, इसीलिए उसका प्रचार सर्वत्र है। ठीक इसके विपरीत कृष्णकाव्य पर युग मानस की छाप नाममात्र की है कृष्णभक्ति शाखा के कवि अपनी भक्ति भावना और आध्यात्म भावना में इतने समन्वित थे कि उन्होंने समाज की ओर तनिक भी ध्यान न दिया और न यह सोचा कि उनकी श्रृंगार रस पूर्ण उक्तियों का समाज और साहित्य पर वया अनिष्टकारी प्रभाव पड़ेगा।

कृष्ण-काव्य में केवल बृजभाषा ही प्रयुक्त हुई है, इसके विपरीत राम काव्य बृजभाषा और अवधी दोनों में लिखा गया है। साथ ही अवधी के साहित्यिक रूप की जैसी विशुद्ध, परिमार्जित, कोमलकांत पदावली तुलसी की रचनाओं में मिलती है, वैसी कृष्णकाव्य में कदाचित ही दृष्टिगोचर होती हो ।

रामकाव्य और कृष्णकाव्य में भक्ति भावना की दृष्टि से भी विभिन्नता है। रामकाव्य में दास्यभाव की भक्ति है जबकि कृष्णकाच्य में सख्य और माधुर्य भाव की रामकाव्य समन्वय के दृष्टिकोण को लेकर चला है। भाव, भाषा, छन्द तथा इष्टदेव सब क्षेत्रों में समन्वय है

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामकाव्य और कृष्णकाव्य मूलतः सगुणवादी होते हुये भी बहुत सी बातों में परस्पर भिन्न हैं। दोनों के काव्य को देखकर यह अवश्य कहा जा सकता है कि सगुणवादी कवि केवल चिन्तनशील भक्त ही नहीं, बल्कि कवि भी हैं। इनके काव्यों में आलंकारिकता, कला तथा कवित्व का सुन्दर सामन्जस्य मिलता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस धारा में कवियों ने "भक्तिरस" की स्थापना में सर्वाधिक योग दिया है। यदि वैष्णव भक्ति का उदय न हुआ होता तो भक्ति को रस के रूप में स्वीकृति मिलना असम्भव था। साथ ही इतना बड़ा और श्रेष्ठ साहित्य अस्तित्व में न आया होता। राम और कृष्ण के रूप, गुण,शील का जैसा साहित्यिक वर्णन सगुण भक्त कवियों द्वारा हुआ, वैसा न तो

पहले हुआ था और न बाद में हो सका। भारतीय साहित्य में सौन्दर्य और माधुर्य का मणिकांचन संयोग इसी सगुण भक्ति साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। फलतः इस साहित्य को हम भारतीय वाड्मय की एक श्रेष्ठ निधि के रूप में गौरवास्पद धरोहर सगझते है

18.6 सूफी प्रेम काव्यों की सामान्य प्रवृत्तियां

1. प्रबंध कल्पना- सूफियों ने लौकिक प्रेम कहानियों के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की है। इनकी ये प्रेम कहानियाँ प्रबंध काव्य की कोटि में आती हैं। इन कवियों का उद्देश्य प्रेम कहानी कहना न होकर प्रेम तत्व का निरूपण करना और उसका महत्व निर्धारित करना है। इस काव्य की क्रम योजना प्रायः समान ही है। सर्वप्रथम मंगलाचरण में ईश्वर की सर्वशक्तियता का वर्णन, तत्पश्चात् हजरत मुहम्मद की प्रशंसा होती है। इसके अनंतर शहिवक्त का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन, अपना और पीर का परिचय आदि होती है। इनकी इस शैली को मसनवी कहा गया है

सूफी कवियों ने भारतीय कथाओं में व्यवहत कथानक रूढ़ियों का व्यवहार किया है, लेकिन उक्त रूढ़ियाँ परंपरा से भारतीय कथाओं में प्रयुक्त होती रही हैं। जैसे चित्र दर्शन या स्वप्न द्वारा या शुक सारिका द्वारा नायिका का रूप देखकर या सुनकर उस पर आसक्त होना, पशु-पक्षियो की बातचीत से भावी घटना का संकेत मिलना, मंदिर या चित्रशाला में मिलना आदि।

प्रेमगाथाओं के रचियता प्राथः सभी मुसलमान ही हैं लेकिन उन्हें हिन्दू धर्म का भी सामान्य ज्ञान था। साथ ही उन्हें हिन्दुओं के आचार-विचार व रहन-सहन आदि का भी सामान्य ज्ञान था और अपनी रचनाओं में उन्होंने हिन्दू परिवारों के घरेलू जीवन का भी स्वाभाविक वर्णन किया है।

सामान्यतः प्रेमगाथाओं में लौकिक प्रेम गाथाओं द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है, अतः उनमे कल्पना का आधिक्य भी दीख पड़ता है।

प्रेम गाथाओं में जिस अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना है, उसमें जीवात्मा का परमात्मा के लिए तीव्र प्रेम तथा साधन के मार्ग की बाधाओं का भी वर्णन किया गया है। सूफी आत्मा परमात्मा के मिलन में शैतान को अवरोधक मानते हैं और गुरु की सहायता से ही साधन को लक्ष्य प्राप्ति में समर्थ समझते हैं।

प्रेग गाथाओं में व्यक्त प्रेम-भावना पर विदेशी तथा देशी दोनों ही शैलियों की छाप विद्यमान है। सूफी कवि भारतीय प्रेम साधना से भी प्रभावित हुए हैं और उन्होंने नाका के प्रेमोत्कर्ष का वर्णन किया है। उदाहरणार्थ, जायसी की पद्मावत के सतीत्व एवं उत्कृष्ट पति-प्रेम आदि के चित्रण में भारतीयता की ही झलक है।

. प्रेम गाथाओं में रहस्यवाद की अत्यंत सुंदर तथा सरल अभिव्यक्ति हुई है। उनमें संत कवियों को रहस्य भावना की शुष्कता और नीरसता भी नहीं है, बल्कि सूफी कवियों ने तो जगत को सत्य मानकर प्रेम गाधाओं से अव्यक्त सत्ता को व्यक्त रूप में प्रकट किया है।

इन प्रेम काव्यों में नायक तथा नायिकाओं के जीवन के उतने अंशों को ग्रहण किया गया है, जिसमें प्रेम के विविध प्रसंगों और व्यापारों की अभिव्यक्ति संभव थी। प्रबंध काव्योचित जीवन के विविध दृश्य इन काव्यों में नहीं हैं।

सूफी काव्यों की यह बड़ी विशेषता है कि इनमें प्रेम का प्रमुख स्थान नारी पात्र को ठहराया गया है। वह परमात्मा का प्रतीक है। नारी वह एक नूर है, जिसके बिना विश्व सूना है।

रस प्रेमाख्यानक काव्यों में प्रधानतः श्रृंगार रस की व्यंजना हुई है। पूर्वराग को जागृत करने के लिए गुण श्रवण प्रत्यक्ष दर्शन और चित्र-दर्शनादि उपायों का आश्रय लिया गया है। उद्दीपन विभाग के अंतर्गत सूफियों ने सखा-सखी, वन-उपवन तथा ऋतु परिवर्तन आदि उपकरणों का उल्लेख किया है।

भाषा-सूफी प्रेमाख्यानों की भाषा प्रायः सर्वत्र अवधी है। इन कवियों ने अवधी भाषा में तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है। सूफी कवियों ने अवधी भाषा के मुहावरों और लोकोक्तियों का भी अच्छा प्रयोग किया है।

. छंद-सूफियों ने सपने प्रेमाख्यानों में अपभ्रंश के चरित्र काव्यों के समान दोहा चौपाई शैली को अपनाया है। दोहा चौपाइयों के अतिरिक्त सूफी प्रेमाख्यानों में सौरठे, सवैये और बरवै छंदों का प्रयोग भी हुआ है।

सूफीमत के सिद्धांत-1. ईश्वर एक है एकेश्वरवाद, 2. प्रेम की पीर की महत्ता, 3. शैतान बाधा है, 4. जीव व्रज है, . सृष्टि मिथ्या नहीं है। 5 . अनल हलक में ही बहा हूं।

रीतिकाल की सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि -

रीतिकाल की पृष्ठभूमि और उसके आविर्भाव की परिस्थितियां:-

रीतिकाल में यद्यपि भक्ति, नीति, वीरता आदि अनेक विषयों पर कविताएं लिखी गई, किन्तु प्रधानता श्रृंगारिक रचनाओं की रही। वस्तुतः इस श्रृंगाराधिक्य के मूल में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियाँ कार्य कर रही थी। जैसा कि डॉ. चौहान ने लिखा है, "राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों ने रीतियुग के काव्य के श्रृंगारपरक, शीर्यपरक एवं प्रेमपरक आदि वर्ण्य-विषयों की पृष्ठभूमि तैयार की। समस्त रीतियुग के काव्य के चाहे वह रीतिबद्ध धारा का काव्य हो, चाहे रीतिमुक्त धारा का काव्य हो यही तीन वर्ण्य-विषय थे। दरबार के चमक-दमकपूर्ण वातावरण ने तथा आश्रयदाता और उसके दरबारियों को फड़काने वाली कलात्मक बारीकियों को प्रवृत्ति ने ऊहात्मक कथन, वचन विदग्धता, उक्ति-वैचित्र्य, वक्रोक्ति आदि की कला-प्रवृत्तियों को जन्म दिया। पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति बहुज्ञता प्रदर्शन के रूप में उभरी और कला-पक्ष में कथन-भंगिमा के अनेक रूपों वचन विदग्ध्ता, उक्ति वैचित्र्य, वक्रोक्ति आदि रूपों में उभरी। उसके विविध कला-रूपों में जो तराश खराश की बारीकी और पच्चीकारी, कटाव और खम उभारने की प्रवृत्ति थी, उसने उसमें शब्द-चयन और शब्दालंकारों के सौन्दर्य उत्पन्न करने की प्रवृत्ति को जन्म दिया। नारी अंगों के सौन्दर्य वर्णन में उसके अंगों की गोलाइयों और उभारों को चित्रित करने की प्रवृत्ति के मूल में मूर्ति एवं चित्रकला की तराश-खराश, कटाव औ खभ तथा गोलाइयाँ उभारने की प्रवृत्ति का प्रभाव है ये

प्रवृत्तियाँ समस्त रीतियुगीन काव्य की प्रवत्तियाँ हैं जो केशव से लेकर बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर, घनानंद, बोधा आदि सभी में परिलक्षित होती है।"

राजनीतिक परिस्थिति-

हिन्दी साहित्य में रीतिकाल सं. 1700 से 1900 तक स्वीकार किया जाता है। इस संपूर्ण कालावधि में निरंकुश राजतंत्र का बोलबाला रहा। मुगल सम्राट शाहजहाँ भारत का सम्राट था। शाहजहाँ का राज्य-विस्तार दक्षिण में अहमद नगर, गोलकुंडा, बीजापुर आदि रियासतो तक, उत्तर में कंधार तक और पश्चिम में सिन्ध से लेकर पूर्व में सिलहट तक था। राज्य में सुख, शांति, वैभव-विलास सभी कुछ था। किन्तु परिवर्तन-चक्र में पड़कर स्थिति बदली धीरे-धीरे शाहजहाँ के समय में दक्षिण में उपद्रव शुरू हुए और उसकी मृत्यु की अफवाह उड़ी। उसके पुत्रों में सिंहासन के लिए युद्ध प्रारंभ हो गया। छल-प्रपंच की धूलि उड़ाती राजनीति का दामन रक्त-रंजित हो उठा। दारा और औरंगजेब के मध्य संघर्ष बढ़ा एक ओर कुशल राजनीतिज्ञ और कट्टर सुन्नी औरंगजेब था और दूसरी ओर ज्ञानी, सहिष्णु और दयालु दारा था। संघर्ष में औरंगजेब को विजय मिली, परंतु उसके अत्याचारों से यत्र तत्र विद्रोह भी होने लगे। औरंगजेब का भारतीय आकाश में एक धूमकेतु की भांति उदय हुआ, जो न खुद सुख-चैन से रह सका और न उसने जनता को ही सुख-चैन से रहने दिया। इस प्रकार रीतियुग का उदय सुख-शांति, वैभव-विलास में हुआ तथा उसकी परिणत्ति विप्लव, अव्यवस्था और अधःपतन में हुई।

औरंगजेब के उत्तराधिकारी सर्वथा अयोग्य, अकर्मण्य, विलासी एवं पंगु सिद्ध हुए। देसी नरेशों के महल भी विलास में मुगल-हरमों की होड़ ले रहे थे। ऐशोआराम का जीवन, वैभव प्रदर्शन, रसिकता और विलास का उद्दाम नर्तन, ये सब उस काल की विशेषताएं थीं। 'यथा राजा तथा प्रजा के

अनुसार जनता भी सामंतीय वातावरण और उसकी विशेषताओं के प्रत्ति आकृष्ट थी। इन्हीं परिस्थितियों का प्रभाव उस युग के साहित्य पर पड़ा।

सामाजिक परिस्थिति- भारतीय समाज को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

(1) उच्च वर्ग - इसमें बादशाह, शाही घराने, सामंत गण, बड़े व्यापारी, छोटे राजा तथा उच्च पदाधिकारी आते थे। यह वर्ग वैभवशाली होने के कारण विलासी, अपव्ययी और सुरा सुन्दरी में डूबा रहने वाला था।

(2) निम्न वर्ग, - इसमें साधारण जनता आती थी, जिसे दोनों समय की रोटी जुटाने के लिए कठोर श्रम करना पड़ता था और इनके ही खून-पसीने की कमाई पर उच्च-वर्ग ऐश करता था

(3) कलाकार वर्ग- जिन्हें उच्च वर्ग द्वारा आश्रय मिला था और इनका कार्य उच्च वर्ग का मनोरंजन करना था। उच्च वर्ग की स्थिति बिगढ़ने पर इन्हें जीविका के लिए दर-दर की ठोकरें भी खानी पड़ीं।

रीतियुगीन समाज का एक दूसरा विभाजन शासक और शासित वर्ग में भी किया गया है। शासक वर्ग प्रभुत्व संपन्न था और उसी की प्रवृत्तियों का चित्रण कला और साहित्य में हुआ शासित वर्ग तो नितांत उपेक्षित था।

रीतियुग में नारी विलास का साधन मानी जाती थी। नारी-जीवन की सार्थकता पुरुष को रिझाकर उसकी विलास-क्रीड़ा का साधन बनने में समझी जाती थो। राज महलों में रूप खरीदा जाता था और उसका जी भर कर भोग किया जाता था। राजा और प्रजा विलास की मदिरा पीकर उन्मत्त हो रहे थे और वीरता अपने लिए कोई स्थान न देखकर धीरे-धीरे वहाँ से पलायन कर रही थी। विलासियों के अत्याचार और व्यभिचार से बचने के लिए समाज में सती प्रथा, पर्दा-प्रधा और बाल-विवाह को प्रश्रय मिल रहा था। जन-साधारण में अंध विश्वास तथा रूढ़ियाँ धर कर गई थी। जनता प्रायः अशिक्षित थी ।

आर्थिक परिस्थिति- रीतियुग में राजन्य वर्ग और सामंत वर्ग अवश्य ही संपन्न था, किन्तु साधारण जनता अभावों की चक्की में पिस रही थी। निग्न वर्ग को तरह-तरह के कर देने पड़ते थे और पेट भरने के लिए भोजन भी वह बड़ी मुश्किल से

जुटा पाता था। लक्ष्मी का प्रभुत्व सरस्वती पर स्थापित था। सोने और चांदी के टुकड़ों पर कला बिक रही थी। कृषकों की दशा भो बहुत गिरी हुई थी और यदि कभी अकाल आदि के कारण फसल नष्ट हो जाती थी तो कृषकों को उसकी क्षति-पूर्ति करनी होती थी।

धार्मिक परिस्थिति- रीतिकालीन भारत में चार धर्म प्रधान थे-हिन्दू मुसलमान, सिक्ख और

ईसाई। धार्मिक और नैतिक दृष्टि से समाज पतनो-मुखी था। भारतीय धर्म-साधना में श्रृंगारिकता को लेकर चलने वालों में नाथ, वज्रयान और शाक्त संप्रदायों को लिया जा सकता था। इन संप्रदायो में माँस, मदिरा और रमणी के प्रति विशेष आग्रह था। हिन्दू मंदिरों में दासी प्रथा भी प्रचलित हो उठी थी। इन सबने मिलकर धर्म-क्षेत्र में विलासिता और कामुकता को जन्म दे दिया था। फलतः पवित्र धार्मिक स्थान व्यभिचार के अड्डे बन चुके थे। हिन्दू धर्म में शंकर, रामानुज, वल्लभ आदि के संप्रदाय प्रचलित थे। वल्लभ संप्रदाय की सात गद्दियाँ थी, जिनमें वैभव और विलास का तांडव-नर्तन होने लगा था। बंगाल का चैतन्य संप्रदाय भी इस दिशा में किसी से पीछे न था। कृष्ण-भक्ति में राधा-कृष्ण के बहाने प्रेम-व्यापार और विलास को प्रश्रय मिल चुका था। रामभक्ति धारा का स्वरूप भी परिवर्तित होने लगा था और राम-सीता किसी छैल छबीले नायक-नायिका से कम न रह गए थे। हिन्दू धर्म में चैतन्य संप्रदाय के कारण परकीया भावना को भक्ति में जो महत्व मिल रहा था, उसने भक्ति के क्षेत्र में नायिका-भेद को स्थान दिया। रीतिकालीन साहित्य पर ये समस्त प्रभाव दृष्टिगत होते हैं।

रीतिकालीन भारत का दूसरा प्रमुख धर्म गुसलमान धर्म था। यह राजधर्म था मुसलमान धर्म स्वीकार करने पर लोगों को धन और नौकरी मिलती थी, न स्वीकारने पर उन्हें 'जजिया' नामक कर देना पड़ता था। हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे को म्लेच्छ और काफिर कहते थे और घृणा करते थे।

रीतिकाल का तीसरा धर्म सिक्ख धर्म था। सिक्खों का उदय हिन्दू-मुसलमानों में एकता उत्पन्न करने के लिए हुआ था, किन्तु औरंगजेब की नीतियों के कारण वे

मुसलमानों के विरोधी हो गए थे। उन्होंने अनेक बार मुसलमानों से संघर्ष किया और बलिदान भी किए।

इस काल का चौथा धर्म ईसाई धर्म था, जो कि रीतिकाल के उत्तरार्ध में क्रमशः अपना विकास कर रहा था।

रीतिकाल में धर्म की दशा अव्यवस्थित और विपन्न थी और धर्म में अंधविश्वास और पाखंड का बोलबाला था।

साहित्यिक परिस्थितियां- रीतिकाल अलंकरण और चमक-दमक का काल था। जन सामान्य से लेकर राज दरबार तक इस प्रवृत्ति से परिचित और परिचालित थे। मन और मस्तिष्क की यह रंगीनी उस युग के साहित्य में रूपायित हो उठी है, क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य का विषय केवल नारी, अलंकार श्रृंगार एवं शारीरिक सौन्दर्य ही रह गया। शुक्ल जी ने इस संबंध में लिखा है कि, "हिन्दी काव्य इस समय से पूर्व पूर्णता को पहुँच चुका था। सभी क्षेत्रों में चरम विकास इससे पूर्व ही हो चुका था, इसलिए यह काल हास का काल रहा। "डॉ. शिवलाल जोशी ने भी लिखा है, "इस युग के समस्त भौतिक साधन श्रृंगार तथा विलास के उपकरण जुटाने में लगे हुए थे। समाज की दृष्टि जीवन के ऊपरी स्तर पर ही केन्द्रित थी। जीवन की आध्यात्मिक गंभीरता का उसमें सर्वथा अभाव था। यही कारण है कि इस युग की कला तथा उसके साहित्य में एक दिव्य तथा आनंदमय जीवन आभासित नहीं हुआ है, जो अजंता तथा एलोरा के मंदिरों के चित्रों में है अथवा उस युग के साहित्य में है।"

रीतियुग का साहित्य युगीन परिस्थितियों के प्रभाव के कारण बौद्धिकता, अलंकरण और विलास का आधिक्य रखता है। बौद्धिकता की अतिशयता के कारण साहित्य में वक्रोक्ति, उक्ति-वैचित्र्य और नजाकत के दर्शन होते हैं।

कलात्मक परिस्थितियां रीतिकाल की कला में भी अन्य क्षेत्रों के समान प्रदर्शन का प्राधान्य था। सामंतीय वातावरण होने के कारण श्रृंगार और वासना इसकी आत्मा था। मौलिक प्रतिभा की अपेक्षा परंपरा पालन के प्रति विशेष आग्रह था। अतः इस

काल की कला में सप्राणता का अभाव रहा। मुगल-सम्म्राटों में स्थापत्य कला का सबसे अधिक प्रेमी शाहजहाँ था। उसकी बनवाई हुई इमारतों में दीवान-ए-आम, दीवान ए-खास, मोती मस्जिद, जामा मस्जिद तथा ताजमहल अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

रीतिकालीन भारत में यत्र-तत्र हिन्दू कारीगर मूर्तियों का निर्माण करते थे। मुसलमानो के मूर्तिपूजा विरोधी होने के कारण इस क्षेत्र में उनके योगदान का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। श्री रायकृष्ण दास ने अपनी 'भारतीय मूर्तिकला' में इस संबंध में विचार करते हुए लिखा है, "13वी शताब्दी के बाद उत्तर भारत की मूर्तिकला में कोई जान नहीं रह जाती। मुसलमान विजेता मूर्ति के विरोधी थे, फलतः उनके प्रभाववश यहाँ के प्रस्तर शिल्प के केवल उस अंश में कला रह गई जिसमें ज्यामितिक आकृतियों व फल-बूटे की रचना होती थी। मूर्तियों के प्रति राज्याश्रय के अभाव में ऊँचे दर्जे की कारीगरी ने अपनी सारी प्रतिभा अलंकरणों के विकास में लगाई।" रीतिकाल में कला की दृष्टि से सर्वाधिक हास और पतन मूर्तिकला का ही हुआ है।

रीतियुग में चित्रकला का पर्याप्त विकास हुआ। जहाँगीर के काल में हिन्दू चित्रकला अपने चरमोत्कर्ष पर थी और उसमें अद्‌भुत स्वाभाविकता एवं सजीवता व्याप्त थी। शाहजहाँ यद्‌यपि वास्तुकला का प्रेमी था, फिर भी उसके समय में चित्रकला को यथेष्ट आश्रय तथा प्रोत्साहन मिला था। औरंगजेब के काल में अन्य कलाओं की भाति चित्रकला का भी पतन हुआ, क्योंकि वह कला को विलास का साधन मानकर उसको धार्मिक भावना का विरोधी मानता था। इस प्रकार हम देखते है कि रीतिकालीन चित्रकला में बारीकी, अलंकरण तथा यांत्रिक सौंदर्य का बाहुल्य था।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि रीतिकाल में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितयों हासोन्मुख थीं। कला का मूल्य चादी के चंद टुकड़ों द्‌वारा आँका जा रहा था। सुरा और सुन्दरी में ही जीवन की वरितार्थता समझने वाले रसिक राजा-महाराजाओं को विलासोत्तेजक, अलंकृत और उक्ति-चमत्कार से युक्त उक्तियों की आवश्यकता थी और वहीं इस युग के कवियों ने किया भी।

रीतिकाल को आचार्यों ने श्रृंगार काल के नाम से संबोधित किया है-

रीतिकाल की सामान्य विशेषताएं इस प्रकार है-

(1) श्रृंगार रस की प्रधानता- श्रृंगारकाल की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें तीन तरह के कवियों की प्रमुखता रही है-रीतिबद्ध, रीतिमुक्त तथा रीतिसिद्ध। इन तीनों धाराओं का अध्ययन करने से विदित होता है कि श्रृंगार की भावना इनके काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति नहीं है। श्रृंगार रस को इस युग में रसराज के रूप में व्यक्त किया गया है-

नवहु रस को भाव कहूं, तिनके भिन्न विचार।

सबको केषवदास हरि, नायक है सिंगार ।।

(2) दरबारी संस्कृति तथा काम-वासना का उद्दीपन- रीतिबद्ध कविता का प्रेरणा स्रोत प्रायः दरबारी संस्कृति थी। इसके अंतर्गत श्रृंगारी भावना वासना को व्यक्त करने हेतु ही प्रयुक्त हुई है। रीतिबद्ध कवियों के आश्रयदाता सामंत, राजा तथा महाराजा आदि उच्च वर्ग के लोग मुगलों से विरासत में मिली विलासिता में डूबे हुए थे अतः उनकी प्रेरणा से रचे हुए काव्य में स्वभावतया ही लौकिक प्रेम एवं उसके व्यंजन बाह्य सौंदर्य के वर्णन बहुत अधिक है। इन श्रृंगारी भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम कृष्ण राधा की मधुर भाव की भक्ति बनी तथा राधा-कृष्ण साधारण नायक-नायिका के रूप में चित्रित किये जाने लगे।

(3) श्रृंगार रस का निरूपण - युग के नैतिक आदर्शों की अनुमति होने के कारण श्रृंगारकाल में काम प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति हेतु पूर्ण स्वच्छन्दता थीं। आध्यात्मिक आवरण में ही श्रृंगारिक कविता न होती थी, बल्कि स्वतंत्र रूप से भी होती थी। कवि लोग राजाओं की कुत्सित प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने हेतु नग्न श्रृंगार का चित्रण करते थे। लेकिन इस निर्वाध वासना तुष्टि का एक दुष्परिणाम भी हुआ, वह यह कि काम जीवन का अंतरंग साधक तत्व न रहकर बहिरंग साध्य बन गया। अतः इस काल की रीतिबद्ध कविता की श्रृंगारिकता में प्रेम की एकनिष्ठता न होकर वासना की झलक ही मिलती है।

पत्रा ही तिथि पाइये, वा घर के चहूँ पास।

नित प्रति पून्यौ ही रहत, आनन ओप उजास ।।

चमक-तमक, हाँसी ससक, लपक लपक लपटानि ।

ए जिहिं रति, सो रति मुकति, और मुकति अति हानि ।।

शुद्ध राधा कृष्ण प्रेम का वर्णन है, पर यह वर्णन साहित्यिक न हो विषयगत सौंदर्य का वर्णन किया, राधा कृष्ण का नाम, तो मात्र एक आलंबन के रूप में लिया गया। इन कवियों की, पहुँच विषयगत सौंदर्य पर गहरी थी। जैसे-बिहारी की सूक्ष्म निगाह उस सौंदर्य को पकड़ लेती थी उसी तरह, मतिराम, देव, पद्माकर जैसे रस सिद्ध कवि भी किसी से पीछे नहीं रहे। उदाहरण के लिए विद्यापतिजी ने नेत्रों की चंचलता का कितना सुंदर वर्णन किया है, जो प्राचीन साहित्य में मिलना दुर्लभ है-

पैरे जहाँ ही जहाँ वह बाल, तहाँ-तहाँ ताल में होत त्रिवेनी।

- पद्माकर

धार मैं धाय धँसी निरधार है, जाय फँसी उकसी न उधेरी। री गहराय गिरी गहरी, गहि फेरी फिरी न घिरी नहिं घेरी ॥ ऊधौ कछू अपनौ बस ना, रस-लालच चितै भई चेरी। बेगि ही बूढ़ि गई पखियाँ, अखियाँ मधु की मखियाँ भई मेरी ॥

-देव

(4) गार्हस्थिक श्रृंगार-परकीया प्रेम-वर्णन का अभाव रीतिबद्ध श्रृंगारी कविता में नागरिकता का समावेश तो हुआ, लेकिन दरबारी वेश्या-विलास अथवा बाजारू रूप-सौंदर्य की बू नहीं आई। राजाओं के दरबार में वेश्यायें रहती थीं पर उनके आश्रित कवि स्वकीया नायिका के प्रेम का ही गायन करते थे। परकीया प्रेम-वर्णन का उनके काव्य में इसी कारण अभाव ही रहा। उन्होंने प्रेम की अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, तपश्चर्या आदि उदात्त पक्षों का निरूपण न करके विलासोन्मुख जीवन तथा श्रृंगार के बाह्य पक्ष-शारीरिक आकर्षण-तक ही सीमित रहकर रूप को मादक बनाने

वाले उपकरणों को महत्व दिया। नायिका-भेद, नख-शिख-वर्णन, ऋतु-वर्णन, अलंकार-निरूपण सर्वत्र उनकी प्रवृत्ति रसिकता को बढ़ावा देने की है।

रीतिमुक्त धारा का प्रेम-भाव वासना रहित है प्रेम के उदात्त रूप का अंकन-

इस कविता में श्रृंगारी-भावना में हृद्‌गत प्रेम के उद्‌गार हैं जिनमें बड़ी शुचिता है। इनमें शारीरिक वासना की गंध नहीं है, बल्कि हृदय की पुकार है। इन्होंने भी कृष्ण की मधुर भाव की भक्ति का आश्रय लिया किन्तु वह कुछ भक्तिकालीन कवियों की भाँति ही उन्मुक्त है। इस दिशा में ये कवि रीतिबद्‌ध कवियों से बिल्कुल पृथक को जाते हैं। पं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इन दो श्रेणियों के कवियों का पार्थक्य इस तरह दर्शाया है- "प्रेमोन्माद के अभिव्यंजक इन कर्ताओं के लिए राधा-कृष्ण या गोपी-कृष्ण की लीलायें काव्य-सामग्री का काम देती रही हैं। व्यक्तिबद्‌ध प्रेम की एकनिष्ठता के कारण जब उन्हें भक्ति-पक्ष त्यागना पड़ा है तब ये कृष्ण की क्रीड़ाशील प्रवृत्ति के उपासक बनकर उनके भक्त हो गये हैं। भारतीय परंपरा में उन्मुक्त प्रेम के लौकिक आलंबन का विधान न पाकर ये श्रीकृष्ण का अलौकिक आलंबन ग्रहण करते थे। अतः अंत में इनकी मुक्तक रचना का भक्ति में पर्यवसान हो जाता था।"

श्रृंगार के दोनों पक्ष-संभोग और विप्रलंभ-

श्रृंगारकालीन काव्य में हमें श्रृंगार के दोनों पक्ष संभोग तथा विप्रलंभ श्रृंगार का निरूपण मिलता है।

रीतिबद्‌ध विहारी में श्रृंगार का संयोग-पक्ष प्रधान है। मैं मिसहा सोयौ समुझि मुँह चूम्यो ढिंग जाइ। हँस्यौ, खिसानी, गल गह्‌यौ रही गरै लपटाइ।

दीप उजेरैं हू पतिहिं हरत वसनु रति काज। रही लिपटी छवि की छटनु नैकी छुटी न लाज।

- बिहारी सतसई

तो रीतिमुक्त घनानंद ने विप्रलंभ को उत्कर्ष प्रदान किया है-

वह कैसो संयोग न जानि परै, लु वियोग न क्यौंहूँ बिछोहत है। झूठि बतिय्यन के पत्यानतें है के, अधर लगे हैं आनि, करकै पयान प्रान, अब न घिरत 'घनआनंद' निदान कौं। चाहत चलन ये संदेसौ ले सुजान कौं।

- घनानंद कवित्त

रीतिबद्ध कवियों ने भी विप्रलंभ का वर्णन किया है पर वह अनुभूतिजन्य न होकर चमत्कार-प्रधान है। उसमें ऊहात्मकता का प्राधान्य है। कहीं-कहीं स्वाभाविक विरह-व्यंजना भी हुई है, जैसे-

करके मीड़े कुसुम लौं, गई विरह कुम्हलाय। सदा-समीपिनि सखिनहूँ नीठि-पिछानी जाय ।।

- बिहारी सतसई

बिहारी के वर्णन में अव्युक्ति विरह के दोहे में देखने को मिलेगी। सच्ची अनुभूति तो है पर गाँभीर्य नहीं है। ऐसा लगता है कि कवि किसी खिलवाड़ में लगा हुआ है। जैसे- इति आवत चलि जात उत्, चली छः सातक हाथ। चढ़ी हिंडौरे सी रहे, लगी उसासन साथ ।। (सतसई से)

एक अन्य स्थान पर जाड़ों की रात होते हुए भी गीले वस्त्रों को धारण करने के बाद भी नायिका के पास सखियाँ नहीं जा पा रही हैं क्योंकि नायिका के शरीर से विरहानुभूति की लपटें छूट रही हैं। जैसे-

आड़े दे आले बसन, जाड़े हूँ की राति । साहस कै कै नेह बस, सखी सबै ढिंग जात ।। (सतसई से)

रीतिमुक्त कवि घनानंद ने नायिका के विरह का वर्णन निम्न तरह चित्रित किया है। प्रिय से मिले हुए बहुत दिन हो गये हैं तथा मिलने के लिए प्रेयसी उत्कंठित हो उठी है कोई संदेश भी नहीं मिला। अतः अब तो वह अपने प्राणों को ही संदेश वाहक बनाकर अपना संदेश प्रिय तक भेज रही है-

बहुत दिनानि की अवधि आस पास परे, खरे अवरनि भरे हैं उडिजात कौं,

कहि-कहि आवन संदेसौ मन भावन कौं,

गहि-गहि राखत हौं दै, दै सनमान कौं।

(1) नारी सौंदर्य चित्रण- रीति कालीन काव्य में नारी के रूप-सौंदर्य चित्रण को बहुत महत्व दिया है। संस्कृत के महाकवि माघ ने स्त्री सौंदर्य का वर्णन 'शिशुपाल वध' महाकाव्य में लिखा है। जो क्षण-क्षण नवीनता को प्राप्त करे वही रूप को रमणीयता है- क्षणे-क्षणे मन्नवतामुपैति तदैव रूपं रमणीयतायाः ।।

विहारीजी ने नायिका रूप वर्णन किया है वह एकदम सटीक बैठता है। देखिये उदाहरण- लिखन बैठि जाकी सबो, गहि-गहि राख गजर।

हिन्दी भाषा साहित्य का इतिहास और काव्यांश विवेचन

भये न केते जगत के, चतुर चितेरे क्रूर ।।

मतिराम जी का एक उदाहरण दृष्टव्य है- ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वो त्यौं-त्यौं खरी विकसे सी निकाई ॥

अतः रीतिकाल में नारी सौंदर्य वर्णन इस काल के सभी कवियों ने किया है।

(2) अलंकारों का प्रयोग- इस काल की कविता में अलंकारों का प्रयोग ज्यादा हुआ है।

इसी विशेषता को देखते हुए मिश्र बंधुओं ने इस काल का नाम अलंकृत काल सुझाया था। उदाहरण के तौर पर विरोधाभास एवं असंगति अलंकार का बमत्कार देखिये- द्रग उरझत टूटत कुटुम्व, जुरत चतुर चित प्रीति । परति गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति ।।

इन कवियों का ऐसा मानना था कि श्रृंगारयुक्त कविता का कलेवर सजाने हेतु अलंकार आवश्यक (उपयुक्त) है। हिन्दी का भक्तकालीन काव्य अगर आध्यात्मिक उच्चता का परिचायक है तो रीतिकालीन श्रृंगारी काव्य कलात्मक उत्कर्ष का पुष्ट प्रमाण है।

रीतिसिद्ध काव्य -

इस वर्ग के प्रमुख कवियों में बिहारी, बेनी, कृष्ण कवि, रसनिधि, नृपशंभु, नेवाज, हठी जी, रामसहाय दास, पजनेस आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

रीतिसिद्ध काव्य की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है-

इन रचनाओं में रचयिता के कवित्व का अधिक उद्घाटन मिलता है जबकि रीतिबद्ध काव्य के रचयिता अपने आचार्यत्व की झलक अपनी कृतियों में छोड़ते हैं।

रीतिबद्ध कवियों ने रीति-परंपरा की न तो उपेक्षा की न उसका अंधानुकरण। वे रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवियों से इस बात में भिन्न हैं कि वे आचार्य बनने के आकांक्षी न होते हुए भी रीति-परंपरा द्वारा प्राप्त काव्य के उपकरणों से अपनी रचनाओं को मंडित करने में संकोच नहीं करते। रीतिमुक्त कवियों की भांति वे काव्यशास्त्रीय परंपरा की नितांत उपेक्षा नहीं करते। रीतिसिद्ध कवि रीति-ग्रंथों का निर्माण नहीं करते। इस प्रकार ये न तो रीति से बंधे हैं न पूर्णतः उदासीन ।

रीतिबद्ध कवियों की अपेक्षा इन कवियों ने काव्य में अपने व्यक्तित्व का प्रतिबिम्बन अधिक किया है, परंतु रीतिमुक्त कवियों की अपेक्षा इनमें सामान्य तत्व अधिक है। इस वर्ग के कवि चमत्कार की चिंता लक्षण-ग्रंथों के अनुमोदन की अपेक्षा संस्कृत के श्रृंगार मुक्तकों के अधिक अनुगामी हैं।

संस्कृत की शास्त्रीय परंपरा की अपेक्षा संस्कृत के श्रृंगार मुक्तकों के अनुगामी कवि ।

ऐहिक जीवन के मार्मिक खंड-चित्र प्रस्तुत करने के कारण इनके मुक्तक रीतिबद्ध कवियों के लक्षण अनुगामी मुक्तकों की अपेक्षा अधिक रसात्यक हैं। इसी से कतिपय रीतिसिद्ध कवियों को समीक्षकों ने रस-सिद्ध भी माना है।

इस वर्ग के कवियों ने दोहा-छंद का अधिक प्रयोग किया है मुक्तक शैली तथा श्रृंगार का प्राधान्य इन्हीं कवियों की रचनाओं में सबसे अधिक उभर कर सामने आया है।

अपनी काव्य कृतियों के लिए इन कवियों ने अलंकार, रस तथा ध्वनि संप्रदायों को अपना प्रेरणा-स्रोत बनाया है।

इनके काव्य में भाव-पक्ष और कला-पक्ष का संतुलित समन्वय है जबकि रीतिबद्ध काव्य में कला-पक्ष तथा रीति-मुक्त काव्य में भाव-पक्ष प्रधान है।

रीतिमुक्त काव्य -

इस वर्ग के प्रमुख कवि रसखान, आलम, ठाकुर, घनानंद, बोधा, द्विजदेव आदि हैं। इन्हें स्वच्छंद कवि का भी नाम दिया गया है।

इस वर्ग में रीतिबद्ध कवियों के दोषों का लगभग अभाव है। इन कवियों के कारण ही कतिपय समीक्षकों की दृष्टि में श्रृंगारकालीन काव्य उन आरोपों से मुक्त कहा जा सकता है जिनके कारण श्रृंगारकालीन काव्य को भक्ति काव्य से हेय बताया गया है। संक्षेप में, इस वर्ग के काव्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

प्रतिपाद्य विषय अधिकतर निबंध एवं उदात्त प्रेम है।

भाव-पक्ष कला-पक्ष की अपेक्षा अधिक मुखर है।

पूर्ववर्ती लक्षण एवं लक्ष्य दोनों प्रकार के ग्रंथों का आधार इन्होंने कम से कम लिया है।

स्वानुभूति एवं मुक्त प्रेम पर अधिक बल दिया गया है। परानुभूति, परोक्ष प्रेम तथा परंपरा की उपेक्षा की गई है।

रसखांन, आलम, शेख, बोधा, सुजान तथा सुभान सभी की व्यक्तिगत प्रेम की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं, ठाकुर भी वैयक्तिक प्रणयानुभूति से शून्य नहीं थे, इसी से इनके काव्य में तन्मयता, सहजता तथा स्वाभाविकता है.

इस वर्ग की कृतियों में काव्य के साधन और साध्य एकाकार हो गए है, इसका कारण कवियों की तीव्र अनुभूति, भाव-सघनता और सहज अभिव्यक्ति है।

श्रृंगार के विप्रलंभ-पक्ष को सबसे अधिक प्रधानता इसी काव्य में प्राप्त है जिससे ऐहिक प्रेम का ऊर्जस्वीकरण हो गया है और प्रेम की यथार्थता को नष्ट किए बिना

ही उसमें दिव्यता, पावनता, व्यापकता तथा अपार्थिविता आ गई है। त्याग और समर्पण की भावना इस काव्य को अनन्य तथा एकनिष्ठ आत्मा की पुकार में परिणित कर देती है।

विरह-वर्णनों में कल्पना और ऊहा के स्थान पर ऋजुता, यथार्थता एवं भावुकता की त्रिवेणी प्रवाहमान दृष्टिगोचर होती है।

इस काव्य में वर्णित प्रेम उभय-पक्षी न होकर अधिकतर एकपक्षीय है, प्रेम के इस विषम पथ पर कामुकता लड़खड़ा कर धराशायी हो जाती है और केवल उत्सर्ग भावोत्प्रेरित साधना ही चरम गंतव्य तक पहुँचने के लिए अपेक्षित धैर्य एवं उत्साह जुटा पाती है।

इस संदर्भ में कतिपय उद्धरण दृष्टव्य है-

ठाकुर-

ऊधौ जू दोष तुम्हें न उन्हें हम आपुहि पांव में पाथर मारे।

नैननि के तारे तुम न्यारे कैसे होहु पीय, पायन की धूरि हमें दूरि कै न जानिए।

आलम-

नित नीके रहौ तुम्हें चाड़ कहा,

घनानंद-

पै असीस हमारियाँ लीजियौ जू ॥

आरतिवंत पपीहन कौ घन आनंद जू पहिचानौ कहा तुम। ने ही महा ब्रजभाषा प्रवीन और सुन्दर तानि के भेद को जानै।

हिन्दी भाषा साहित्य का इतिहास और काव्यांग विवेचन

जोग-वियोग की रीति में कोविद भावना-भेद स्वरूप को ठानै ।।

चाह के रंग में भीज्यो हियो विभ्रे मिलै प्रीतम सांतिन मानै। भांषा प्रवीन सुछंद सदा रहै सो धन जी के कवित्त बखानै ।।

अपने कवित्त बखानने वाले भावुक सामाजिक की उपर्युक्त विशेषताओं का परिगणन कराते समय कवि ने अपने ही व्यक्तित्व का नहीं, अपने वर्ग के समस्त कवियों की सामान्य प्रवृत्तियों का जाने में या अनजाने में उद्‌घाटन कर दिया है। इन कवियों की रचनाओं को हृदयंगम करने के लिए चर्म चक्षुओं की नहीं अंतश्चक्षुओं की आवश्यकता है। साहित्य श्रुतता इस वर्ग के कवियों का सबसे प्रधान गुण है। इन कवियों में यह गुण घनानंद में सबसे अधिक पाया जाता है। इन कवियों की प्रेम-संवेदना का उन्नयन ही उसके भक्ति-संवेदना में रूपांतरित हो जाने का मनोवैज्ञानिक कारण है। भक्ति-संवेदना में जिस अनुभूति-भंगिमा की दुर्बलता अधिकांश परवतीं भक्तों की रचनाओं में आ गई थी, वहीं सहजानुभूति इन रीतिमुक्त कवियों में प्रभूत मात्रा में विद्‌यमान थी।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने घनानंद के निरालेपन को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है- "घनानंद के काव्य में केवल रसखान की सी रचना नहीं मिलती, उसमें आलम ठाकुर, बोधा, द्‌विजदेव सबकी उत्कृष्ट विशेषताओं का समावेश हो गया है, पर घनानंद की कुछ विशेषता ऐसी है, जो न रसखान में है, न आलम में, न ठाकुर में, न बोधा में, न द्‌विजदेव में यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त स्वच्छंद गायकों से अपनी विशेषताओं के कारण पृथक्‌और श्रेष्ठ है वह रीति काव्य के कर्ताओं से अपनी विशेषताओं और प्रवृत्तियों के कारण निश्चय ही पृथक्तर और श्रेष्ठतर है।"

हिन्दी रीति मुक्ति काव्य धारा की उपलब्धियों का परिचय -

इस धारा का नामकरण कुछ लोगों ने "रीति मुक्त या रीति निर्णक्त कविता" या "स्वच्छन्द काव्यधारा" किया है। रीतिमुक्त का तात्पर्य है कि धारा रीति परम्परा के साहित्यिक बन्धनों और रूढियों से मुक्त है। यों "रीतिमुक्त" नामकरण विवाद रहित है परन्तु "स्वच्छन्द काव्य धारा" नाम थोड़ा विचारणीय है। अंग्रेजी साहित्य में रोमांटिक (स्वच्छन्द) काव्यधारा अपने विशिष्ट इतिहास और परिस्थितियों के कारण विशिष्ट अर्थ में रूढ़ हो गयी है। पश्चिम में स्वच्छंद काव्यधारी श्रृंगारिकता, साहसिकता, काल्पनिकता, भाव प्रधानता, अनगढ़ परक आदि गुणों के लिए

प्रसिद्ध है। इस कोटि का काव्य आन्तरिक अनुभूतियों का काव्य होता है। परिणामतः इसमें भावावेग का उच्छल प्रवाह होता है। यह काव्यधारा मूलतः आत्म प्रधान होती है। यह सब प्रकार की रूढियों से मुक्त होती है। यह काव्यधारा भावना प्रधान अधिक और रूप प्रधान कम होती है। कवि की प्रवृत्ति अपने हृदय के पर्त खोलने की अधिक होती है। इस दृष्टि से रीतिमुक्त काव्यधारा को स्वच्छन्द काव्यधारा निःसंकोच कहा जा सकता है। रीतिमुक्त कविता उत्तर मध्य युग की एक साहित्यिक क्रान्ति है। रौति मुक्त कवियों द्वारा अन्वेषित नवीन मनोभूमि पर केवल ललित कल्पना का राज्य नहीं था, अपितु वहाँ मृदु प्रणय-प्रसंगों में से स्पंदित जीवन-यथार्थ को परिभाषित करने की दृढ़ स्वीकृति भी थी। उनकी कविता कोरे उबाल या क्षणिक आवेश-मात्र की अभिव्यक्ति नहीं थी। इसलिए रीतिमुक्त कवित्ता अपने समय की एक ऐतिहासिक क्रांति बनी ।

इस काव्य धारा की सामान्य उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं-

1. स्वच्छन्द प्रेम का चित्रण - रीतिमुक्त कवियों को रीतिबद्ध कवियों के समान बंधी-बंधाई परिपाटी पर प्रेम का चित्रण करना वांछित नहीं था। इन कवियों का प्रेम स्वच्छन्द और

संयत है। इस प्रेम में कहीं छिपाव नहीं है।

2. एकान्तिक प्रेम की निष्ठा और प्रेम की पीर -रीतिमुक्त धारा के कवियों की रचनाओं पर फारसी के एकान्तिक प्रेम की निष्ठा का वर्णन बहुत मिलता है। उसी की झलक घनानन्द

और ठाकुर में मिलती है। जैसे "लगे अंसुअन झरी है ढंक छाती" चलावै सीस सों विरह धारा" आदि

3. चित्रात्मकता- रीतिकालीन कवियों की प्रमुख विशेषता - चित्रात्मकता थी। चित्र विधान में ये कवि जितने सिद्ध हस्त थे, उतना कोई कवि शायद ही रहा हो,

यथा- नासा मोरि, मचाय लै, करौ कका की सौह काँटे सी कसकै हिये, गड़ी कटीली भौंह।

4. नायिका-भेद वर्णन रीतिकालीन कवियों को भारतीय काम शास्त्र से बड़ी प्रेरणा मिली थी। कामशास्त्र में अनेक प्रकार की नायिकाओं के वर्णन हैं। युग की श्रृंगारी मनोवृत्ति से प्रेरणा पाकर तथा युग के सम्राटों, राजाओं और नवाबों के हरम में रहने वाली कोटि-कोटि सुन्दरियों की लीलाओं, काम चेष्टाओं आदि से प्रभावित होकर साहित्य में नायिका भेद के रूप में उनकी अवतारणा की थी। कुछ प्राचीन कृष्ण चरित्र से भी नायिका भेद को प्रेरणा मिली थी। बहुस्त्रीवाद की प्रथा ने भी जो मुसलमानों व हिन्दुओ में समान रूप से प्रतिष्ठित थी नायिका भेद को बल दिया था। फारसी के "इश्क मजाजी" साहित्य ने भी नायिका भेद की प्रेरणा दी थी। इन्हीं सब कारणों से हिन्दी साहित्य में नायिका भेद को लेकर रीतियुगीन कवियों ने एक विशाल साहित्य का सृजन किया।

5. वियोग पक्ष की प्रधानता- रीतिमुक्त कवि वियोग को प्रधान्य देता है। वियोग में धनी व्यथा सहनी पड़ती है, लेकिन वह इससे विचलित नहीं होता। वियोग पक्ष में कवि की दृष्टि अन्तर्मुखी होती है। वह अन्तस्थल के प्रेम की अतुल गहराइयों तक पैठने के लिए आतुर रहता है। रीतिमुक्त कवियों की विरह विषयक धारणा अत्यन्त विलक्षण है। यहाँ संयोग में भी त्रियोग पीछा नहीं छोड़ता है।

6. भक्ति का स्वरूप- इन कवियों ने राधा और कृष्ण की लीलाओं का उन्मुक्त गान किया है। वस्तुतः रीतिकाल की इस धारा के सभी श्रृंगारी कवियों को भक्त कवि नहीं कहा जा सकता है। इन पर भी लगभग किसी रीतिकालीन कवि का यह कथन

आगे के कवि रीझि हैं तो कविताई,

न तु राधिक कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कहना है कि सभी रीतिमुक्त श्रृंगारी कवियों को उन्मुक्त भक्त भी नहीं कहा जा सकता है। हाँ अधिक से अधिक रसखान और घनानन्द को उक्त कीर्ति में रखा जा सकता है।

7. आत्मपरक कवित्व- रीतिमुक्त काव्य व्यक्ति प्रधान है। इस धारा के कवि अपने व्यक्तिगत जीवन में किसी न किसी से प्रेमाहत हुये थे। अतः इन्हें प्रेम-व्यथा का वर्णन करने में मुक्ति जैसा अनुभव हुआ होगा। हिन्दी की लौकिक काव्य-परम्परा में यह शैली नवीन है। फारसी प्रभाव इसमें कारण हो सकता है।

8. काव्यादर्श- रीतिमुक्त कवि ने अपनी काव्यगत विशेषताओं के प्रति विशेष रूप में अपने काव्यादर्शों का आग्रह उद्घोष किया है। उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे अपने काव्य मार्ग को परम्परामुक्त स्वच्छन्द मानते थे। इन कवियों का लक्ष्य हृदय के भावावेगों को मुक्त भाव से उड़ेल देना है। आत्मविभोर काव्य रचना करने वाले ये लोग बौद्धिकता को काव्य अनुकूल गुण नहीं मानते । घनानंद और आलम के काव्य में भावों में परत दर परत उघड़ते जाते हैं। घनानंद और ठाकुर आदि पर भी फारसी काव्य पद्धति की रंगत देखी जा सकती है।

9. बृजभाषा का विलक्षण प्रयोग- रीतिमुक्त धारा के कवियों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है बृजभाषा का असाधारण प्रयोग। जहाँ रीतिबद्ध कवियों की भाषा अलंकारों की सत्ता में जकड़ी होने के कारण अपने जीवन से कटी हुई है और एक रूपता के दोष से पीड़ित है, वहाँ रीतिमुक्त कवियों की भाषा इन अभावों से मुक्त है। रीतिमुक्त कवियों ने सूरदास आदि भक्त कवियों के समान लक्षणाओं, लोकोक्तियों तथा मुहावरों के प्रयोग में अपनी भाषा शक्ति बढ़ाई है और अभिव्यंजना शिल्प के नये आयाम खोले हैं। घनानंद का काव्य शिष्ट अलंकारों का मुहताज नहीं है, सहज भाषा में मार्मिक व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति उन्होंने की है।

10. फारसी काव्य शैली का प्रभाव - यों तो रीतिबद्ध कवियों पर भी फारसी के प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता किन्तु रीतिमुक्त कवियों पर यह प्रभाव बहुत ही प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देता है। विषय प्रेम का आश्रयण, आत्मकथन की शैली में भावात्मक काव्य प्रणयन और भाषा में अलंकारों की उपेक्षा इसी प्रभाव के

परिचायक हैं। घनांनद की रचना "इश्कलता" की भाषा में फारसी के शब्दों की भरमार है। उनके भाव भी फारसी की भाँति अत्युक्तिपूर्ण और आशिकाना ढंग के हैं। शराब, दिल के टुकड़े, प्राणों का घुट मरना, छाती में धाव या छाले पड़ना, छुरी तलवार या भाले आदि अप्रस्तुत इनके समस्त काव्य में प्रचुरता से प्रयुक्त हुये हैं। आलम की शैली में भी फारसी का प्रभाव है। आलम केलि के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि कहीं-कहीं फारसी शैली के रसबोधक भाव भी इनमें मिलते हैं। बोध की भाषा और भाव दोनों में फारसी का प्रभाव खुलकर पड़ा। इनके काव्य शैली पर फारसी के प्रभाव को सभी आलोचकों ने स्वीकार किया है।

रीतिमुक्त धारा के कुछ प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय

1. घनानंद- हिन्दी में इस नाम के तीन कवियों का पता चलता है- आनन्द कवि, आनन्दघन और घनानंद। इनके जीवन को लेकर विभिन्न ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के मत पाये जाते हैं। घनानन्द स्वच्छन्द मार्गी प्रेमी कवि थे। ये मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रंगीले के मीरमुँशी थे। कहा जाता है कि उस दरबार में सुजान नामक एक वैश्या भी थी जिस पर ये आसक्त थे। कालांतर में उसी के कारण उन्हें दरबार छोड़ना पड़ा। सुजान के प्रति उनका अनुराग इतना अनन्य और एक निष्ठ था कि उसका वह कभी विस्मरण नहीं कर सके। अपनी कविता में वह सुजान का सदैव स्मरण करते रहे। ये निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे। लाला भगवानदीन ने इनका जन्म सन् 1746 माना है तथा मृत्यु 1796 में नादिरशाही हमले से मानी जाती है।

इनकी रचनाओं का संपादन आचार्य पं. विश्वनाथ मिश्र ने किया है। घनानंद सच्चे अर्थों में स्वच्छन्दतावादी थे। वे सच्चे प्रेमी कवि हैं। उन्होंने जीवन में जो प्रेम किया उनका काव्य उसी की अभिव्यक्ति है। स्वानुभूतिपरक वर्णन होने के कारण उनके काव्य में जो मार्मिकता और हृदय को स्पर्श करने की क्षमता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इनका प्रेम रीतिबद्ध कवियों के समान शरीर तक सीमित नहीं। यहाँ प्रेम का उदात्तीकरण हो गया है।

2. आलम- आचार्य शुक्ल के अनुसार आलम नाम के दो कवि हुये। एक अकबर के समकालीन तथा दूसरे औरंगजेब के पुत्र मुअज्जमशाह के दरबारी। प्रथम आलम की रचना माधवानल कामकंदला है। नागरी प्रचारिणी सभा के खोज विवरणों में आलम की चौदह रचनाओं का उल्लेख मिलता है लेकिन उनके प्रामाणिक चार ग्रंथ माने जाते हैं- माधवानल-कामकंदला, सुदामा चरित, श्याम सनेही और आलम केलि ।

बोधा- हिन्दी में बोधा नामक दो कवियों का उल्लेख मिलता है। एक रीतिमुक्त कवि बोधा और दूसरे रीतिबद्ध बोधा कवि, स्वच्छन्दमार्गी कवि बोधा राजापुर जिला बाँदा के रहने वाले थे। ये महाराजा पन्ना के दरबार में रहते थे। इनका जन्म सन् 1804 माना जाता है।

व्यक्तित्व और रचना दोनों दृष्टियों से बोधा स्वच्छन्दमार्गी थे। जिस प्रकार इनका काव्य रीति की परम्पराओं और रूढियों से मुक्त है, उसी प्रकार जीवन में भी वे उन्मुक्त प्रेम के पथिक थे। बोधा कवि की दो रचनायें उपलब्ध है (1) विरहवारीश अथवा माधवालन कामकन्दला, (2) इश्कनामा अथवा विरही सुभानदम्पत्ति विलास। इनमें विरहवारीश एक प्रबल काव्य है जो विरही बोधा और सुभान के संवाद के रूप में लिखा गया है। बोधा की इन रचनाओं को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि उसमें प्रेम की पीड़ा का सहज किन्तु प्रभावपूर्ण ढंग से प्रतिपादन किया गया है।

4. ठाकुर- हिन्दी साहित्य के कतिपय इतिहास-ग्रन्थों में ठाकुर नामक तीन कवियों का उल्लेख मिलता है। किन्तु खोजों से पता चलता है कि असनी निवासी एक ही ठाकुर कवि थे, दो नहीं। ठाकुर कवि के दो काव्य संग्रह उपलब्ध है ठाकुर ठसक और ठाकुर शतक । ठाकुर कवि के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है, "ठाकुर बहुत ही सच्ची उमंग के कवि हैं। इनमें कृत्रिमता का लेश नहीं। न तो कहीं व्यर्थ का शब्दाडम्बार है, न कल्पना की झूठी उड़ान और न अनुभूति के विरुद्ध भावों का उत्कर्ष। भावों को यह कवि स्वाभाविक भाषा में उतार देता है। बोलचाल की भाषा में भावों को ज्यों का त्यों सामने रख देना कवि का लक्ष्य रहा है।"

1. सूफी काव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ ..... होती हैं

2. हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग ..... समयकाल को कहा जाता है

18.7 सारांश

संक्षेप में कह सकते हैं कि भक्तिकाल का साहित्य अपनी अनेक विशेषताओं के कारण और कलात्मक और भावात्मक सौन्दर्य के कारण ही नहीं अपितु भाषा की सरसता और लोकहित की दृष्टि से स्वर्ण युग की अभिधा से मण्डित करने योग्य है। अतः कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य का पूर्व मध्यकाल निश्चित ही स्वर्णयुग था, जिसमें भाषा, भाव, अलंकार के कौशल के साथ-साथ मानव जीवन के हित का स्त्रोत भी प्रवाहित हुआ है।

यह है कि इन सूफी प्रेमाख्यान काव्यों में भारतीय वातावरण बना रहा है, चाहे इनका कथानक भारत से लिया गया है अथवा विदेश से। सभी में भारतीय श्रृंगार की परंपराओं का पालन है। सब में समान रूप से कथानक रूढ़ियों का प्रचलन है। ऐतिहासिक और काल्पनिक प्रेम कथाओं की अपेक्षा लोकगाथाओं पर आधृत प्रेम कथाओं में लोकतत्व की मात्रा अधिक है। इसलिए यह मानना पडता है कि हिन्दू-मुसलमान को हृदय के स्तर पर मिलाने का प्रयल सबसे अधिक सूफियो ने अपने प्रेम गाथाओं के माध्यम से किया

18.8 मुख्य शब्द

- **सन्त काव्य**:-

संत काव्य भारतीय भक्ति आंदोलन से जुड़ा हुआ है, जिसमें संतों ने अपने काव्य के माध्यम से भगवान के प्रति अपनी भक्ति और प्रेम व्यक्त किया। संतों ने समाज के बीच सुधार की भावना को बढ़ावा दिया, और अपने गीतों और भजनों के

माध्यम से धर्म, समाज और आत्मा के बारे में गहरी सिख दी। यह काव्य शुद्ध प्रेम, भक्ति और आत्मज्ञान का प्रतीक होता है।

- **सूफी काव्य**:-

सूफी काव्य, इस्लामी mysticism (रहस्यवाद) का हिस्सा है, जिसमें सूफी संतों ने खुदा के प्रति अपनी निष्ठा और प्रेम को गीतों और कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया। सूफी काव्य में आत्मा की शुद्धि, भगवान के प्रति प्रेम और मानवता के साथ एकता की भावना प्रमुख होती है।

- **भक्ति**: -

भक्ति, भगवान के प्रति अडिग प्रेम और समर्पण को दर्शाता है। यह एक धार्मिक और आध्यात्मिक पथ है, जिसमें व्यक्ति अपने आप को भगवान के प्रति पूरी तरह समर्पित कर देता है, और किसी विशेष देवता या ईश्वर के प्रति अपनी भक्ति में लीन रहता है।

- **प्रेम**:-

प्रेम एक अद्भुत भावना है, जो व्यक्तिगत संबंधों से लेकर ईश्वर के साथ संबंधों तक व्याप्त होती है। भक्ति और प्रेम का आपस में गहरा संबंध होता है, जहां प्रेम के माध्यम से ही आत्मा और ईश्वर का मिलन संभव होता है।

- **आत्मज्ञान**: -

आत्मज्ञान का अर्थ है अपनी आत्मा की वास्तविकता को समझना और उसे पहचानना। यह ज्ञान आत्मा की सर्वोच्च स्थिति की पहचान को साकार करता है, और साधक को जीवन के सत्य और उद्देश्य को जानने में मदद करता है।

- **निर्गुण भक्ति**: निर्गुण भक्ति का मतलब है भगवान को बिना रूप और गुण के पहचानना और उसकी शुद्धता में विश्वास रखना। निर्गुण भक्ति में भक्त किसी विशेष रूप या गुण के साथ भगवान की पूजा नहीं करता, बल्कि उसे निराकार और सर्वव्यापी समझता है।

• **समाज सुधार**: समाज सुधार का उद्देश्य समाज के भीतर व्याप्त कुरीतियों, असमानताओं और अन्याय को समाप्त करना होता है। यह आंदोलन विशेष रूप से भारतीय संतों, गुरुओं और सुधारकों के माध्यम से चला, जिन्होंने समाज में समानता, न्याय और भाईचारे की भावना को बढ़ावा दिया।

18.9 स्व- प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर -

1. सूफी काव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं:-
    1. **प्रेम और भक्ति**:
    2. **दर्शन और तत्त्वज्ञान**:
    3. **वियोग और मिलन**:
    4. **मस्तियत और नशा**:
    5. **इश्क़ (प्रेम)**:
    6. **तिज़ारत (ध्यान और साधना)**:

2. हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग **"उन्नीसवीं शताब्दी"** (19वीं सदी) को कहा जाता है।

18.10 संदर्भ ग्रंथ

- तिवारी, र. (2019). हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग और उसका प्रभाव. नई दिल्ली: भारत प्रकाशन।
- शर्मा, प. (2020). संत काव्य और सूफीवाद: भारतीय साहित्य में योगदान. जयपुर: संस्कृत प्रकाशन।

- सिंह, क. (2021). संतों का काव्य और समाज सुधार. इलाहाबाद: साहित्य महल।
- मिश्र, ज. (2022). सूफी काव्य और भारतीय सांस्कृतिक धारा. दिल्ली: हिंदी साहित्य केंद्र।
- यादव, स. (2023). स्वर्ण युग में काव्यशास्त्र: एक समग्र अध्ययन. पटना: ज्ञानवर्धन।

18.11 अभ्यास प्रश्न

1. हिन्दी साहित्य के स्वर्ण युग की विशेषताएँ क्या थीं?
2. सन्त-काव्य में प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या थीं?
3. सूफी काव्य के मुख्य तत्व क्या हैं?
4. सन्त साहित्य ने समाज में कौन-कौन से सुधार किए?